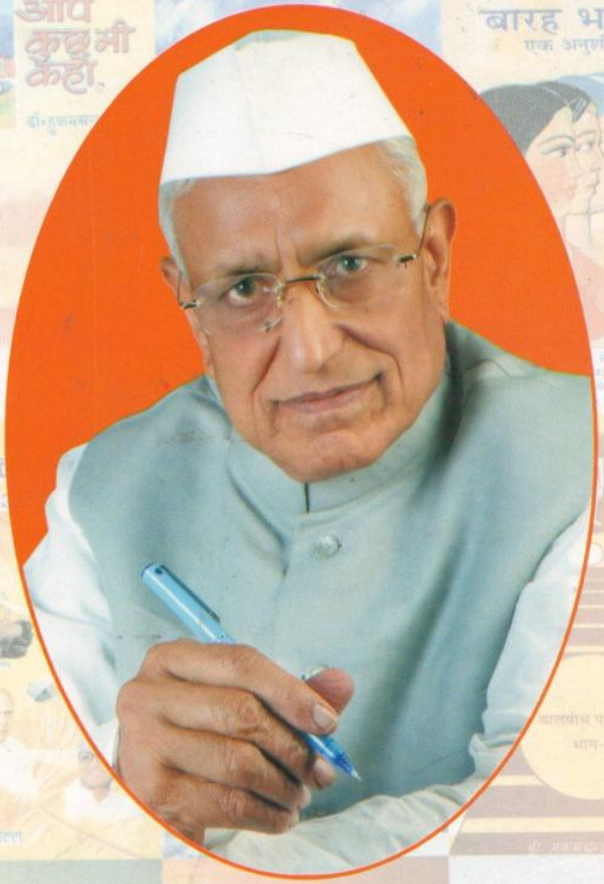

डॉ. हुकमचंद भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन

– डॉ. सीमा जैन

प्रकाशकीय

जैनदर्शन के उद्भट मनीषी डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के विषय में कुछ भी लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। यह सुखद है कि उनके जीवनकाल में ही उनके साहित्य को रेखांकित करते हुए दो छात्रों ने पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की है। दोनों ही शोधार्थी उदयपुर (राज.) के हैं, जिन्होंने मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय के अन्तर्गत शोधकार्य किया। एक हैं डॉ. महावीरप्रसादजी टोकर और दूसरी हैं श्रीमती सीमा जैन। महावीरप्रसादजी का विषय था 'डॉ. हुकमचंद भारिल्ल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' तथा सीमाजी का विषय है 'डॉ. हुकमचंद भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन'। महावीरप्रसादजी के शोध ग्रंथ का प्रकाशन 2005 में किया गया था अब स्मारक ट्रस्ट के ही माध्यम से सीमाजी का यह शोध ग्रंथ भी इसी संस्था द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है।

इसके पूर्व श्री अरुणकुमार जैन ने राज.वि.वि. के एम.ए. (उत्तरार्ध) हिन्दी के पंचम प्रश्न पत्र के रूप में डॉ. हुकमचंद भारिल्ल और उनका कथा साहित्य' विषय पर लघु शोध प्रबंध प्रस्तुत किया था। इसी प्रकार वसुन्धरा महिला शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालय अचरौल की एम.एड. की छात्रा नीलू चौधरी द्वारा 'शिक्षा शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में डॉ. हुकमचंद भारिल्ल के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन' – यह लघु शोध प्रबंध; शिखरचंद जैन द्वारा राज.वि.वि. के एम.ए. (उत्तरार्ध) के पंचम प्रश्न पत्र के विकल्प के रूप में 'डॉ. हुकमचंद भारिल्ल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' एवं सुश्री ममता गुहा द्वारा 'धर्म के दशलक्षण : एक अनुशीलन'– ये लघु शोध प्रबन्ध लिखे गए हैं। साथ ही उच्च शिक्षा और शोध संस्थान दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा चेन्नई के एम.फिल. उपाधि के लिए श्री राजेन्द्र जयपाल संगवे ने 'डॉ. हुकमचंद भारिल्ल का उपन्यास सत्य की खोज में प्रतिबिम्बित तत्कालीन दिगम्बर जैन समाज का सच' – यह लघु शोध प्रबंध लिखा है।

प्रस्तुत प्रकाशन के सम्पादन व प्रकाशन में पं. शान्तिकुमारजी पाटील व अखिल बंसल ने बहुत श्रम किया है, इसके लिए ट्रस्ट दोनों महानुभावों का आभारी है।

इसप्रकार से डॉ. भारिल्ल के विविध आयामी जीवन और साहित्य पर हुए शोध कार्यों से प्रभावित होकर पाठकगण अवश्य ही उनके साहित्य का अध्ययन करने के लिए प्रेरित हों और जैनदर्शन के मर्म को समझें – यही मंगल भावना है।

– **ब्र. यशपाल जैन**, एम.ए.
प्रकाशन मंत्री
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

अपनी बात

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल की सर्जनात्मक प्रतिभा नाना रूपों में प्रस्फुटित हुई है। कवि, नाटककार, कथाकार, निबन्धकार, विचारक आदि रूपों में। वह एक चिन्तक, दार्शनिक हैं। जैन साहित्य का उनका अध्ययन गहन, विशद है। वह तार्किक हैं। अपनी बात कहने, उसे तर्क संगत बनाने में उनकी दक्षता अद्‌भुत है। उनकी यह विशेषता उनके व्याख्यानों में सर्वत्र विद्यमान है।

भारिल्ल जी के साहित्य तथा व्यक्तित्व को लेकर कतिपय विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। बावजूद इसके बहुत कुछ ऐसा शेष रह जाता है, जिस पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है। यह शोध–प्रबन्ध उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व को समझने का विनम्र प्रयास है। बात यह है कि ज्यों–ज्यों उनके साहित्य–सरोवर में गहरे और गहरे उतरा जाता है, उनके सोच के विविध आयामों से साक्षात्कार होता है।

भारिल्ल जी के साहित्य के प्रति मेरे मन में सदैव ही आकर्षण के भाव रहे हैं। वास्तव में यही तत्त्व मुझे उनके साहित्य–सरोवर में अवगाहन को प्रेरित करता रहा है।

वे अध्यात्म–जगत के मनीषी हैं। उनका चिन्तन मौलिक है तथा उसका आधार जैन–दर्शन है। उनका यही वन्दनीय और एकमात्र क्षेत्र उन्हें अहर्निश, अनुक्षण कुछ–कुछ नया सोचने/कहने को प्रेरित करता रहा है। एक अच्छे वक्ता के रूप में भी वे सुविख्यात हैं। जैन धर्म के सभी विषयों पर उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। उन्होंने जैन धर्म से तादात्म्य किया है।

उनका लेखन प्रचुर–परिमाण में उपलब्ध है, जो कई भाषाओं में अनूदित हो, लाखों–लाख पाठकों तक पहुँचता रहा है।

उत्तर प्रदेश के छोटे से गाँव बरौदास्वामी में जन्में भारिल्ल ने मुरैना के श्री गोपाल दिगम्बर जैन महाविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। यह सही है कि आर्थिक विषमता उनकी राह में अवरोध उत्पन्न करती रही है, लेकिन दृढ़ संकल्प के बलबूते वे लगातार चलते रहे। विद्यार्जन उनका स्वभाव था। उसी से प्रेरित, परिचालित हो, अपनी उच्च शिक्षा पूर्ण की। अध्यात्म के प्रति उनके रुझान, लगाव का सारा श्रेय पूज्यश्री कानजी स्वामी को जाता है।

21 वर्ष के थे, तभी वह उनके सम्पर्क में आए। उनके सान्निध्य ने इनके जीवन की दिशा ही बदल दी।

साहित्य के प्रचार–प्रसार में उनका उल्लेखनीय योगदान अनुकरणीय है।

मैंने अपने शोध–प्रबन्ध में जहाँ उनके व्यक्तित्व के विविध पहलुओं पर विचार किया है, वहीं उनके साहित्यिक अवदान को भी अपने अनुशीलन का आवश्यक हिस्सा बनाया है। सच पूछा जाये तो उनके सर्जनात्मक साहित्य का अनुशीलन ही मेरे शोध का वास्तविक अभिप्रेत है। गद्य, पद्य पर उन्होंने समान रूप से लेखनी चलाई है और एक से बढ़कर एक अच्छी रचना से समाज और साहित्य को लाभान्वित किया है। साहित्य की शायद ही कोई विधा ऐसी रही हो जिस पर उन्होंने अपनी लेखनी नहीं चलाई हो। काव्य, कहानी, उपन्यास की दृष्टि से उनकी लेखनी का चमत्कार किसको चमत्कृत नहीं कर देगा? उनकी वर्णन शैली, तार्किकता, कल्पनाशीलता पाठक पर स्थायी प्रभाव डालने की क्षमता से ओतप्रोत है।

उनकी लम्बी कविता 'पश्चाताप' सीता की अग्नि–परीक्षा से शुरू होती है जो राम के पश्चाताप और सीता की मौन व्यथा को उजागर करती है। सरल, सहज अभिव्यक्ति अपनी अलग छाप छोड़ती है। इसमें निहित तार्किकता से साक्षात्कार करने का अवसर भी पाठकों को मिलता है। उदाहरणार्थ अग्नि–परीक्षा की प्रासंगिकता, "यह कि गर्भवती महिला का निर्वासन उसके प्रति अन्याय नहीं। यह सवाल कि सीताजी के साथ अन्याय हुआ है तो न्यायाधीश अपने पदाधिकार को कैसे उचित ठहरा सकता है। वन जाते विनीत अपेक्षा कि 'नाथ आपने निन्दा सुन मुझे तो छोड दिया, पर धर्म की निन्दा सुन उसे मत छोड़ देना।' निश्चय ही पश्चाताप आद्यन्त अध्यात्म से अनुसिंचित है।

साठ वर्ष पूर्व लिखी इस रचना का सबसे बड़ा महत्त्व यही है कि इसकी प्रासंगिकता, प्रामाणिकता आज भी अक्षुण्ण है। पाठक पश्चाताप का ताप अनुभव किए बिना नहीं रह सकता।

डॉ. भारिल्ल में हम साहित्य और अध्यात्म का मणिकांचन योग पाते हैं। कुन्दकुन्द के निर्विवाद व्याख्याता के रूप में उन्हें ले सकते हैं। विषय कितना ही कठिन क्यों न हो, लेकिन उसे जिस सरलता और सहजता से पाठकों के समक्ष रखते हैं, उसका कोई सानी नहीं है। 'समयसार का सार'

में उनकी दृष्टान्त–प्रणवता के दर्शन किए जा सकते हैं। ऐसे कई उदाहरण मिल जायेंगे जो पाठकों को अपनी भाव–भंगिमा से आप्लावित करने की सामर्थ्य लिए हैं।

डॉ. भारिल्ल की औपन्यासिक सामर्थ्य से अभिभूत होने के मंतव्य से 'सत्य की खोज' का अध्यात्म आवश्यक है। चालीस अध्यायों में फैली यह कृति दो पात्रों – विवेक और रूपमती को प्रस्तुत करती है। दम्पत्ति और एक ढोंगी साधु के सहारे कहानी नाना तर्क–वितर्कों के साथ अपने गंतव्य की ओर बढती है। क्या है वह गंतव्य? यह कि सत्शास्त्रों को अंगीकार कर ही जीवन में शांति लायी जा सकती है।

यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि हिन्दी उपन्यास में इसकी क्या सापेक्ष स्थिति है? इस सवाल के जवाब में यह स्वीकार करके चलना होगा कि लेखक का उद्देश्य इसे मात्र साहित्यिक रचना बनाना नहीं रहा है। उनका प्रतिपाद्य समाज के समक्ष एक नैतिक या कहें कि एक आदर्श प्रस्तुत करना भर रहा है।

डॉ. भारिल्ल का जीवन अध्यात्म–आविष्ट है। कदाचित् यही कारण है कि उनकी कहानियाँ भी मानवीय संवेदना के साथ जीवन के अनेक उदात्त मूल्यों की प्रतिष्ठापना करती है। फिर दार्शनिकता, आध्यात्मिकता, मनोवैज्ञानिकता, विवेक आदि स्वतः उनका अविच्छिन्न अंग बन जाता है। कहानियों में जैन सिद्धान्तों का प्रभावी चित्रण मिलता है, इसमें दो राय नहीं हो सकती। कहानियों की परिधि जैन सिद्धान्तों पर केन्द्रित होने के बावजूद उनका प्रभाव सीमाओं का अतिक्रमण करके चलता है। डॉ. भारिल्ल ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध ही किया है। डॉ. भारिल्ल की कई महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं जो डॉ. भारिल्ल की सृजनात्मक सामर्थ्य का प्रमाण है।

मैंने अपने शोध–प्रबन्ध को छः अध्यायों में विभक्त किया है, उन्हीं के आधार पर डॉ. भारिल्ल की सृजनात्मक भावभूमि का आकलन करने का प्रयास किया गया है। पहला अध्याय जहाँ डॉ. भारिल्ल के व्यक्तित्व, उससे सम्बद्ध पक्षों को अपने में समाहित करके चलता है, वहीं दूसरा उनके कृतित्व को अध्ययन का आधार बना कर चलता है तो तीसरा अध्याय डॉ. भारिल्ल के कथा–साहित्य में विचार–तत्त्व से सम्बद्ध है। अगला अध्याय उनके निबन्धों और लेखों को समर्पित है। जिसमें उससे जुड़ी उनकी प्रवृत्तिगत विशेषताओं को विश्लेषित किया गया है।

शोध प्रबन्ध का पाँचवा अध्याय डॉ. भारिल्ल के पद्य–साहित्य सम्बन्धी संवेदना और शिल्प को प्रस्तुत करता है। छठा अध्याय भी पद्य–साहित्य के भाषिक विवेचन से संयुक्त होता है। मेरा प्रयास डॉ. भारिल्ल की साहित्यिक सर्जनात्मकता को उसकी सर्वांगीणता के साथ प्रस्तुत करने का रहा है।

शोध की सम्पूर्ण प्रक्रिया में विषय चयन से लेकर शोध से संबंधित विभिन्न दिशा निर्देश में मेरे शोध की शोध निर्देशिका डॉ. मंजु चतुर्वेदी, हिन्दी विभाग, राजकीय मीरा कन्या राजकीय महाविद्यालय, उदयपुर का निर्देशन अविस्मरणीय है। उनकी कृपा के बिना मेरे लिए एक कदम आगे बढ़ा पाना भी मुश्किल था। मैं उन्हें अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

मुझे दादा डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल एवं बड़े दादा रतनचन्द भारिल्ल का भी सहयोग मिलता रहा है उनके प्रति नतमस्तक हूँ।

कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ अपने ससुरजी लक्ष्मीचन्दजी भोरावत, सासु श्रीमती पुष्पादेवी जैन व पिता श्री राजमलजी जैन, माता श्रीमती भानुदेवी जैन, जेठजी श्री मनोहर भोरावत, जेठानी भारती जैन, अनुज अंकुर जैन, ननद आशा जैन, पति श्री जिनेन्द्र शास्त्री व पुत्री प्रांजल जैन के सहयोग के लिए धन्यवाद करती हूँ, जिन्होंने सदैव मेरे साथ रहकर मेरे शोध कार्य की कठिनाइयों को सरल से सरलतम किया है।

मेरे परिचित स्वजनों का साथ भी मुझे प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से मिलता रहा है। उनके प्रति भी मैं स्नेहाभारी हूँ। डॉ. उदयचन्द जैन, परमात्म प्रकाश जी, भारिल्ल, शुद्धात्मप्रकाश जी, डॉ. महावीर प्रसाद जी जैन, पीयूष जी जैन, संजीव जी गोधा आदि का भी वन्दन करती हूँ।

टोडरमल स्मारक के समस्त विद्वानजन एवं संस्था की हृदय से आभारी हूँ, जिनकी सहायता से शोध विषयक पुस्तकें व अन्य जानकारियाँ सहज रूप में उपलब्ध हो सकी हैं।

टंकण कार्य को सम्पादित करने वाले श्री प्रकाश जी नेभनानी का भी स्मरण करती हूँ, जिन्होंने टंकण कार्य को त्रुटिरहित रूप से यथाशीघ्र सम्पादित किया है।

निवेदन
सीमा जैन

विषय सूची

प्रथम अध्याय – डॉ.भारिल्ल का व्यक्तित्व : विविध पक्ष 1

भारिल्ल का व्यक्तित्व 2

जन्मस्थान एवं शिक्षण प्रवेश,

व्यक्तित्व : विभिन्न मत

संतों की दृष्टि में, मनीषियों की दृष्टि में

समसामयिक परिस्थितियों का प्रभाव 10

सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव, राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव, साहित्यिक परिस्थितियों का प्रभाव, धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव

साहित्य की भूमिका 19

साहित्य की परम्परा, जैन साहित्य

भक्तिकाल और जैनधर्म 21

डॉ. हुकमचंद भारिल्ल का साहित्य सृजन, डॉ. भारिल्ल का जैनधर्म को योगदान, निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय – डॉ. हुकमचंद भारिल्ल का कर्तृत्व : एक परिदृश्य 32

डॉ. भारिल्ल : विविध विचार, सत्य की खोज उपन्यास का संक्षिप्त परिचय, कहानीकार भारिल्ल

जैन निबंध साहित्य और उनकी परम्परा 42

संस्कृत गद्य साहित्य, प्राकृत गद्य साहित्य, पाली गद्य साहित्य, हिन्दी गद्य साहित्य, बृजभाषा का गद्य साहित्य, खडी बोली का गद्य साहित्य, जैन हिन्दी गद्य साहित्य, प्राचीन जैन हिन्दी गद्य साहित्य निबंध परम्परा और उसका विश्लेषण, डॉ. भारिल्ल के निबंध, स्तुति काव्य और उनकी काव्यकला, डॉ. भारिल्ल के स्तुति काव्य और उनकी काव्यकला, नाटक, सदाचार की शिक्षा, पद्य साहित्य का विकास, पद्य साहित्य के विभिन्न सोपान, अन्य साहित्य

तृतीय अध्याय – डॉ.भारिल्ल के उपन्यास और कहानियों में विचार तत्त्व 78

डॉ.भारिल्ल का उपन्यास : सत्य की खोज, कहानी साहित्य कथात्मक परिचय डॉ.भारिल्ल की कथाएँ

चतुर्थ अध्याय – डॉ.भारिल्ल के निबंधों तथा लेखों का प्रवृत्तिगत परिचय 121

निबंध : स्वरूप एवं विश्लेषण, हिन्दी निबंध साहित्य का उद्‌भव एवं विकास, डॉ. भारिल्ल के निबंध, भारिल्ल के निबंधों और लेखों की साहित्यिक विचारणा, विविध भाषाओं के प्रयोग, धार्मिक अवधारणा श्रमणाचार, डॉ.भारिल्ल के निबंधों का दार्शनिक चिन्तन

पंचम अध्याय – डॉ.भारिल्ल का पद्य साहित्य : समरसता का सौन्दर्य : भाव पक्ष 179

काव्य : स्वरूप और विश्लेषण, मौलिक ग्रंथ : परिचय एवं प्रकृति रचनावस्तु का विश्लेषण

षष्ठ अध्याय – पद्य साहित्य : भाषिक विवेचन 213

सप्तम अध्याय – उपसंहार 229

प्रथम अध्याय
डॉ. भारिल्ल का व्यक्तित्व : विविध पक्ष

हम व्यक्तित्व शब्द का धड़ल्ले से इस्तेमाल करते हैं, पर, इसके वास्तविक अर्थ को दृष्टि से ओझल कर देते हैं। इसका अंग्रेजी पर्याय पर्सनैलिटी, ग्रीक शब्द पर्सोना से आता है, जिसका अर्थ मुखौटा होता है। तो क्या मुखौटे का अध्ययन ही व्यक्तित्व का अध्ययन है ? शायद यह बात हमारे गले न उतरे।

हो सकता है कार्वर (Carver) व शेइवर (Scheiver) की समसामयिक परिभाषा रास आ जाए जो उसे व्यक्ति के अहसासों, सोच–व्यवहार की विशेषताओं को दर्शाती है। जबकि आदम्स का मानना है कि जब व्यक्ति "मैं" का प्रयोग करता है, तो निश्चय ही वह अन्यों से अपने को अलग करता है।

देकार्ते कहते हैं "मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ।" दरअसल विचार–पैटर्न, अनुभूति, व्यवहार ही वे तत्त्व हैं, जो उसे अनन्य बनाते हैं। वास्तव में व्यक्तित्व व्यक्ति को समझने और उसे व्याख्यायित करने का विज्ञान है।[1]

व्यक्ति का बाह्य रूपाकार, कदकाठी, नाकनक्श का विचार भी इस दृष्टि से आवश्यक है। परन्तु; सौन्दर्य सतही नहीं होता, अतएव उसके मनोविज्ञान, विचार, अहसास, परिवेश के प्रति अन्तःसक्रियता, समस्याओं के प्रति उसका दृष्टिकोण जैसे विचार भी विशेष अर्थ रखते हैं।

---

1. Pesonality is person-ality the science of describiring and understaning persons.

डॉ. भारिल्ल का व्यक्तित्व

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के प्रशस्त व्यक्तित्व पर विचार करते हैं, तो उनके व्यक्तित्व को समझने में सहायता मिलती है।

उनकी सोच प्रखर और विरल है। नयी–नयी सोच अथवा प्रतिभा उनकी पहचान है। कहा भी है, 'नव–नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा'। सात्त्विक, उच्च विचार, निर्विकार, निरभिमान, निर्मल चित्त–वृत्ति, आचार –विचार–उच्चार में समानता उनकी विशेषता है। वह प्रदर्शन के 'दर्शन' में अर्थात् दिखावे में विश्वास नहीं करते। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह उनकी प्रकृति है।

लेखक, सहृदय कवि, ओजस्वी वक्ता, अपने तर्कों, दृष्टांतों से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देने की अद्‌भुत शक्ति से सम्पन्न, प्रत्युत्पन्न मतित्व की सामर्थ्य, वाक्‌विदग्धता के धनी, प्रबोधक, प्रबन्धक जैसे गुण उनके व्यक्तित्व में चार चाँद लगाते हैं। अध्ययन–मनन–चिन्तन उनकी प्रकृति है। **'काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीम ताम्।'** आध्यात्मिक, दार्शनिक है– वे, तत्त्ववेत्ता हैं।

उनके जीवन का सफरनामा कभी सीधी रेखा पर नहीं चला। कई प्रकार के उतार–चढ़ाव, घुमाव–मुड़ाव भरी कण्टकाकीर्ण राह पर बिना धैर्य खोए, अविचलित चलते.... और चलते जाना कोई हंसी–खेल नहीं है, पर डॉ. भारिल्ल कभी दिग्भ्रमित नहीं हुए। कष्टों, मुसीबतों ने उन्हें आतंकित नहीं किया, उल्टे उनके संकल्प को दृढ़ ही बनाया। कठिन से कठिन परिस्थितियों में बिना आपा खोए अपने गंतव्य की ओर अहिर्निश–अनुक्षण बढ़ते जाना कोई भारिल्ल से सीखे। मैथिलीशरण गुप्त की लिखी ये पंक्तियाँ बरबस स्मरण हो आती है–

जितने कष्ट कण्टकों में है, जिनका जीवन–सुमन खिला।
गौरव–गंध उन्हें उतना ही यत्र–तत्र–सर्वत्र मिला।।

डॉ. भारिल्ल को जिन दो महापुरुषों ने सर्वाधिक प्रभावित किया, वे हैं– कानजी स्वामी और महात्मा गाँधी। कानजी स्वामी के आकर्षक व्यक्तित्व ने तो इनकी जीवन–दिशा ही बदल दी। 21 वर्ष के थे, तब ये उनके सम्पर्क में आए। वह क्षण उनके जीवन के बदलाव का

बिन्दु साबित हुआ। उनसे इस सीमा तक आविष्ट हुए कि 'मैंने ओढ़ी चदरिया तेरे नाम की' की मनःस्थिति में अपने को पाया। वीतरागता, आध्यात्मिकता, धर्म, समाज को अपने को समर्पित कर दिया।

अपने पारिवारिक दायित्व का भी इन्होंने पूरी निष्ठा से निर्वाह किया। आज के आर्थिक दौर में जहाँ लोगों को जाँचने–परखने की पूँजी ही एकमात्र प्रतिमान हो गयी हो, वहाँ अध्यात्म की पावन सुरसरी प्रवाहित करने का भगीरथ–भार भारिल्ल ने दक्षता के साथ वहन किया।

उनके व्यक्तित्व का पारस–परस (स्पर्श) पाकर न जाने कितने लोग विद्वत्ता की ऊँचाइयाँ छूने में सफल हुए। इनके चुम्बकीय व्यक्तित्व में जैन और ज़ेन (जापानी ZEN) का जादुई ब्लैण्ड निहित है। निःसन्देह एक निस्पृह कर्मयोगी हैं वे। 'योगः कर्मसु सुकौशलम्।' कर्म को कुशलता से पूरा करना ही योग है। भारिल्ल में यह विशेषता कूट–कूट कर भरी है। वे सृष्टा ही नहीं, दृष्टा भी हैं। हर कोई यह जानता है कि आध्यात्मिक क्रांति के प्रभावी पुरोधा हैं वे। असाधारण रूप से साधारण हैं वे। जैन जगत के सशक्त हस्ताक्षर डॉ. भारिल्ल एक जीवन्त किंवदन्ति हैं, इसमें सन्देह नहीं।

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल हिन्दी साहित्य, धर्म और दर्शन के क्षेत्र में सुप्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपना जीवन समाज के लिए समर्पित किया है। अध्ययन करते समय भी वे अपने सहपाठियों को अपने स्वभाव व व्यवहार से प्रभावित करते थे। आपने अध्ययन के पश्चात् चिन्तन शक्ति को महत्त्व दिया और व्यावहारिक ज्ञान को ग्रहण किया। उन्होंने हिन्दी में अध्ययन करते हुए जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, भगवती चरण वर्मा, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. भोलानाथ तिवारी, विजयेन्द्र स्नातक आदि के साहित्य का अनुशीलनात्मक अध्ययन किया। उस अध्ययन से आपको जो दिशा मिली, वह जैन जगत के लिए अत्यन्त ही सार्थक बन गई।

आपकी हिन्दी के विशिष्ट प्राचीन–अर्वाचीन आदि निबन्धकार, गद्यकार एवं काव्यकारों में रुचि थी। आपका परिवेश जैन धर्म के सिद्धान्तों से परिपूर्ण था। इसलिए प्रारम्भ से ही आपको अपने गाँव में लौकिक शिक्षा के साथ–साथ आध्यात्मिक ज्ञान भी मिलता रहा।

आप प्रारम्भ से ही जैन जगत् के प्रसिद्ध बारह भावनाएँ, आलोचना पाठ, मेरी भावना, सामयिक पाठ आदि के काव्य में निमग्न हो गए। छात्र जीवन में भी आप विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच इन काव्यों को पढ़ा करते थे।

डॉ. भारिल्ल के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए डॉ. कपूरचन्द कौशल का कहना है कि "उन्होंने न केवल अपने देश में वरन् विदेशों में भी पराकाष्ठा को प्राप्त किया। वे इसीलिए क्रांतिकारी व्यक्तित्व के धनी माने जाते हैं।"[1] अध्यात्म प्रकाश भारिल्ल ने उनके व्यक्तित्व के विषय में प्रकाश डाला है– "उन्होंने अपने व्यक्तिगत हित एवं पारिवारिक दायित्वों की उपेक्षा करते हुए समाज में तत्त्व प्रचार की अनेक योजनाएँ क्रियान्वित कीं।"[2]

डॉ. भारिल्ल का व्यक्तित्व सहज–सरल एवं अध्यात्म के चिन्तन में निमग्न है। उनकी अभिव्यक्ति की शक्ति नाना सन्दर्भों को उपस्थित करती है। उनका आभा मंडल भास्कर की दिव्य रश्मियाँ ही नहीं देता, पर उनका भाषा प्रवाह अध्यात्म की सहस्रों किरणें भी उपस्थित करता है। उन्हें जो भी देखता या सुनता है। वे आत्मा के विशुद्ध स्वरूप के भावों की ओर खिंचे चले जाते हैं और एक सम्यक् स्वाध्याय की ओर अग्रसर हो जाते हैं।

जन्मस्थान एवं शिक्षणप्रवेश

आपका जन्म ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी विक्रम संवत् 1992 (दिनांक 25 मई 1935 ईस्वी) को ललितपुर जिले के 'बरौदास्वामी' गाँव में हुआ।[3] आपके पिताश्री हरदासजी एवं मातुश्री पार्वतीबाई थी।

उस समय उस गाँव में 200 घरों की बस्ती थी, जिनमें जैनियों के घर पांच–छह ही थे। वे सभी परिवार धार्मिक संस्कार वाले थे।

आप तीन भाई और एक बहन हैं। डॉ. भारिल्ल सदैव चिन्तनशील, विचारशील और प्रभावशील बने रहे हैं।

1. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, सम्पादक – राजेश कुमार जैन, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 9
2. वही, पृष्ठ 47
3. वही, पृष्ठ 65

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में हुई। सुविधा न होने पर वे अपने मित्रों सहित चार–पाँच किलोमीटर दूर ननोरा गाँव में पढ़ने जाने लगे। सन् 1946 की दीपावली के तत्काल बाद वीर विद्यालय पपौरा में अध्ययन के लिए चले गए। उसके पश्चात् सन् 1947 जुलाई में गोपाल दिगम्बर जैन विद्यालय, मुरैना में शास्त्रीय अध्ययन करने लगे। आपकी शिक्षा मुरैना एवं राजखेड़ा में सम्पन्न हुई। आपने सन् 1954 में शास्त्री व न्यायतीर्थ परीक्षा उत्तीर्ण की। आपने पण्डित मक्खनलाल शास्त्री, नन्हेंलाल जी शास्त्री एवं पण्डित राजधर जी व्याकरणाचार्य आदि गुरुओं से गौरवपूर्ण शिक्षा प्राप्त की।

व्यक्तित्व : विभिन्न मत

डॉ. भारिल्ल अपनी विद्वता, ओजस्विता और ज्ञान के कारण सम्पूर्ण देश के प्रत्येक क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। राजनीति, धर्म, दर्शन और साहित्य के अनेकानेक विद्वानों ने डॉ. भारिल्ल के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में उच्चकोटि के विचार व्यक्त किए। इन विचारों से हम यह जान पाते हैं कि वे भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बना चुके हैं। इस दृष्टि से यहाँ महत्त्वपूर्ण विचारकों के कथनों का उल्लेख असंगत नहीं है–

संतों की दृष्टि में

राष्ट्रसंत आचार्य विद्यानन्द जी लिखते हैं– 'डॉ. भारिल्ल का बीसवीं शताब्दी के जैन–इतिहास में अनन्य योगदान रहा है। डॉ. भारिल्ल जी एक अहर्निश, समाज सेवा, धर्म प्रभावना एवं ज्ञान साधना में निमग्न, मनीषी साधक के रूप में जैन समाज के विशिष्ट विद्वत्‌रत्न सिद्ध हुए हैं।'[1]

आचार्य आर्यनन्दी जी के अनुसार– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल एक उच्च कोटि के साहित्यभूषण, वक्ता, लेखक एवं जिनधर्म के प्रचारक हैं।[2]

उपाध्याय श्रुतसागर मुनि लिखते हैं– डॉ. भारिल्ल अपने प्रवचनों से समाज को मंत्र–मुग्ध कर दिशाबोध कराते हैं।[3]

मुनिश्री निर्वाणसागर जी ने अपने साक्षात्कार में कहा– 'डॉ.

1. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, पृष्ठ 1
2. वही, पृष्ठ 2
3. वही, पृष्ठ 3

हुकमचन्द भारिल्ल मुनियों को आदरपूर्वक उचित सम्मान दिया करते हैं तथा वे आगम के अनुकूल ही बात करते हैं।'[1]

आचार्य श्री धर्मभूषण जी लिखते हैं– 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल जिनवाणी के कुशल वक्ता, प्रखर स्वाध्यायी, प्रबुद्ध लेखक, अनुचिन्तक, अध्यात्मिक प्रवक्ता व दार्शनिक विचारक हैं। आप एक सिद्धहस्त लेखक ही नहीं, अपितु वीतराग वाणी के सटीक रचनाकार, व्याख्याकार व समर्थ उद्घोषक भी हैं।'[2]

श्वेताम्बर जैन तेरापन्थ के दशम आचार्य, आचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा है– 'वर्तमान में कोई व्यक्ति आत्मवित है– यह कहकर मैं अतिशयोक्ति करना नहीं चाहता; किन्तु निश्चयनय की गहराई तक पहँचने वाला व्यक्ति आत्मवित् होने की दिशा में प्रस्थान अवश्य करता है। डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने इस दिशा में प्रस्थान किया है– यह प्रसन्नता का विषय है। उन्होंने सत्य के रहस्यों को जानने और प्रकट करने के लिए निश्चय नय का बहुत अध्ययन किया है।

यह उन जैन विद्वानों के लिए विमर्शणीय है, जो केवल व्यवहारनय के सहारे सत्य के रहस्यों का उद्घाटन करने का प्रयत्न करते हैं। व्यवहारनय की उपयोगिता को हम कम न करें और साथ–साथ निश्चयनय की उपेक्षा भी न करें।'

''ज्ञानतीर्थ जयपुर नगर, जग में बना विशाल।
हुकमचन्द भारिल्ल ने, अद्भुत किया कमाल।।
देश विदेशों में सदा, करते तत्त्व प्रचार।
स्वानुभूति झट हो उन्हें, ये मेरे उद्गार।।
क्रमबद्धपर्याय में जो कुछ भी हो हाल।
इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र तक नहीं सके वह टाल।।''

जैन श्वेताम्बर तेरापन्थ के युवाचार्य महाश्रमण के अनुसार डॉ. भारिल्ल विशिष्ट विद्वान प्रभावशाली लेखक हैं। वे अपनी विद्वत्ता, वाक् कौशल और लेखन कौशल से जैनशासन की खूब प्रभावना करते हैं।[3]

श्रवणबेलगोला जैन मठ के भट्टारक स्वस्ति श्री चारूकीर्ति

1. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 3
2. वही, पृष्ठ 4
3. वही, पृष्ठ 6

स्वामीजी ने भी लिखा है – "आज डॉ. भारिल्ल जैसे विद्वान खोजना बहुत दुर्लभ है, जिन्होंने अपने बच्चों एवं बच्चों के बच्चों को भी विद्वान बनाया है। मैं ऐसे अनेकों विद्वानों को जानता हूँ, जिन्होंने स्वयं तो ज्ञान का बहुत प्रचार किया; किन्तु वे अपनी ही आगामी पीढ़ी को विद्वान बनाने को तैयार नहीं हैं या नहीं बना सके।

अद्भुत ज्ञान एवं उस तत्त्वज्ञान के प्रचार में आपके विशिष्ट योगदान को देखते हुए मैं आपको 'ज्ञान कुबेर' कहकर ही सम्बोधित करना चाहता हूँ। जो धन बरसावे वह धन कुबेर; जो ज्ञान बरसावे वह ज्ञान–कुबेर, चूँकि आप ज्ञान बरसाते हैं; इसलिए आप ज्ञान–कुबेर हैं।"

श्रीक्षेत्र कनकगिरी मठ के स्वस्ति श्री भुवनकीर्ति भट्टारक स्वामी जी लिखते हैं–"पण्डितजी जीवन की शुरुआत से ही सरस्वती की आराधना, स्वाध्याय एवं चिन्तन–मनन में लगे हुए हैं। समयसार आदि उत्कृष्ट ग्रन्थों का अध्ययन एवं स्वाध्याय करके अनेक पुस्तकें लिखीं हैं।

पण्डितजी की मौलिक कृति 'क्रमबद्धपर्याय' को कई बार पढ़ा। यह कृति वर्तमान में सारस्वत विद्वत् लोक में प्रज्वलित प्रकाशमान ध्रुवतारा है।"

मनीषियों की दृष्टि में

राजस्थान के तात्कालीन राज्यपाल न्यायमूर्ति अंशुमान सिंह लिखते हैं– 'डॉ. भारिल्ल ने अपनी प्रखर प्रज्ञा से शिक्षा, साहित्य, दर्शन और अध्यात्म के क्षेत्र में विशेष पहचान कायम की है। उन्होंने अपने सृजन और विचारों से समाज को नई राह दिखाई है।'[1]

उत्तरप्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल विष्णुकानत शास्त्री ने लिखा है– 'डॉ. भारिल्ल ने देश की आठ विभिन्न भाषाओं में अनेक मौलिक पुस्तकों की रचना की। वे देश की अखिल भारतीय शीर्षस्थ संस्थाओं से सम्बद्ध रहते हुए आज भी भारतीय संस्कृति, शान्ति एवं अहिंसा की दिशा में प्रयासरत हैं।'[2]

उपराष्ट्रपति श्री भैरोसिंह शेखावत ने लिखा है कि डॉ. भारिल्ल साहित्य सृजन के साथ–साथ देश–विदेश में आध्यात्मिक प्रवचनों से

1. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 7
2. वही, पृष्ठ 9

भारतीय दर्शन का प्रसार भी कर रहे हैं।[1]

उच्च शिक्षा मंत्री राजस्थान सरकार श्री ललित किशोर चतुर्वेदी लिखते हैं– डॉ. भारिल्ल सरल, सुबोध, तर्कसंगत एवं आकर्षक शैली के प्रवचनकार हैं।[2]

डॉ. उदयचन्द्र जैन ने अपने प्राकृत काव्य 'चन्दसमो हुकमचन्दो' में डॉ. भारिल्ल के समग्र जीवन पर प्रकाश डाला है–

धण्णधरा किसण जेद्ठस्य हि वारो,
उण्णीसतिण्णपणनीमइमहाह ईसो।
भू उत्तरो ण हि उत्तर–देस सत्वो,
रम्भो वरोदललियो पुरमेव धण्णो।।

वास्तव में ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी का वार शनिवार धन्य है। सन् 1935 ई. का मई मास भी धन्य है। सम्पूर्ण उत्तरप्रदेश ही धन्य हो गया, उसमें भी वरौदास्वामी ग्राम धन्य हुआ। जिसके धन्य से सभी लोग आनन्दित हो गए।

भारिल्ल गोत्र की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है–

भारिल्ल–गोत्त–गरिमा–हुकमेण होदि
अज्झप्य भार–हुकमो हि हवेदि दित्वो ।
णाणं च देसण–चरित्रं–पहाण–सुद्धो
हुं हुंकरे हुकमचंद–गुणीस – भागं ।।

भारिल्ल गोत्र की गरिमा हुकम/आज्ञा से होती है। आज्ञा भी अध्यात्म के भार से युक्त होती है। जो दिव्य होता है, वह हुकम ज्ञान, दर्शन और चरित्र की प्रधानता से शुद्ध है। वह हुकमचन्द बन गया।

सो बाल–बालिग–जणाण सुबाल–वोहं
तक्केण सत्ति–पवयेण पहाण–एण ।
वोहज्जदे सरल–सोम्म–सहाव से लिं
किं सक्करा करकरा कि होदि ।।

वह व्यक्तित्व बालक–बालिकाओं के लिए छोटी–छोटी सीख देने लगा, अपनी तर्कशक्ति प्रवचन के प्रबल प्रवाह से बोध देने लगा।

---

1. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 21
2. वही, पृष्ठ 22

वह भी सरल, सौम्यता युक्त अत्यन्त मधुर शैली में। क्या शक्कर कभी कटुक हो सकती है? क्या कभी उसमें कड़वाहट आ सकती है ?

जो अत्थि दास–हरदास–हरव्व दासो
तस्सेव पुत्त हुकमो रयणो दु जेहो ।
जेट्ठो अपुव्वपदेहा–परिदुण्ण–सीलो
अत्थि त्थि अणुजो अणुजोग–सम्मे ।।

जो हर के दास हरदास हैं, उनके हुकमचन्द एवं रतनचन्द दो पुत्र हैं। जिनमें ज्येष्ठ रतनचन्द अपूर्व प्रतिभाशाली और शील से युक्त है ही, पर अनुज तो अनुयोग में अच्छी पकड़ रखने वाला है।

सोम्मो वि जो सरलो विउसो विणम्मो
अज्झप्प अप्य–समये कह अप्प रूवं ।
लक्खं विणय विहं णयसम्म–भावं
चक्खेदि वक्खण–समत्त–विसुद्ध–अप्पं ।।

जो सौम्य है, सरल है, विद्वान है, जो अध्यात्म दृष्टिकोण। आत्म के स्वरूप को समय में/प्रतिपादित आत्म स्वरूप को कह रहा है। जिसका लक्ष्य नय है, वह निश्चयनय की विधि को साम्यभावपूर्ण समझा रहा है तथा जिसके व्याख्यान में समत्व को महत्त्व दिया जा रहा है एवं विशुद्ध आत्मा की बात को भी कह रहा है।

सामीदू वच्छल रसे वि णिमग्ग–सव्वे
तं बालगं च अणुरोहणमेव अग्गे ।
भासेंति भो ! समयसारपवीण–बालो
गच्छेज्ज अम्ह सह अप्प–विसुद्धभावं ।।

वे सभी स्वामी–कानजी स्वामी के वात्सल्य रस में निमग्न थे, वे उस बालक से अनुरोधार्थ आगे आए और बोलते हैं कि ओ समयसार प्रवीण बालक! हमारे साथ चलो और आत्मा के विशुद्ध भाव की बात करो।

अप्पं च अप्पभावं अणुचिंतमाणो
सो णेह–अप्प–णिलएं समयं च सादि ।
अग्गेसरो हवदि अप्प–पहाणमग्गे
जो अज्ज अप्प अणुसीलगमेव राजे ।।

वह आत्मा और आत्मभवन का चिन्तन करने वाला और आत्मस्वरूप रूपी निलय में स्थित समय का ध्यान करता है और

आत्म–प्रधान मार्ग में अग्रसर होता है जो आज आत्मानुशीलन के रूप में शोभा पा रहा है। उस व्यक्तित्व ने विद्यावाचस्पति की उपाधि से अलंकृत होकर अध्यात्मरूपी विशाल सागर को जो रूप दिया वह शोध से परिपूर्ण साहित्य अच्छी तरह से लाभ पहुँचा रहा है। ऐसे व्यक्तित्व की लेखनी से चालीस से ऊपर महान ग्रन्थों का लेखन हो गया।

एगादु एग–वर–खोत्त–वरोपवारो
णण्हे वि मक्खणमिदुत्त–दिठत्त–णाणी।
विज्जागुरु गुरुतरं हुकमं च णेत्ता
विज्जाइ संग–रस अप्प–धरेण्ण–वेत्ता ।।

रतनचन्द जी और हुकमचन्द जी एक–से–एक क्षेत्रों में जाते, पपौरा आते, पण्डित नन्हेलाल जी जैसे मृदु और पण्डित मक्खनलाल जी जैसे कठोर ज्ञानी विद्या गुरु होते हैं। वे उनकी विद्याओं के गुरुत्तर आदेश को पाकर इस लौकिक विद्या के साथ आत्मरस की धारा के वक्ता बन जाते हैं।

अप्पेयणंदणवणे रमदे गुरुत्तो
सामी–सु–आसिस–गुरुं लहिदूण सम्मं।
देसे विदेस–परदेस–सुगंध–कुंदं
वाहट्ठणं च महतित्थ–सरुव–छंदं ।।

डॉ. साहब आत्मारूपी नन्दन वन में दृढ़ता से रमते हैं। वे कानजी स्वामी का आशीष पाते हैं और उस सम्यक् आशीष को लेकर कुन्द पुष्प की सुरभि/आचार्य कुन्दकुन्द के पाहुड़/उपहार को देश, विदेश एवं अन्य देशों में बहाने के लिए महान तीर्थयात्रा के स्वरूप को गतिमान करते हैं।

वास्तव में ज्ञानरूपी गंगा के स्वच्छ नीर को जिसने जान लिया है, जिसकी सम्यक् धारा को आत्मा की शुद्ध धारा कहा जाता है, उस रूप को अपने सुन्दर चित्र को रखते हैं, तभी तो आपकी सौम्यता हस्त चाल एवं वाणी की पटुता भी कुछ कह जाती है।[1]

समसामयिक परिस्थितियों का प्रभाव

व्यक्ति पर अपने परिवार, कुटुम्ब और समाज का प्रभाव किसी

1. तत्त्ववेता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 6

न किसी रूप में अवश्य पडता है। उसमें अच्छे संस्कार माता–पिता से प्राप्त होते हैं। इसके अनन्तर वे शिक्षक जनों से शिक्षा को ग्रहण करते हैं, और समाज के व्यक्तियों से अनेक प्रकार की उन्नति की ओर अग्रसर होते हैं।

1. सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः सामाजिक परिस्थितियों से वह वंचित नहीं रह सकता। अतः डॉ. भारिल्ल के व्यक्तित्व पर भी सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा।

सन् 1880 में लार्ड रिपन वायसराय के रूप में भारत आए जो उदारवादी नीतयों के पोषक थे। लार्ड डभरिन के शासन काल में सन् 1885 में ए.ओ. ह्यूम की प्रेरणा से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गई। अंग्रेजी शासन व्यवस्था पर कटाक्ष करते हुए भारतेन्दु ने लिखा –

भीतर–भीतर सब रस चूसे,
बाहर से तन–मन–धन मूसे।
बातिन में अति तेज, क्यों सखि साजन ? नहीं अंग्रेज।

सन् 1886 में स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। आपने धार्मिक अन्धविश्वासों, रूढियों तथा मिथ्या धारणाओं का कड़ा विरोध किया।

भारतीय इतिहास में उन्नीसवीं सदी का विशेष महत्व है। इसे यदि भारतीय पुनर्जागरण का काल कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। समाज सुधारों के प्रति बढती प्रतिबद्धता के कारण अनेक सामाजिक व धार्मिक आन्दोलन इस काल में हुए। इन आन्दोलनों ने रूढिवाद और कर्मकाण्डों पर जमकर प्रहार किए। 1829 में राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना की। इसके माध्यम से उन्होंने अद्वैतवाद तथा धार्मिक सद्भाव का प्रचार–प्रसार किया। सती प्रथा तथा बाल विवाह का आपके द्वारा जमकर विरोध हुआ। उनके निधन के पश्चात् देवेन्द्रनाथ टैगोर तथा केशव चन्द्रसेन ने इस समाज सुधार के आन्दोलन को गति प्रदान की। दयानन्द सरस्वती

ने सन् 1875 में आर्यसमाज के नाम से नया संगठन खड़ा किया। आपने धर्म के नाम पर फैले आडम्बरों पुरोहितों के प्रभुत्व तथा अन्य रूढिगत संस्कारों की कटु आलोचना की। उन्होंने मूर्तिपूजा तथा अवतारवाद आदि मान्यताओं का कडा विरोध किया। अछूतोद्धार से लेकर स्त्रियों की दशा सुधारने तथा बालविवाह व पर्दाप्रथा आदि को बंद करने के लिए जन चेतना जागृत की।

17वीं शताब्दी में दिगम्बर धर्म दो भागों में विभाजित हुआ, जो तेरापंथ और बीसपंथ के नाम से जाने गए। इस आध्यात्मिक क्रांति के जनक पं. बनारसीदासजी थे। उनके पश्चात् पण्डित प्रवर टोडरमलजी ने इस क्रांति का शंखनाद कर उत्तर भारत से भट्टारकों को पलायन करने के लिए बाध्य कर दिया। शनैः–शनैः उत्तर भारत से भट्टारक पीठ अस्तित्वहीन हो गई। टोडरमलजी के पश्चात् पं. जयचंदजी छाबडा, ब्र. रायमल्लजी आदि ने इस ज्योति को जलाए रखी।

ब्र. शीतलप्रसाद जी से विधवाओं का दुःख नहीं देखा गया। वे खुलकर विधवा विवाह का समर्थन करने लगे। जैन समाज में भारतवर्षीय दि. जैन महासभा और अ. भा. दि. जैन परिषद् जैसी संस्थाओं का उदय हुआ। महासभा जहाँ पुरातनपंथी संस्था के रूप में जानी गई वही परिषद् बाबूओं की संस्था के रूप में विख्यात हुई। परिषद् के संस्थापक ब्र. शीतलप्रसादजी जैसे समाज सुधारक थे, जिन्होंने महासभा की पुरातनपंथी विचारधारा का डटकर विरोध किया। उस काल में महासभा ने छपे हुए ग्रन्थों का विरोध किया परन्तु परिषद् के आगे उनकी एक नहीं चली। परिषद् छपे हुए ग्रन्थों की पक्षधर थी। आज कल्पना करो यदि छपे हुए ग्रन्थ नहीं होते तो क्या होता ?

भट्टारक सम्प्रदाय उत्तर भारत से लगभग समाप्त ही हो गया। आचार्य शान्तिसागरजी (दक्षिण) तथा आदि सागरजी अंकलीकर की मुनि परम्परा विकसित हुई, जो लगभग बीसपंथ की पोषक थी। इसी काल में आचार्य शान्तिसागरजी छाणी परम्परा भी उदय में आई जो तेरापंथ की उपासक थी। इसप्रकार मुनिराज भी दो परम्पराओं में बंट गए जो आज भी विद्यमान हैं। मुनिराजों के साथ–साथ विद्वानों में भी यह भेद खुलकर सामने आ गया। डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल जन्मजात

तेरापंथ के उपासक रहे, जबकि उनके गुरू पण्डित मक्खनलालजी शास्त्री के हाथों बीसपंथ की कमान थी। क्षुल्लक गणेश प्रसादजी वर्णी ने गांव–गांव में पाठशालाएं खुलवाने का बीडा उठाया, जिससे नई पीढी के बच्चों में धार्मिक संस्कारों का बीजारोपण हुआ।

डॉ. भारिल्ल के समय अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए। भारतीय समाज में अन्धविश्वास, छुआछूत, विधवा–विवाह, बाल–विवाह का आरम्भ कुछ अंशों तक हो चुका था। आज भारतीय समाज अनेक जातियों में बँट चुका है। प्रत्येक जाति ने अपने–अपने वर्ग बना लिए हैं। समाज में भौतिकवाद बढ़ने लगा है। वेश–भूषा, खान–पान, रहन–सहन सब बदल गये। जहाँ शिक्षा का विकास हुआ है वही समाज में भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी बहुत बढ़ गई है। समाज पर टी.वी, वी.सी.आर., सिनेमा, टेप, सीडी आदि का दुष्प्रभाव बहुत पड़ा।[1]

डॉ. भारिल्ल अन्ध–विश्वास से दूर रहे। इन्होंने धर्म पर सच्ची श्रद्धा व्यक्त की तथा अपने घर पर सभी सामग्री उपलब्ध होने पर भी आपने भारतीय सभ्यता को नहीं छोड़ा। अपनी वेश–भूषा, धोती–कुर्ता व टोपी को ही रखा। आज भी आपने इसी वेशभूषा को धारण कर रखा है।

आपकी राष्ट्रीय भावना आपके लेख 'मैं कौन हूँ' में देखी जा सकती है।

डॉ. भारिल्ल ने सामाजिक परिस्थितियों को अपने उपन्यास 'सत्य की खोज' में नायक विवेक के माध्यम से व्यक्त किया है।

वे लिखते हैं–

"धर्म के नाम पर न तो मैं समाज को विघटित होते देख सकता हूँ और न मुझसे धर्म की कीमत पर संगठन ही होगा। मैं धर्म को कायम रखकर समाज को संगठित करूँगा व समाज को संगठित रखकर धर्म को उसके सामने प्रस्तुत करूँगा– यह मेरा संकल्प है।"[2]

---

1. डॉ. महावीर प्रसाद जैन, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 13–14 प्रकाशक : पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापूनगर, जयपुर
2. अरूण कुमार जैन, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल और उनका कथा साहित्य, पृ. 11 प्रका. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल चेरिटेबल ट्रस्ट 304, सन् फ्लैश रिषि कॉम्पलेक्स, मुम्बई

उनके साहित्य को पढ़कर हम यह कह सकते हैं कि डॉ. भारिल्ल पाश्चात्य संस्कृति की ओर अग्रसर न होकर अपने कर्त्तव्यों की ओर अग्रसर रहे। घर पर सभी सुख–सुविधा होने पर भी सदा साधारण ही बने रहे। उनके व्यक्तित्व की यह सादगी भी सभी को प्रभावित करने में समर्थ हुई।

2. राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव

डॉ. भारिल्ल का चित्त जन्म से ही संवेदनशील रहा है। डॉ. भारिल्ल ने स्वयं कहा है कि किसी भी असहज घटना और महापुरुषों के जीवन से मेरा चित्त आन्दोलित हो जाता था। गांधीजी के अहिंसात्मक सत्याग्रही आन्दोलनों ने मुझे गहराई से आन्दोलित किया। उस समय जिसप्रकार का प्रगतिशील साहित्य लिखा जा रहा था, उसने भी मुझे प्रभावित किया।

उस समय का समाज रुढ़िग्रस्त था। जैन समाज में भी अनेक रूढ़ियाँ थीं। उनके विरुद्ध चलने वाले आंदोलनों में भी मैं सक्रिय रहा हूँ। जब भारत आजाद हुआ था, तब मेरी उम्र मात्र 12 वर्ष थी।

राजनीति ने भी मुझे प्रभावित किया। हमारे गाँव में ग्रामसभा और न्यायपंचायत के चुनाव हो रहे थे। तब मैं मात्र 20 बरस का था और भाई साहब साढ़े बाईस वर्ष के थे। हम दोनों के नाम मतदाता सूची में नहीं थे। सूची में नाम दर्ज कराने का समय भी निकल चुका था। फिर भी हमने 10–10 रु. देकर अपने नाम सूची में दर्ज कराये और चुनाव लड़ा और जीत भी गए।

इसप्रकार हम कह सकते हैं कि डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल पर राजनीतिक प्रभाव पड़ा; लेकिन वह तब तक ही रहा, जब तक आध्यात्मिकसत्पुरुष कानजी स्वामी से उनका मिलन नहीं हुआ। उसके पश्चात् वे राजनीति से विरक्त हो आध्यात्म की ओर मुड़ गए। वे अध्यात्म के चिन्तन को महत्त्व देने लगे। जिसके परिणामस्वरूप एक नई जागृति हुई। लोगों ने अध्यात्म ग्रन्थों को समझने के लिए उनके शिक्षण–प्रशिक्षण, प्रवचन आदि को महत्त्व दिया। साल में जगह–जगह लगने वाले अध्यात्म के शिविरों ने सभी को अध्यात्म समझने का अवसर प्रदान किया।

3. साहित्यिक परिस्थितियों का प्रभाव

डॉ. भारिल्ल के मन मस्तिष्क पर तत्कालीन साहित्यकारों ने अमिट छाप छोडी है। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द, निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त एवं रामधारी सिंह दिनकर शिवमंगल सिंह सुमन एवं श्री कृष्ण सरल जैसे साहित्य मनीषियों की कृतियों का आपने बारीकी से अध्ययन किया। यही कारण है कि आपके साहित्य में इन साहित्यकारों का पुट स्पष्ट दिखाई देता है।

डॉ. भारिल्ल साहित्य प्रेमी थे। उन्होंने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी एवं गुजराती आदि के साहित्य का अध्ययन किया और उनसे प्राप्त विचारों को जन–जन तक पहुँचाने का प्रयास किया। वे विचार उनके सृजन के क्षेत्र में भी आगे आने लगे। उन्होंने 'वैराग्य' महाकाव्य और 'पश्चाताप' खण्डकाव्य लिखा, जिसे समाज में सम्मान भी प्राप्त हुआ। नेमिनाथ भगवान के वैराग्य का चित्रण, राजुल के वियोग का मार्मिक वर्णन भी है। सीता और यशोधरा की तुलना में राजुल की स्थिति अत्यधिक विषम थी, क्योंकि सीता का अपहरण हुआ था, उसके पहले उसे पति का सान्निध्य प्राप्त था, पर राजुल का दूल्हा तो दरवाजे से ही लौट गया था, उसे तो पल भर भी संयोग न मिला। तब राजुल अपने उद्‌गारों को व्यक्त करती हुई कहती हैं कि जब मेरे पति वैरागी हो गये तो अब मैं भी वैरागी ही बनूंगी। ऐसे चित्रण को विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है।

डॉ. भारिल्ल ने विविध प्रकार के साहित्य का सृजन किया। उनके निबंधों में 'मैं कौन हूँ', धर्म के दशलक्षण, 'मैं स्वयं भगवान हूँ', अहिंसा, महावीर की दृष्टि में, 'अनेकान्त और स्याद्‌वाद', बिखरे मोती, धर्म के दशलक्षण आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आपका 'सत्य की खोज' नामक उपन्यास 'आप कुछ भी कहो' नामक कहानी संग्रह भी है। छोटे–बड़े निबंध, प्रेरक रूपक, संवाद युक्त विवेचन आदि ने समाज के लिए एक नई दिशा दी। क्योंकि उनके सृजन में अध्यात्म का अंश सर्वोपरि है, जो मानव–मन को संसार की असारता के विषय में चिंतन करने के लिए प्रेरित करता है।

4. धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव

भारिल्ल पर धार्मिक परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ा। इनके पिता ने धार्मिक शिक्षा दिलाकर इन्हें एक विद्वान् बनाया तथा सन् 1956 में अच्छे प्रवचनकार के रूप में विख्यात हुए। फिर वे सन् 1956 में कानजी–स्वामी के सम्पर्क में आए और तभी से उनके शिष्य बन गये। जिस घटना ने उनके जीवन को आध्यात्मिकता की ओर मोड़ दिया वह घटना उन्हीं के शब्दों में इसप्रकार है–

हम उत्तरप्रदेश के एक गाँव बबीना केन्ट (झांसी) में दुकान करते थे। बात ईस्वी सन् 1956 के दशहरे के आसपास की है। मेरे अग्रज पंडित रतनचंदजी शास्त्री दुकान का सामान लेने झांसी गये थे।

वहाँ एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि जब केवली भगवान ने जैसा देखा–जाना–कहा है, वैसा ही होगा; उसमें कोई फेरबदल संभव नहीं है, तो फिर हम कुछ करें ही क्यों?

इस प्रश्न ने उनके हृदय को झकझोर दिया। वे स्तब्ध रह गये। उसके उत्तर में उन्होंने यद्वाकद्वा कुछ भी कहकर पाण्डित्य प्रदर्शन न करके यही कहा भाई! तुम बात तो ठीक कहते हो, मैं अभी इसके बारे में कुछ भी नहीं कह सकता, अगले शनिवार को आऊँगा, तब बात करूँगा। रास्ते भर में यह विचार करता रहा।

शाम को प्रवचन में भी जब मैंने यही चर्चा की, तब एक अभ्यासी बाई बोली – इसमें क्या है? यह तो कानजी स्वामी की 'क्रमबद्धपर्याय' है।

उस समय हमने कानजी स्वामी का नाम तो सुन रखा था। अतः जब अधिक जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होंने 'आत्मधर्म' के वे दो विशेषांक लाकर दिये, जिसमें 'क्रमबद्धपर्याय' पर हुए स्वामीजी के तेरह प्रवचन प्रकाशित हुए थे। प्रथम अंक में आठ प्रवचन थे और दूसरे में पाँच। ये अंक ईस्वी सन् 1954–55 में ही निकले थे। बाद में तो वे ही प्रवचन 'ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव' नाम से पुस्तकाकार रूप में भी प्रकाशित हुए थे।

उनको पढ़कर तो हमारे हृदय कपाट खुल गये। ऐसा लगा कि

हमें कोई अपूर्व निधि मिल गई। इसका रस कुछ ऐसा लगा कि चढ़ती उम्र के सभी रस फीके से हो गये। हम कृतकृत्य से हो गये। फिर क्या था तभी से गंभीर अध्ययन, मनन, चिंतन, चर्चा–वार्ता आरम्भ हो गई।

आध्यात्मिकसत्पुरुष कानजी स्वामी के उदय ने एक ऐसी आध्यात्मिक क्रान्ति की कि स्वाध्याय परम्परा पुनर्जीवित हो उठी और गाँव–गाँव की शास्त्र सभाओं में समयसार, प्रवचनसार और मोक्षमार्ग प्रकाशक का स्वाध्याय होने लगा और आज तो स्थिति यह है कि बड़ी–बड़ी सभाओं में भी समयसार पर प्रवचन होने लगे हैं। जी जागरण चैनल पर भी डॉ. भारिल्ल के समयसार पर प्रवचन चलते हैं।

पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी ने कई वर्षों के अन्तर्द्वन्द्व के बाद विक्रम संवत् 1991 में महावीर जयंती के दिन अपनी मुँह से पट्टी उतार फेंकी और अपने को दिगम्बर जिनधर्म में पुनः एक नया शंखनाद फूँका गया तथा आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी के समय जो एक आध्यात्मिक क्रान्ति उभरी थी और बीच में ठंडी हो गई थी वह पुनः उभरना प्रारम्भ हुई।

जिस समय स्वामी जी ने दिगम्बर धर्म स्वीकार किया, उस समय दिगम्बरों का जैन धर्म जीवनरूढ़ि, अंधश्रद्धा, शुष्क क्रियाकाण्ड में तड़प रहा था। वहाँ धर्म जैसी कोई वस्तु ही नहीं थी, इसी व्यक्ति ने जिनागम का मंथन करके जीवन विरोधी तत्त्वों के समक्ष आज के निकृष्ट काल में शुद्धात्मतत्त्व की प्राणप्रतिष्ठा की। जैन समाज को यह सूत्र दिया कि स्वावलम्बन अर्थात् निज शुद्ध चैतन्य का अवलम्बन ही धर्म है।

डॉ. भारिल्ल ने कहा कि मेरे प्रारम्भिक जीवन की अपेक्षा आज की धार्मिक परिस्थितियाँ बहुत अच्छी हैं। गाँव–गाँव में समयसार का स्वाध्याय चलने लगा है। उस समय जैन धर्म के गहरे अध्येता उंगलियों पर गिनने जितने ही थे, पर आज गाँव–गाँव में मिल जायेंगे। 500 से अधिक शास्त्री विद्वान तो हमने ही तैयार किये हैं। इसप्रकार डॉ. भारिल्ल के जीवन में समसामयिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा।

हम और हमारे मूल्य युग–युग की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। वे अत्यंत ही समीचीन एवं व्यावहारिक हैं, उनके सूत्र हमारी प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता का भी प्रतिपादन करते हैं। वे मानवीय मूल्यों की भावना से युक्त हैं, उनमें सम्पूर्ण जीव जगत् के लिए निर्देश हैं। वे प्राणीमात्र के लिए उपकारी हैं। उनमें आचार, विचार, व्यवहार, तत्त्व, नियम, योग, समाधि आदि के साथ–साथ ऐतिहासिक और सांस्कृतिक भी हैं और उनमें है सम्पूर्ण विकास का परिचय, जो आज भी प्रामाणिक है, मान्य है।

हमारे इस विकास में वैदिक और श्रमण संस्कृति ये दो संस्कृतियाँ प्रारम्भ से ही विद्यमान हैं। इन संस्कृतियों ने अनेक प्रकार के विचारों को प्रतिपादित किया है। उनमें सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना तथा ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक आदि चरित्रनायकों की सांस्कृतिक विरासत भी है। जहाँ वैदिक परम्परा ने वेदवचन को सर्वोपरि मान्य कर उनके विविध मूल्यों की वास्तविकता पर प्रकाश डाला है, वहीं श्रमण परम्परा की श्रमण संस्कृति ने प्रत्येक प्राणी के लिए प्राणवान मानकर उनके संरक्षण, संवर्धन एवं उनके विधि विधानों को सम्यक् रूप से प्रतिपादित किया है। इस विकासशील संस्कृति ने मनु अर्थात् कुलकरों की जो परम्परा दी है वह ऐतिहासिक दृष्टि से व्यवस्थित समाज को प्रतिपादित करती है। तीर्थंकर चरित्र, गणधर विवेचन, चक्रवर्ती की संपदा आदि के मूल्यों में समृद्धि, शासन व्यवस्था, सामाजिक एवं धार्मिक चित्रण भी है।

आचारांग आदि आगमों की दृष्टियों में जहाँ ऐतिहासिक पक्ष है वहीं पर सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक आदि का चित्रण भी है। यही नहीं, अपितु इस चित्रण में आदि पुरुष से लेकर तत्कालीन परिवर्तनों पर भी विचार किया गया है।

श्रमण संस्कृति के इतिहास में बौद्ध एवं जैन इन दो परम्पराओं का विशेष स्थान है। इनकी भी ऐतिहासिकता है। श्रमण की जैन परम्परा में कुलकर परम्परा, कल्पयुग की प्रमुख धारा का चित्रण करती है। कल्पयुक्त के कल्प चौदह कुलकर कहे गये हैं। जो कुलों को धारण करते हैं या कुलों की व्यवस्था करते हैं वे कुलकर कहलाते हैं।

साहित्य की भूमिका

साहित्य और साहित्यकार

पारौली (राज.) में आप प्रधानाध्यापक के रूप में प्रतिष्ठापित हुए तो अशोकनगर में संस्कृत अध्यापक के रूप में लोकप्रिय रहे। यह समय आपके जीवन का सजने संवरने का काल रहा, जिसे आपने सहज जिया। इन्दौर पहुंचते ही आपके जीवन को मानो पंख ही लग गए। त्रिलोकचंद हायर सैकेण्डरी स्कूल इन्दौर में भी आपने संस्कृत अध्यापक के रूप में अपना स्थान बनाया।

आपने जीवन में सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक परिवेश का भी सामना किया है। आपने शास्त्रीय शिक्षा से पूर्व प्रवचन एवं पूजन के आदर्श गुणों पर प्रकाश डाला। सतत् प्रवचन से उन्हें काव्य, कथा एवं तत्त्व चिन्तन आदि पर विचार करने के लिए नई दिशा मिली। शास्त्रीय शिक्षा प्राप्त करके वे अध्यापन के क्षेत्र में भी अत्यन्त प्रभावी हुए। आपने संस्कृत–काव्यों को रसात्मक दृष्टि से पढ़ाया। हिन्दी साहित्य के विषय में प्रवेश प्राप्त कर नये–नये विचारों को जन–जन के सामने रखा।

छहढाला के चिन्तन में प्रवेश करके जहाँ अध्यात्म के रहस्य को खोला, वहीं उसके गीति तत्त्व को लयात्मक रूप में प्रस्तुत किया। शास्त्री परीक्षा में काव्य साहित्य और दर्शन के विषय पर अपने गंभीर चिन्तन दिये। अपने प्रवचन के माध्यम से आपने इन्दौर के सरसेठ हुकमचन्द्रजी के सुपुत्र राजकुमार सेठ हीरालालजी आदि को अत्यन्त प्रभावित किया। उनके प्रवचनों में अधिक से अधिक पुरुषों, महिलाओं के अतिरिक्त युवकों की भी अधिकता रहती थी। वे संस्कृत पढ़ाते हुए संस्कृत के धार्मिक ग्रंथों को अत्यन्त ही रोचक एवं नीतिपरक दृष्टि से अध्ययन कराते थे। उनके अध्ययन और अध्यापन की प्रसिद्धि सम्पूर्ण इन्दौर नगर में हो गई थी। प्रवचन की प्रभावपूर्ण शैली पूनमचन्दजी गोदीका, खीमजी भाई, बाबू भाई को अत्यन्त ही मार्मिक लगी। इन्दौर के शिविर में विद्वानों के अतिरिक्त समाज के श्रेष्ठी आदि भी आते थे। उनका सार्वजनिक प्रवचन भी होता था। जन

समूह के मध्य हुकमचन्द भारिल्ल का प्रवचन अत्यन्त ही सराहनीय रहा, जिसके फलस्वरूप उन्हें जयपुर आमंत्रित किया गया।

साहित्य की परम्परा

साहित्य विचारों की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है। धर्म संबंधी चिन्तन भी सद्विचार हैं, उन्हें भी हम साहित्य के माध्यम से ही व्यक्त करते हैं। सद्विचारों का वाहक होने से धार्मिक साहित्य सत्साहित्य है। क्या हम तुलसीदास जी की रामायण को धार्मिक ग्रन्थ होने मात्र से साहित्य की श्रेणी से बाहर कर सकते हैं? रामायण यदि उत्कृष्ट कोटि का धर्म ग्रन्थ है तो साथ ही प्रकाश को बिखेरने वाला सत्साहित्य भी है। इसी प्रकार कविवर बनारसीदास जी कृत नाटक 'समयसार' महान् आध्यात्मिक धर्म ग्रन्थ भी है और उत्कृष्ट कोटि का सत्साहित्य भी है। साहित्य के संबंध में लिखा है–

'सत्साहित्य का निर्माण परमसत्य के उद्घाटन के लिए किया जाने वाला महान् कार्य है। अतः इसका पठन–पाठन भी परम सत्य की उपलब्धि के लिए गम्भीरता से किया जाना चाहिए, पर आज इसे मनोरंजन की वस्तु बना लिया गया है। इसप्रकार का दुरुपयोग कथा साहित्य में सर्वाधिक हुआ है। साहित्य की सर्वाधिक प्रभावशाली एवं शक्तिसम्पन्न यह विधा आज लोगों का मनोरंजन करने मात्र में उलझकर रह गई है। इससे बड़ा दुर्भाग्य साहित्य व समाज का और क्या हो सकता है?

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, पर यह नहीं भूलना चाहिए कि साहित्य मात्र दर्पण नहीं, दीपक भी है, प्रेरक भी है। जो साहित्य प्रकाश न बिखेरे, मार्गदर्शन न करे, सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा न दे, मात्र वर्तमान समाज का कुत्सित चित्र प्रस्तुत करे या मनोरंजन तक सीमित रहे, वह साहित्य साहित्य नहीं साहित्य के नाम पर कलंक है।

इसप्रकार हिन्दी साहित्य में धार्मिक साहित्य को भी महत्त्व दिया। अतः धार्मिक साहित्य भी साहित्य की ही श्रेणी में आता है।

डॉ. भारिल्ल ने साहित्य लिखने का प्रारम्भ अपने बचपन से ही

कर लिया था। मात्र 17 वर्ष की आयु में आपने पश्चाताप नामक खण्डकाव्य लिखा।

जैन साहित्य

हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ जैन साहित्यकारों से हुआ है। सर्वप्रथम आचार्य स्वयंभू और आचार्य पुष्पदंत ने हिन्दी जैन साहित्य लिखा। मुनिरामसिंह, महयंदिण, मुनि आनंद तिलक, देवसेन, नयनंदि, हेमचन्द्र, धनपाल रामचन्द्र, हरिभद्रसूरि, आमभह आदि जैन कवि हैं। करकण्डचरिउ, सुदर्शनचरिउ, नेमिनाहचरिउ आदि अपभ्रंश साहित्य इसी काल का है। आचार्य शालिभद्रसूरि (1184) ने बाहुबलिरास, आचार्य जिनदत्तसूरि ने चर्चरी, आचार्य कालस्वरूपफुलकम ने उपदेश रसायणसार, आचार्य जिनपद्म सूरि ने (वि. सं. 1257 में) धूलिभद्रफाग, आचार्य धर्मसूरि (वि. 1266) में जम्बुस्वामी चरित्र और आचार्य अभयतिलक (वि. 1307) ने महावीरसार आदि ग्रंथों की रचना की है।

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में भी जैन आचार्यों ने प्रबंध, चरित, कथा, पुराण, रासा, रूपक, स्तवन, पूजा चउपई, चूनड़ी, फागु, बेलि, बारहमासा आदि सभी प्रकार का साहित्य सृजन हुआ।

साहित्यकारों में बनारसीदास, द्यानतराय, कुशललाभ, भूधरदास, दौलतराम, रायमल्ल, जयसागर, उपाध्याय, सकलकीर्ति, लक्ष्मीवल्लभ, रूपचन्द पांडे, भैया भगवतीदास, वृन्दावन, ब्रह्मजयसागर, टोडरमल आदि 19वीं शताब्दी के प्रमुख विचारक हैं।

शताधिक जैन कवियों ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। बंगला, उड़िया, असमिया, पंजाबी, अंग्रेजी, मराठी, कन्नड़ आदि अनेक आधुनिक भाषाओं में जैन साहित्य लिखा गया है।

जैन साहित्य की परम्परा लगभग 1500 वर्ष से अविरल रूप से चली आ रही है।

भक्तिकाल और जैनधर्म

विक्रम की सोलहवीं–सत्रहवीं शती हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल के नाम से जानी जाती है। यह काल हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग

कहा गया। इस समय हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, जैन, बौद्ध धर्म प्रचलन में थे। डॉ. भारिल्ल के समय में कुछ नये धर्मों ने भी जन्म लिया। रजनीश ओशो ने अपना एक नया धर्म 'रजनीश दर्शन' के नाम से चलाया। महात्मा गांधी सत्य अहिंसारूपी मानव धर्म के पक्षधर थे अतः 'गांधी दर्शन' भी प्रचलन में आ गया।

कबीर आदि जो संत हैं उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म भी चल रहा था। इस्लाम धर्म में भी अनेक भेद–प्रभेद बन गए। मुगलकाल में 'सिख धर्म' की स्थापना हो गई थी। भक्तिकाल में दिगम्बर सम्प्रदाय बीसपंथ व तेरापंथ में विभक्त हो गया था। कानजी स्वामी को स्वीकार करने के कारण दिगम्बरों में कुछ विरोधी लोग उन्हें 'कहानपंथी' कहने लगे। इस तरह दिगम्बर जैन समाज में 'मुनिभक्त' और 'कहान भक्त' दो वर्ग खड़े हो गये। यह स्थिति डॉ. भारिल्ल के पूर्व के समय हो चुकी थी।

डॉ. भारिल्ल के समय धार्मिक परिस्थितियाँ कुछ बदल चुकी थीं। उस समय लोगों का जीवन सात्त्विक और सदाचारी तो था, लेकिन स्वाध्याय वाला नहीं था। उस समय अध्यात्म की चर्चा का अभाव सा ही था। यदि कहीं चलता भी तो प्रथमानुयोग का ही चलता था। उसमें भी कोई एक बुजुर्ग पढ़ता और दस–पाँच बुजुर्ग अर्ध निद्रावस्था में सुनते रहते थे। त्यागी, व्रतियों में भी स्वाध्याय की प्रवृत्ति नहीं थी। थोड़ी बहुत थी भी तो वे करणानुयोग की थी।

समीक्षात्मक दृष्टि से हर विधा के जन्मदाता जैन साहित्यकार ही हैं। यदि समूचा जैन साहित्य प्रकाश में आ जाये तो निश्चित ही नये मानों की स्थापना और पुराने प्रतिमानों का स्वरूप बदल जायेगा।[132]

20वीं शताब्दी में अपभ्रंश के पश्चात् हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं पर जैन मनीषियों ने भी अपना योगदान दिया है। 21वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के पश्चात् मध्यम और अन्तिम धारा में अनेक उपन्यासकार, चरित्र ग्रन्थकार, कथाकार, निबंधकार आदि हुए हैं, जिनके विषय को प्रतिपादित कर पाना सम्भव नहीं है, क्योंकि यह एक स्वतंत्र अनुसंधान का विषय है। इसमें जैन जगत् के आचार्यों, मुनियों, साधुओं आदि के अतिरिक्त विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों,

विद्यालयों आदि के व्याख्याताओं का भी प्रत्येक विधा में कुछ न कुछ योगदान रहा है।

आचार्य परम्परा में आचार्य शान्तिसागर, आचार्य देशभूषण, आचार्य अजितसागर, आचार्य आत्माराम, गणेशीलाल, आचार्य भिक्षु, आचार्य तुलसी, आचार्य अभयगणी, आचार्य विद्यानन्द, आचार्य विद्यासागर, आचार्य वर्धमान सागर, आचार्य देवेन्द्र मुनि, शान्ति मुनि, आचार्य महाप्रज्ञ इत्यादि अनेक आचार्यों ने हिन्दी में बहुत लिखा है।

इसी परम्परा में उपाध्याय अमर मुनि, रमेश मुनि, दिनेश मुनि, सुनील सागर, वैभव सागर, विराग सागर, पुष्पदन्त सागर उनकी परम्परा के तरुणसागर, प्रणम्य सागर, पुलक सागर आदि तथा देवनन्दी, और उनकी परम्परा के मुनि, आचार्य सन्मति सागर और उनके शिष्य बालाचार्य, योगीन्द्र सागर आदि अनेकानेक साधुओं का योगदान रहा है। सर्वत्र नये–नये आयामों को देने वाले चन्द्रसागर और ललितप्रभ सागर का नाम भी उल्लेखनीय है।

आर्यिकाओं एवं साध्वियों में गणनी आर्यिका, ज्ञानमति, आर्यिका विश्रुत्मति, आर्यिका प्रकाशमति, आर्यिका सुभूषणमती, आर्यिका दृड़मती, आर्यिका प्रशान्तमता, साध्वी धर्मशील, साध्वी चन्दनाश्री, साध्वी सुदर्शनाश्री, प्रियदर्शना, अर्चनाश्री, मुक्तिप्रभा, संगीताश्री आदि ने हिन्दी में लिखकर अपना महत्त्वपूर्ण स्थान निर्धारित किया।

इसी तरह हिन्दी साहित्य की इस परम्परा में योगदान देने वाले जैनेन्द्र जैन, यशपाल जैन, डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, डॉ. गोकुलचन्द जैन, डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री, पं. रतनचन्द भारिल्ल, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, ज्योतिषाचार्य, डॉ. प्रकाश जैन, डॉ. इन्दुबाला, डॉ. प्रभावती, डॉ. सुषमा सिंघवी, प्रो. महेन्द्र सागर, प्रो. रमेशचन्द, राजेश प्रचण्डिया, पं. कैलाशचन्द्र, डॉ. हीरालाल जैन, पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल, पं. फूलचन्द सिद्धान्त शास्त्री, पं. पन्नालाल शास्त्री, डॉ. पुष्पलता जैन, दयाचन्द शास्त्री, माणिक चन्द्र शास्त्री, डॉ. बारेलाल जैन, प्रो. भागचन्द भास्कर, प्रो. भागचन्द भागेन्दु, तृष्णा जैन, डॉ. देव कोठारी, डॉ. इन्दु जैन, प्रो. उदयचन्द जैन, डॉ. माया जैन, डॉ. महेन्द्र भानावत, डॉ. नरेन्द्र

भानावत, डॉ. संजीव भानावत आदि ने हिन्दी जैन साहित्य के विकास में अपना योगदान दिया है।

तत्त्ववेता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के अभिनन्दन ग्रंथ में अनेकानेक हिन्दी जैन साहित्य के मनीषि विद्वानों का 20वीं शताब्दी में योगदान रहा है, जिनमें डॉ. कपूरचन्द कौशल, पण्डित प्रकाशचन्द्र 'हितैषी', पं. देवकुमार सिंह कासलीवाल, प्रतिष्ठाचार्य सौंरया विमलकुमार जैन, डॉ. वीरसागर, डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल, डॉ. नरेन्द्रकुमार, डॉ. शकुन, डॉ. शुद्धात्म प्रभा, डॉ. सौ. उज्जवला शाह, प्रो. प्रवीणचन्द, परमात्मप्रकाश भारिल्ल, वाणीभूषण, पं. ज्ञानचन्द जी, प्रो. शैलेन्द्र – राजकुमारी पालविया, डॉ. शशिकान्त, पं. अल्पना भारिल्ल आदि प्रमुख हैं।

जैन लेखकों के नामोल्लेख के पश्चात् डॉ. भारिल्ल के साहित्य पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल का साहित्य सृजन

डॉ. भारिल्ल ने विविध प्रकार के साहित्य का सृजन किया। कहानी से लेकर उपन्यास, नाटिका से लेकर नाटक, छोटे–छोटे निबंधों से लेकर बड़े–बड़े निबन्ध आदि भी लिखे हैं। उनके सृजन को निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है–

- शोध प्रबन्ध : पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व और कृतित्व
- उपन्यास : सत्य की खोज
- कहानी संग्रह : आप कुछ भी कहो
- दार्शनिक : क्रमबद्धपर्याय, परमभाव प्रकाशक नयचक्र, समयसार अनुशीलन भाग – 1 (गाथा 1 से 68 तक), समयसार अनु. भाग–2 (गाथा 69 से 163 तक), भाग 3 (गाथा 164 से 216 तक) भाग–4 (गाथा 257 से 307 तक), भाग–5 (गाथा 308–415), प्रवचनसार अनुशीलन, दृष्टि का विषय, समयसार टीका।
- यात्रा वृतान्त – आत्मा ही है शरण, विदेशों में जैन धर्म–उभरते पद चिन्ह, विदेशों में जैन धर्म–बढ़ते कदम, विदेशों में जैन धर्म–अध्यात्म की जगती जिज्ञासा, विदेशों में जैनधर्म : धूम क्रमबद्धपर्याय की।
- शैक्षणिक : बालबोध पाठमाला भाग – 2, बालबोध पाठमाला

भाग– 3, वीतराग– विज्ञान पाठमाला – 1, वीतराग – विज्ञान पाठमाला – 2, वीतराग विज्ञान पाठमाला – 3, वीतराग–विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका।

• निबन्धात्मक : धर्म के दशलक्षण, आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंचपरमागम, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन, अहिंसा महावीर की दृष्टि में, मैं कौन हूँ, शाकाहार, निमित्तोपादान, शाश्वत तीर्थधाम सम्मेद–शिखर, तीर्थंकर भगवान महावीर, सार समयसार, अनेकान्त और स्याद्वाद, गोम्मटेश्वर बाहुबली, रक्षाबन्धन और दीपावली।

• जीवनी : तीर्थंकर भगवान महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ।

• इंटरव्यू : चैतन्य चमत्कार ।

• रेखाचित्र : वीतरागी व्यक्तित्व भगवान महावीर ।

• संकलन : बिखरे मोती, सूक्ति सुधा, चिन्तन की गहराइयाँ, बिन्दु में सिन्धु, रीति–नीति ।

• प्रवचन : गागर में सागर, गोली का जवाब गाली से भी नहीं, मैं स्वयं भगवान हूँ, समयसार का सार, प्रवचनसार का सार।

• पद्य : कुन्दकुन्द शतक, शुद्धात्मशतक, समयसार पद्यानुवाद, योगसार पद्यानुवाद, जिनेन्द्र वन्दना एवं बारह भावना, द्रव्यसंग्रह–पद्यानुवाद, अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद, अर्चना, बारह–भावना, प्रवचनसार पद्यानुवाद, अर्थ सहित कुन्दकुन्द शतक, अर्थसहित शुद्धात्म शतक।

• पद्य संग्रह : अध्यात्म नवनीत।

• खण्ड काव्य : पश्चाताप ।

इनके अतिरिक्त जो अप्रकाशित साहित्य :

गरीब की दीवाली (नाटक), ये हैं – मेरी पूज्य माताएँ, ये हैं – मेरी रानियाँ, • वैराग्य (महाकाव्य), कविता संग्रह, कहानी संग्रह आदि।

4. धर्म और दर्शन के आलोक में

(1) डॉ. भारिल्ल का जैनधर्म को योगदान

जैनधर्म अनादिकाल से चला आ रहा है। भगवान महावीर जैनधर्म के प्रथम नहीं; इस युग के अन्तिम तीर्थंकर थे।

इस युग के प्रथम तीर्थंकर तो भगवान ऋषभदेव थे।

श्रीमद् भागवत में भी इसका उल्लेख है।

न केवल जैनियों में ही अपितु विष्णु के चौबीस अवतारों में भी इनकी गणना की गई है। इनके पीछे होने वाले 23 तीर्थंकरों का विस्तृत विवरण जैन ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। अन्तिम दो तीर्थंकर पार्श्वनाथ तथा महावीर निःसन्देह ऐतिहासिक महापुरुष थे।[1]

भगवान महावीर से ढाई सौ वर्ष पहले इस देश को भगवान पार्श्वनाथ ने अपने जन्म से अलंकृत किया था। आपके पिता राजा अश्वसेन तथा मातु श्री महारानी वामा–देवी थे। काशी नगरी में 874 वि. पू.817 ईस्वी पूर्व में भगवान पार्श्वनाथ का जन्म हुआ। तीस वर्षों तक इन्होंने सांसारिक वैभव का उपभोग किया। सत्तर वर्ष तक अपने सदुपदेशों द्वारा जैन धर्म का प्रचार किया और अन्त में 'सम्मेद शिखर' से निर्वाण को प्राप्त किया।[2]

जैनाचार्यों एवं जैन कवियों का समय आठवीं से चौदहवीं शताब्दी तक निर्धारित किया जाता है। जैन साहित्य का उल्लेख हीरालाल जैन, नाथूराम प्रेमी, अगरचन्द नाहटा तथा रामकुमार जैसे विद्वानों ने भी किया है।[3]

जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर जो कि पार्श्वनाथ से ढाई सौ वर्ष बाद कुण्डपुर में जन्में, उस समय क्षत्रिय सरदार मिलकर राज्य किया करते थे। ऐसे ही 'ज्ञातृक' नामक क्षत्रियवंश में इनका जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम सिद्धार्थ तथा माता का नाम त्रिशला था। भगवान महावीर के हृदय में सच्चे वैराग्य के बीज पहले से विद्यमान थे जो कि अवसर पाकर अंकुरित हो उठे। तीस वर्ष की अल्पआयु में ही आपने यति धर्म को स्वीकार किया तथा बारह वर्ष तक साधना करते हुए ब्यालीस वर्ष की आयु में ही "कैवल्य ज्ञान' को प्राप्त किया। पावापुरी में 72 वर्ष की आयु में बुद्ध के निर्वाण से पचास वर्ष पहले

1. भारतीय दर्शन, पृ. 90–91
2. वही, पृ. 91
3. डॉ. मंजु चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास, पृ. 29, प्रका. हिमांशु पब्लिकेशन्स, 464, हिरन मगरी, से. 11, उदयपुर

महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया। राग–द्वेषरूपी, शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेने पर इन्हें 'जिन' की उपाधि दी गई।[1]

भगवान महावीर का मूल सन्देश अहिंसा है। इन्होंने देश समाज तथा प्रत्येक जीव को अहिंसा का उपदेश दिया है–

"अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।।"[2]

भगवान महावीर ने हिंसा के मूल पर प्रहार करना उचित समझा। यही कारण है कि वे कहते हैं कि आत्मा में रागादि की उत्पत्ति होना ही हिंसा है और आत्मा में रागादिभावों की उत्पत्ति नहीं होना ही अहिंसा है। यही जिनागम का सार है।

हिंसा यदि एक बार किसी के मन में उत्पन्न हो गई तो फिर वह कहीं न कहीं अवश्य ही प्रकट होगी। उदाहरणार्थ–

एक मास्टरजी थे। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा है कि आज रोटी जरा जल्दी बनाना, मुझे स्कूल जल्दी जाना है।

मास्टरनी बोली– "आज रोटी जल्दी नहीं बन सकती, क्योंकि जयपुर से एक दुबले–पतले से पण्डित आये हैं, मैं तो उनका प्रवचन सुनने जाऊँगी।"

मास्टरजी गर्म होते हुए बोले – "मैं कुछ नहीं समझता, रोटी जल्दी बननी चाहिए" बेचारी मास्टरनी घबरा गई, आधा प्रवचन छोड़कर आई, जल्दी–जल्दी रोटी बनाई, पर जब तक रोटी बनती, तब तक मास्टरजी का माथा मास्टरनी के तवे से भी अधिक गर्म हो गया था और रोटी बन जाने पर भी मास्टरजी बिना रोटी खाये ही स्कूल चले गये।

अब मास्टरनी को बहुत गुस्सा आया। प्रवचन भी छूटा और मास्टरजी भी भूखे गये, पर क्या करें? मास्टरजी तो चले गये, घर पर बेचारे बच्चे थे, उसने उनकी धुनाई शुरू कर दी।

---

1. हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास, पृष्ठ 92
2. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, अहिंसा महावीर की दृष्टि में, पृष्ठ 11 प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर 302015

गुस्सा तो मास्टरजी को भी कम नहीं आ रहा था, क्योंकि वे भूखे थे न, पर स्कूल में न तो मास्टरनी ही थी और न घर के बच्चे; पराये बच्चे थे, उन्होंने उनकी धुनाई आरम्भ कर दी।

यदि हिंसा एक बार आत्मा में – मन में उत्पन्न हो गई तो फिर वह कहीं न कहीं प्रकट अवश्य होगी, अतः भगवान महावीर ने कहा कि बात ऐसी होनी चाहिए कि हिंसा लोगों के मन में, आत्मा में ही उत्पन्न न हो– यही विचार कर उन्होंने हिंसा–अहिंसा की परिभाषा में यह कहा कि आत्मा में रागादिभावों की उत्पत्ति होना ही हिंसा है और आत्मा में रागादिभावों की उत्पत्ति नहीं होना ही अहिंसा है।[1]

व्यावहारिक तौर पर हम कहते हैं कि सभी से प्रेमपूर्वक रहना चाहिए। अरे भाई भगवान की दृष्टि में तो राग भी हिंसा का ही कारण है। आज जितने भी युद्ध हुए हैं वह राग के कारण ही हुए हैं चाहे वह रामायण हो या महाभारत।

युद्ध तीन कारणों से होते हैं– जर, जोरु और जमीन। जर माने रुपया, पैसा, धन सम्पत्ति; जोरू माने पत्नी स्त्री और जमीन तो हम जानते ही हैं।

रामायण का युद्ध जोरु के कारण ही हुआ था। राम की पत्नी को रावण हर ले गया और रामायण का प्रसिद्ध युद्ध हो गया।

इसीप्रकार महाभारत का युद्ध जमीन के कारण हुआ था। पाण्डवों ने कौरवों से कहा– "बिना युद्ध के सुई की नोंक के बराबर भी जमीन नहीं मिल सकती।"

बस फिर क्या था? महाभारत मच गया। पैसे के कारण भी युद्ध होता है– यह बात सिद्ध करने के लिए हमें विशेषकर व्यापारियों की सभा में, जिनकी सारी लड़ाइयाँ पैसों के पीछे ही होती हैं, जिनका मौलिक सिद्धान्त है कि चमड़ी जाये, पर दमड़ी न जाये।

आज तो सभी लड़ाइयाँ व्यापार के लिए लड़ी जाती हैं। एक देश दूसरे देश पर आक्रमण भी उस देश में अपना व्यापार स्थापित करने के लिए ही करता है। बड़े देश छोटे देशों को हथियार बेचने

1. अहिंसा महावीर की दृष्टि में पृष्ठ 16 से 17 तक

के लिए उन्हें आपस में भिड़ाते रहते हैं। अतः जगत में जितने भी युद्ध होते हैं, वे प्रायः जर, जोरु और जमीन के कारण ही होते हैं। इसप्रकार हम कह सकते हैं कि जर, जोरू और जमीन के कारण जो युद्ध होते हैं, वे जर, जोरू और जमीन के प्रति राग के कारण होते हैं या द्वेष के कारण।

इसप्रकार हिंसा हमारे जीवन में हमारे साथ किसी न किसी रूप में अवश्य ही रहती है।

अध्यात्म जगत में मनीषी डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल का जीवन अनेक उपलब्धियों को प्रतिपादित करने वाला है। उनका व्यक्तित्व स्वनिर्मित संरचना की तरह है, क्योंकि उन्होंने व्यक्तिगत जीवन से ऊपर उठ कर जिस मार्ग को अपनाया वह सहज मार्ग नहीं है, अपितु अत्यंत कठिन मार्ग माना जाता है। उनके जीवन के प्रत्येक क्षण पर विचार करने से इस बात की अनुभूति होती है कि डॉ. भारिल्ल अध्यात्म के प्रत्येक विषय से परिचित हैं। वे उससे परम सत्य की स्थापना करने में सफल हुए हैं। उनका दृष्टिकोण गुणग्राही है। वे व्यक्तित्व के धनी, कुशल प्रशासक, अध्यात्मवेत्ता, अनुभूति के क्षणों में जीने वाले प्रबंधकार एवं हिन्दी साहित्य की समस्त विधाओं के मर्मज्ञ हैं।

वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्य रत्न आदि उपाधियों के धारक, लेखक, निबन्धकार, कथाकार, उपन्यासकार, शोध प्रबन्धकार, कुशल संगठनकार, सम्पादक, तत्त्वज्ञान के प्रचारक एवं प्रसारक हैं। वे आध्यात्मिक गगन मण्डल के दैदीप्यमान नक्षत्र हैं। उन्होंने जैन–दर्शन के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है। उन्होंने जिनागम के गूढ़तम रहस्यों, सूत्रों, गाथाओं एवं कारिकाओं के सुगम, सरल एवं प्रसाद युक्त अर्थ किए हैं।

वे वीर–प्रसूता बुन्देलखण्ड की धरा ललितपुर जिले के बरौदास्वामी में ईस्वी सन् 1935 में जन्में धार्मिक संस्कारों से संस्कारित कुशाग्रबुद्धि वाले व्यक्ति हैं। उन्होंने लौकिक शिक्षा के साथ–साथ अध्यात्म शिक्षा का पारौली (राज.) अशोकनगर (म.प्र.) में अध्यापन किया। उन्होंने

'पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' विषय पर शोध प्रबन्ध इन्दौर विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। वे आध्यात्मिक सन्त, पूज्य श्री कानजी स्वामी की प्रेरणा से स्थापित पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर संस्था के दायित्व का भली प्रकार से निर्वाह कर रहे हैं।

उन्होंने वीतराग–विज्ञान विद्यापीठ की स्थापना की, जिसमें तत्त्वज्ञान के संस्कारों का बीजारोपण अब तक हो रहा है। उन्होंने बालबोध हेतु आध्यात्मिक परिवेश युक्त पाठ्य–पुस्तकों प्रणयन किया जो देश के कोने–कोने में अद्‌भुत क्रान्ति का कार्य कर रही है। उनके द्वारा आधुनिक एवं भावी पीढ़ी को अध्यात्म–द्रष्टा, युग सन्त पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी द्वारा प्रदत्त तत्त्वज्ञान से समृद्ध करने का कार्य भी किया जा रहा है। उन्होंने युवकों एवं प्रौढ़ों को तत्त्वज्ञान का आध्यात्मिक शिक्षण–प्रशिक्षण का आयोजन कर बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री–पुरुष सभी को नवचेतना प्रदान की है। उन्होंने धर्म और संस्कृति के सुरक्षार्थ युवाशक्ति को नव–स्फूर्त ऊर्जा का जो पाठ पढ़ाया वह 'अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन' के गठन के द्वारा समुचित सदुपयोग, साथ ही युवकों में तत्त्वज्ञान सम्बन्धी गहन रुचि उत्पन्न कर रहा है। समाज में विद्वान मनीषियों की आपूर्ति एवं जीवन्त–तीर्थ पवित्र जिनशास्त्रों का विधिवत् गम्भीर अध्ययन, चिन्तन एवं मनन करने हेतु श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट द्वारा संचालित 'श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय' से जैन दर्शन एवं सिद्धान्त में निष्णात उपाध्याय, शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्य–मनीषी, जैनदर्शनाचार्य आदि विद्वत्ता के उद्‌भव हेतु सत्य एवं विशाल जीवन्त उद्योग का कुशल प्रबन्धन देखने योग्य है।

आपने भारतवर्ष के गाँवों–नगरों में, न केवल जैन–समाज, अपितु जैनेत्तर जन–साधारण में भी आहार शुद्धि, आचार शुद्धि एवं विचार शुद्धि के पवित्र विचार दिए हैं। उनके तत्त्वज्ञान की अनूठी ललक देश में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी विगत अनेक वर्षों से देखी जा रही है। वे अपने वक्तृत्व एवं लेखन से जिनागम के

गहन–गूढ़ गम्भीर विषयों को विभिन्न विधाओं अमूल्य साहित्यिक–धार्मिक कृतियों का सृजन एवं प्रबन्धों के माध्यम से प्रतिपादित कर रहे हैं।

उनका तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ 'चैतन्य चमत्कार' एवं 'युगपुरुष श्री कानजी' स्वामी में इतिहास, दर्शन एवं लोककल्याण की मंगल भावना का दिग्दर्शन वीतराग–विज्ञान मासिक पत्रिका के प्रत्येक पृष्ठ पर सम्पादन कला का बिखरा पराग आज भी जन चेतना प्रदान कर रहा है।

निष्कर्ष

साहित्य, धर्म, दर्शन के प्रख्यात् मनीषी हुकमचन्द भारिल्ल का जीवन समाज को समर्पित रहा है। उन्होंने अहम् के स्थान पर वयम् को वरीयता दी। जैन धर्म के गंभीर अध्येता, आख्याता, साहित्यानुरागी, लेखक, कवि, वक्ता, प्रबोधक आदि के रूप में उनकी ख्याति सर्वविदित है। वे अंधविश्वास में विश्वास नहीं करते। उनका साध्य 'धर्म को अंगीकार कर समाज को संगठित करना है। 'सत्य की खोज' में विवेक के इन विचारों में उनके साध्य को रेखांकित किया जा सकता है– 'धर्म के नाम पर न तो मैं समाज को विघटित होते देख सकता हूँ और न मुझसे धर्म की कीमत पर संगठन ही होगा। मैं धर्म को कायम रखकर समाज को संगठित करूँगा व समाज को संगठित रख कर धर्म को उसके सामने प्रस्तुत करूँगा। यह मेरा संकल्प है।''

डॉ. भारिल्ल ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती के साहित्य का अध्ययन किया। 'वैराग्य' महाकाव्य व 'पश्चाताप' खण्डकाव्य का सृजन किया। उनके निबन्धों में 'मैं कौन हूँ, धर्म के दश लक्षण, मैं स्वयं भगवान हूँ' ध्यान आकर्षित करते हैं तो 'सत्य की खोज' उपन्यास और 'आप कुछ भी कहो' कहानी संग्रह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

कानजी स्वामी के क्रान्तिकारी विचारों ने चिन्तन ने इनकी सोच–समझ, यहाँ तक कि जीवन को ही नयी दिशा दे दी। इस अध्याय में जैन–परिप्रेक्ष्य को विशेष रूप से प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल का कृतित्व : एक परिदृश्य

डॉ. भारिल्ल ने साहित्य की विविध विधाओं में सृजन किया है। उनके साहित्य की आधार–भूमि आध्यात्मिकता रही है। वह आत्म चिन्तन को सर्वोपरि मानते हैं। उनके साहित्य का केन्द्र–बिन्दु चिन्तन रहा है। तत्त्व की गहराई तक पहुँचना उनका साध्य है। धर्म, दर्शन, अध्यात्म संबंधी उनका दृष्टिकोण अनन्य है। अपनी कृतियों के माध्यम से समस्त समाज को वह लाभान्वित होते देखना चाहते हैं। यह उनके साहित्य की प्रमुख विशेषता है कि समस्त समाज सदाचरण–सम्पन्न हो। पाठकों में आत्मचिन्तन की प्रवृत्ति जाग्रत हो और वे आध्यात्मिकता के महत्त्व को समझें, उस दिशा में अग्रसर हों, यह विचार उनकी कृतियों में सर्वत्र देखा जा सकता है।

धर्म, दर्शन, अध्यात्म की गहरी छाप उनकी कृतियों में अपने पूरे दमखम से उभर कर आई है, इसमें सन्देह का कोई कारण नहीं। कृतियों को प्रकाशन से पूर्व विषय के विशेषज्ञ विद्वानों के समक्ष विचार के लिए प्रस्तुत करना उनकी प्रवृत्ति रही है।

आज के युग में सदाचरण को विविध रूपों में देखा–परखा जाता है। डॉ. भारिल्ल के सत्साहित्य के मूल में धर्म, दर्शन, अध्यात्म का आधार उसे अधिक महनीय बना देता है। कहा जा सकता है, उनमें इनके क्रान्तिकारी दृष्टिकोण का प्रभाव, खिल कर, खुल कर सामने आया है। उनका लक्ष्य बहुजन ही नहीं, सर्वजन–हिताय रहा है। उनके साहित्य के पाठक खुद को तो दृष्टि–सम्पन्न बना ही रहे हैं, उनकी कृतियों के माध्यम से जन–जन को लाभान्वित करने में लगे देखे जा सकते हैं।

हिन्दी साहित्य के व्यापक परिप्रेक्ष्य में यदि इनके साहित्य की परख करें तो सहज ही हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इनका अध्ययन, अनुशीलन आध्यात्मिक जगत को समर्थ बनाकर चलता है। मतलब कि वह जन–चेतना जगाने की सामर्थ्य से भरा–पूरा है। दरअसल उसमें वह शक्ति विद्यमान है, जो व्यापक जन–समूह को आत्मनिरीक्षण की ओर प्रेरित कर सके।

डॉ. भारिल्ल : विविध विचार

हिन्दी साहित्य का भक्ति काल धार्मिकता से ओतप्रोत है। यह दो रूपों में विद्यमान है– 1. विशुद्ध चिन्तन–परक 2. इनसे प्रेरित साहित्य। लेकिन जब इतिहास–लेखन की बात आती है तो धर्म–दर्शन से प्रभावित साहित्य के विविध कारकों को नज़रअन्दाज नहीं किया जा सकता। यही प्रवृत्ति सर्वत्र पाई जाती है। भारत की किसी भी भाषा के इतिहास–लेखन पर दृष्टि डालिए, यही बात उभर कर आती है। विविध धार्मिक सम्प्रदायों के विवेचन का आधार उनमें निहित दार्शनिक और वैचारिक चिन्तन रहा है। किसी भी सम्प्रदाय की बात करें, यही बात महत्त्वपूर्ण रही है– अष्टछाप हो या फिर पुष्टिमार्ग या राधावल्लभ सम्प्रदाय। सम्प्रदाय ही नहीं, उनसे सम्बद्ध कवियों, सन्तों– भक्तों के दार्शनिक विचारों को अहमियत दी गई है। सूर, तुलसी, कबीर आदि किसी भी कवि की बात करें। इनके अनुशीलन, अध्ययन, मन्थन से जो नवनीत निकल कर आता है, वह लोगों की ज्ञान–राशि को समृद्ध करने की सामर्थ्य से ओतप्रोत होता है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में भारिल्ल के 'पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व और कृतित्व' पर डॉ. हीरालाल माहेश्वरी का यह विचार ध्यान आकर्षित किए बिना नहीं रहता कि 'यह एक ऐसा शोधकार्य है जो उल्लेखित धार्मिक साहित्य की दोनों सीमाओं को समाविष्ट किए हुए है।' इस सम्बन्ध में और भी कई विद्वानों के विचार ध्यान आकर्षित करते हैं। मसलन ब्र. यशपाल का यह कथन कि 'छहढ़ाला का सार' कृति अत्यन्त

उपयोगी कृति है।[1] यह जन–सामान्य के स्वाध्याय, मनन, चिन्तन आदि उत्पन्न करने वाली कृति है।[2]

प्रवचन सार ग्रन्थाधिकार के सार में विशुद्ध आध्यात्मिकता को देखा जा सकता है। आचार्य कुन्द–कुन्द के पंच परमागमों को आत्म–जिज्ञासुओं के लिए प्रवचनों के माध्यम से लोकप्रिय बनाया और सरल और सुबोध भाषा में जन–सामान्य को समझने के लिए अनुशीलन के रूप में साहित्य उपलब्ध करा कर महती कार्य किया है।[3] देवेन्द्र कुमार के अनुसार 'डॉ. भारिल्ल ने अपने अनुसंधान और अनुशीलन में कोई कसर नहीं रखी।[4] उनके प्रचार–प्रसार का विषय गूढ़, गंभीर एवं सूक्ष्म है।[6]

डॉ. भारिल्ल नेमिचन्द पाटनी की दृष्टि में 'बहुचर्चित और जैन दर्शन के मर्मज्ञ मनीषी हैं।[7] इनकी अन्य कृतियों को लेकर भी विद्वानों ने समय–समय पर अपने विचार व्यक्त किए हैं।

डॉ. भारिल्ल की सत्य की खोज, तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, मैं कौन हूँ और पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और

1. छहढाला का सार, ले. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल प्रकाशकीय, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
2. क्रमबद्धपर्याय – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल प्रकाशकीय, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
3. प्रवचनसार का सार – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल प्रकाशकीय, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
4. पण्डित टोडरमल व्यक्तित्व और कृतित्व – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, पृ. (प्रस्तावना) प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
5. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल – धर्म के दशलक्षण प्रकाशकीय, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
6. प्रवचनसार अनुशीलन भाग–1, लेखक – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल प्रकाशकीय, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
7. समयसार अनुशीलन भाग–3, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल प्रकाशकीय, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर

कृतित्व' को लेकर नेमीचन्द पाटनी के विचारों को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। वे इन्हें 'अद्भुत कृतियाँ' कह कर इनके महत्त्व को प्रतिपादित करते हैं और कहते हैं कि 'उनका सम्पूर्ण साहित्य ही आत्म–हितकारी होने से बार–बार पढ़ने योग्य है। बारह भावना, जिनेन्द्र वन्दना, गागर में सागर, समयसार अनुशीलन, चिन्तन की गहराइयाँ, बिखरे मोती, सूक्ति–सुधा, बिन्दु में सिन्धु, मैं स्वयं भगवान हूँ, गोली का जवाब गाली नहीं, दृष्टि का विषय अपने आप में अनूठी कृतियाँ हैं।'[2]

'ध्यान का स्वरूप' डॉ. भारिल्ल की ऐसी कृति है, जो ध्यान के तात्त्विक पक्ष को समझने में सहायक हैं। इस संबंध में यहाँ डॉ. प्रेमचन्द रांवका के इस वक्तव्य को उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हैं– 'डॉ. भारिल्ल की सीधी–सरल भाषा में रचित यह कृति ध्यान के स्वरूप को सहज ही बोधगम्य और आत्मसात करने योग्य बनाती है। विद्वान लेखक का यह कथन समीचीन ही है कि ध्यान यत्नसाध्य नहीं है, सहज–साध्य है, आवश्यकता ध्यान के अभ्यास की नहीं, ध्येय को बदलने की है, निजात्मक ध्येय को समझने की है'।[3]

इस तरह लेखक की इस कृति पर अन्य विद्वानों की सम्मतियाँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। डॉ. वीरसागर के अनुसार डॉ. हुकमचन्द जी भारिल्ल की नई कृति 'ध्यान का स्वरूप' जिनागम के आलोक में ध्यान के संबंध में इतनी अच्छी विवेचना आज अन्यत्र दुर्लभ है।[4]

डॉ. राजेन्द्र बंसल की निगाह में ध्यान का स्वरूप गंभीर अध्ययन जीवन व ज्ञान का विषय है।[5] पंडित रतनचन्द भारिल्ल 'इसके

---

1. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल – समयसार का सार, प्रकाशकीय, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
2. आप कुछ भी कहो – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल प्रकाशकीय, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
3. ध्यान का स्वरूप – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
4. वही
5. ध्यान का स्वरूप

स्वाध्याय से वर्तमान में चलने वाली बहुत सी भ्रान्तियों' के निराकरण की बात कहते हैं।[1]

डॉ. भारिल्ल कृत चिन्तन की गहराइयों पर विद्वानों के विचार उल्लेखनीय हैं। चिन्तन की गहराइयाँ डॉ. भारिल्ल की सिद्धहस्त रचना है। आपकी सशक्त लेखनी के कारण जिनवाणी के अनेक सिद्धान्त व तथ्य सूक्तियों जैसे ही बन गये हैं।[2]

आप कुछ भी कहो के संदर्भ में आचार्य शांतिसागरजी का यह कथन ध्यान आकर्षित किए बिना नहीं रहता, पुस्तक बहुत सुन्दर है, इसमें कल्याणकारी मार्ग की बातें हैं। तो अध्यात्मयोगी मुनि श्री विजयसागरजी महाराज इसे परम–सत्य को जन–जन तक पहुँचाने का सफल प्रयास मानते हैं।[3] वहीं पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनी इसकी महत्ता इन शब्दों में दर्शाते हैं, 'समाज को नई दिशा में मोड़ने का जो काम संस्थाओं के बड़े–बड़े प्रस्ताव और विद्वानों के लम्बे–चौड़े व्याख्यान नहीं कर सकते, वह काम प्रथमानुयोग संबंधी इस प्रकार के प्रयास ही कर सकते हैं।'[4]

अक्षयकुमारजी ने आधुनिक परिवेश में प्राचीन वाड्.मय को प्रस्तुत करने के कौशल को 'एक चमत्कार' कहा है। डॉ. राजाराम ने इनकी कहानियों के माध्यम से जैन धर्म को प्रस्तुत करने की महारत को इन शब्दों में व्यक्त किया है– 'उन्होंने कहानियों के माध्यम से जैन धर्म के मूल तत्त्वों को हृदय–स्पर्शी बनाकर शिक्षित, अर्द्ध शिक्षित आबाल नर–नारियों का महदुपकार किया है।[5]

इसी क्रम में 'सत्य की खोज' में कैलाशचन्द्र सिद्धान्ताचार्य को उपन्यास का आनन्द आता है। डॉ. नरेन्द्र भानावत की दृष्टि में वह एक सफल कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। पंडित प्रकाशचन्द्र जी

1. ध्यान का स्वरूप
2. चिन्तन की गहराइयाँ – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल प्रकाशकीय, पृ (III)
3. वही पृ. प्रकाशकीय (III)
4. वही, पृ. प्रकाशकीय (III)
5. वही, पृ. प्रकाशकीय (III) (IV)

हितैषी इसे सुगर कोटेड औषधि बताते हैं जो कहानी के आनन्द के साथ रोग को समूल नष्ट कर सकती है।[1]

इसके ठोस उदाहरणों और प्रमाणों से मुनि श्री विजयसागर इतने अभिभूत हैं कि उनको ज्ञानियों को ही नहीं, अज्ञानियों को भी लाभान्वित होते देखते हैं। मुनि श्री नेमिसागरजी महाराज आपका प्रयास अकथनीय सराहनीय है, कहकर अपनी सम्मति व्यक्त करते हैं।[2] भारिल्लजी को उत्तम वक्ता, कलम के धनी कहते हैं। स्वस्ति श्री भट्टारक चारुकीर्ति स्वामी।[3] पंडित भंवरलालजी जैन इसे नयी दृष्टि प्रदान करने वाली कृति ठहराते हैं।[4]

प्रो. खुशाल चन्द्र गोरवाला तो भारिल्ल को कानजी स्वामी का गणधर तक कहने में गर्व का अनुभव करते हैं। इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् अगरचन्द नाहटा भारिल्ल के गम्भीर चिन्तन को रेखांकित करते हैं।[5] तो पंडित नाथूलाल शास्त्री उन्हें अच्छा वक्ता एवं लेखक कहते हैं।

प्रो. नरेन्द्र प्रकाश जैन असहमति रखने वालों का आह्वान करते हैं कि 'वे अथाह आगम सिन्धु में पुनः पुनः गोते लगाएँ और नये–नये मोती ढूँढकर लायें।'[6] राजस्थान (जयपुर) के सम्पादक चन्द्रगुप्त जी वार्ष्णेय 'तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ' जैन बन्धुओं के लिए यह विभिन्न धर्मों के अध्ययन में रुचि रखने वालों के लिए भी अत्यन्त उपादेय हैं कहकर इसकी महत्ता रेखांकित करते हैं।[7] फूलचन्द शास्त्री वाराणसी का 'बारह भावना : एक अनुशीलन' सम्बन्धी विचार कम महत्त्वपूर्ण नहीं है जो भारिल्ल को सुलझे हुए विचारों का विद्वान् कह उनके गहन अध्ययन की श्लाघा करते हैं।

---

1. चिन्तन की गहराइयाँ – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल प्रकाशकीय, पृ (IV)
2. वही, पृ. (IV) व (V)
3. वही, पृ. (IV)
4. वही, पृ. (IV)
5. वही, पृ. (V)
6. वही, पृ. (V)
7. वही, पृ. (V)

स्पष्ट है कि कई–कई विचारकों, विद्वानों ने भारिल्ल की सर्जनात्मक प्रतिभा, तत्त्वज्ञान की समझ को लेकर अपने–अपने विचार व्यक्त किए हैं। इस दृष्टि से आयुर्वेदाचार्य पंडित राजकुमार शास्त्री प्रो. उदयचन्द जैन सर्वदर्शनाचार्य वाराणसी का नाम उल्लेखनीय है। पुरातत्त्वविद नीरज जैन आशा व्यक्त करते हैं कि बारह–भावना जन–जन का कण्ठहार बनें।[1] किरणभाई जयन्तीलाल शाह की निगाह में भारिल्ल आध्यात्मिक जगत में मूर्तिमन्त लेखक हैं।[2] रंजना प्रचण्डिया सोमेन्द्र के विचार में, 'डॉ. साहब द्वारा संचालित पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का निर्माण जैन धर्म के प्रचार–प्रसार का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। विदेशों में हो रहे महान् कार्य को गति देने के उद्देश्य से बालबोध भाग 1 से 3 तक, तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग 1 व 2 इत्यादि पाठमाला तैयार की है।''[3]

डॉ. भारिल्ल ने उपन्यास विधा को भी अपनी लेखनी से उपकृत किया है। अपने 'सत्य की खोज' उपन्यास से समाज में एक नयी चेतना का संचार किया है।

सत्य की खोज उपन्यास का संक्षिप्त परिचय

साहित्य साधना में अनेक प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति होती है। वे भाव अपनी योग्यता को व्यक्त करते हैं। साहित्य सदाचरण, सद्भाव एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना करते हैं। साहित्य ज्ञान राशि का संचित कोष है।[4]

प्राचीन समय से लेकर आधुनिक युग में भी साहित्य किसी न किसी रूप में लिखा जा रहा है। पूर्व में वेद, पुराण, स्मृति, आगम, त्रिपिटक आदि थे। पहले संस्कृत, प्राकृत में साहित्य लिखा गया

1. चिन्तन की गहराइयाँ – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल प्रकाशकीय, पृ (V)
2. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल – सप्तम खण्ड पृष्ठ 69
3. वही, पृष्ठ 94
4. द्विवेदी महावीर प्रसाद –साहित्य की महत्ता समालोचना से साक्षात्कार, प्रका. वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा सन् 2006 पृष्ठ 7

पश्चात् 12वीं–13वीं शताब्दी में हिन्दी में काव्य, गद्य, उपन्यास, निबंध, व्याख्याएँ, वचनिकाएँ आदि लिखी गईं।[1]

'उपन्यास' मनुष्य जीवन के विविध रूपों, आयामों, आकारों, अनुभूति और अनुभवों को व्यापकता, गहराई और विस्तार देता है।[2] हिन्दी साहित्य के मनीषियों ने उपन्यास संबंधी अनेक परिभाषाएँ दी हैं। यह एक नवीन प्रकार की प्रकथन रचना है, जिसमें आधुनिकता और सत्य दोनों की स्थापना की जाती है।[3] जिसमें मानव–चरित्र पर प्रकाश डाला जाता है और उसके रहस्यों को उद्घाटित किया जाता है, वह उपन्यास है – ऐसा मुंशी प्रेमचन्द कहते हैं।

डॉ. भारिल्ल ने उपन्यास विधा को भी महत्त्व दिया है। उन्होंने 'सत्य की खोज' नामक उपन्यास के माध्यम से समाज को नई चेतना दी है। इसमें भी सामान्य जीवन जीने की कला के साथ–साथ आध्यात्मिक जीवन जीने की सार्थकता पर विस्तार से प्रकाश डाला है। लोक जीवन भाग्य पुरुषार्थ एवं मानवीय जगत् का स्वरूप घटना क्रम भी हैं तथा पात्र चरित्र–चित्रण में विश्वास एवं अद्भुत विचारों का लेखा–जोखा भी है। कथानक में परमार्थ तत्त्व के साथ–साथ सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना भी है, जो मनःस्थिति को प्रभावित भी करती है।

'सत्य की खोज' एक ऐसा उपन्यास है जो यथार्थ को लेकर सत्यार्थ को प्रतिपादित करता है। इसमें रूढ़िवादिता को हटाकर जीवन जीने की कला को दर्शाया गया है। इस उपन्यास का मूल उद्देश्य वर्तमान संदर्भ में सामाजिक तथ्यों और आध्यात्मिक सत्य को उजागर करना है।

कहानीकार भारिल्ल

प्राचीन कथा साहित्य के विकास क्रम में हिन्दी की कथाओं को कहानियाँ कहा गया। जिसका प्रारम्भ भारतेन्दु युग से पूर्व हो चुका

---

1. द्विवेदी महावीर प्रसाद –साहित्य की महत्ता समालोचना से साक्षात्कार, प्रका. वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा सन् 2006 पृष्ठ 7–8
2. हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास, पृ. सं. 252,
3. वही, पृ. 252–253

था जो अब तक गतिशील है। कतिपय अनुदित और मौलिक कहानियों का निर्माण भी हुआ है। कहानी की रचना प्रक्रिया में चरित्र चित्रण की सार्थकता पर ध्यान नहीं दिया गया, परन्तु वे कहानियाँ यथार्थ को प्रतिपादित करने में समर्थ हुईं। प्रेमसागर, सदल मिश्र द्वारा अनूदित संस्कृत काव्य की कहानियाँ भी प्रकाश में आईं। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, जयशंकर प्रसाद तथा प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी की विकास यात्रा में अपूर्व योगदान दिया है जिनसे आदर्शवाद के साथ–साथ मानवीय विश्वास को भी गति मिली है। इतिहास पुराण आदि से हटकर मानवेतर तत्त्वों की कहानियाँ भी लिखी गईं। पशु–पक्षी, राष्ट्रप्रेम, देश–भक्ति आदि के आदर्श में यथार्थ का संघर्ष है।

सामाजिक विकृतियों को दूर करने के लिये डॉ. भारिल्ल ने अनेक प्रकार की कहानियाँ लिखी हैं, जो बच्चों से लेकर वृद्धजनों को भी संस्कारित करती हैं; क्योंकि उनमें यथार्थ का चित्रण है और समाज में फैलती हुई असंस्कार युक्त भावनाओं को मिटाने की शक्ति भी है। अनेक प्रकार के संस्कारों से जुड़ी कहानियाँ आदर्श शिक्षा और नीति के मार्ग को भी दर्शाती है। उनके उपदेशात्मक कथानक अनुभूति की सच्चाई की ओर ले जाते हैं और वे जीवनदर्शन के विविध पक्षों को आदर्शमय बनाने में समर्थ होते हैं। व्यक्तिपरिवेश के साथ–साथ इनकी कहानियों में अध्यात्म का रहस्य भी समाहित रहता है जो मानवमूल्यों की स्थापना करके परमात्मा के दर्शन भी कराती हैं।

डॉ. भारिल्ल की प्रमुख कहानियों में निहित मूलभाव निम्न हैं :–

- आप कुछ भी कहो : चमत्कारिक कल्पनाओं की वास्तविक स्थिति स्पष्ट करते हुए अज्ञान की जड़ें कितनी गहरी होती है – इस तथ्य को सुन्दरता के साथ उजागर किया है।
- अक्षम्य अपराध : भूमिकानुसार आचरण सम्बन्धी ज्ञान के अभाव में अपराधों को भी गुणों के रूप में स्मरण किया जाता है। समाज और देश में उत्तेजना फैलाने वाले कार्य श्रमण भूमिका में तो अक्षम्य अपराध ही है।
- जागृत विवेक : विद्यार्जन में विनय और विवेक दोनों आवश्यक

है। इनमें विवेक का स्थान सर्वोपरि है, किन्तु वह विनय और मर्यादा को भंग करनेवाला नहीं होना चाहिए। इसीतरह विवेक के नाम पर कुछ भी करना तो महापाप है।

• अभागा भरत : सद्भाग्य–दुर्भाग्य की सच्ची समझ न रखने वालों को लौकिक वैभव एवं भोग सामग्री येन–केन प्रकारेण प्राप्त करने वाले भाग्यशाली दिखते हैं और समझदारों के लिए रुचि की प्रतिकूलता में सद्भाग्य भी दुर्भाग्यवत ही फलते हैं।

• उच्छिष्ट भोजी : जिस वसुधा को अभुक्त समझा जाता है, उसे अनेक चक्रवर्ती जीतकर भोगते हैं और छोडकर जाते हैं, अतः भरत–चक्रवर्ती अपने आपको छह खण्ड जीतने पर भी उच्छिष्ट भोजी ही समझते हैं।

• परिवर्तन : सत्य के आराधक क्रांतिकारी परम्परागत रूढियाँ, पक्ष व्यामोह, साथियों का साथ और जीवन की परवाह किये बिना असत्य का मार्ग छोडकर सत्य अपना लेते हैं।

• जरा सा अविवेक : शरीर का घाव तो समय पाकर भर जाता है, पर मन के घाव भरना सहज नहीं होता। जरा सा अविवेक क्या–क्या अनर्थ कर डालता है ? एक ज्ञानी की विराधना से अनन्त ज्ञानियों की विराधना का महापाप हो जाता है।

• गाँठ खोल देखी नहीं : सडकों पर गलियों में घूमते दर–दर की ठोकरें खाते चेतन लालों की कीमत आज किसको है ? सभी जड़ रत्नों के पीछे भाग रहे हैं। आज कौन–सा घर इन चेतन लालों से खाली है ? कमी लालों की नहीं; उन्हें पहिचानने वालों की है, सँभालनेवालों की है।

• असंतोष की जड़ : स्त्रियाँ अपनी कल्पना में पति की एक ऐसी काल्पनिक मूर्ति गढ लेती है कि उस कसौटी पर कोई भी पति खरा नहीं उतर पाता – यह असंभव कल्पना ही उनकी असंतोष की जड होती है।

• एक केतली गर्म पानी : आवश्यक आवश्यकताओं की मांग के लिए किए गए विद्रोह को दबाने की जगह उनकी जायज मांगों को पूरा करने की आवश्यकता है।

इस तरह भारिल्ल की कहानियाँ जन–जन तक के लिए नैतिकता का उपदेश देने वाली हैं। इसमें समाज को नई दिशा के निर्देश हैं और कल्याणकारी मार्ग के साधन भी हैं। इनमें अध्यात्म मनन–चिन्तन भी है।

जैन निबंध साहित्य और उनकी परम्परा

संस्कृत गद्य साहित्य

वेद के चार भाग हैं – संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद की ऋचाएँ गद्य में हैं। जैन गद्य साहित्य में सर्वप्रथम तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, धवला, जयधवला, महाधवला, प्राकृत, संस्कृत युक्त अष्ट–सहस्री, अष्टशती आदि दार्शनिक ग्रन्थ, कथाग्रन्थ, टीका ग्रन्थादि विपुल जैन साहित्य संस्कृत गद्यात्मक रूप में सृजित किया गया।[1]

संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त बौद्ध और जैन साहित्य में भी गद्य के प्रयोग हुए हैं।[2] भाषा की दृष्टि से नीति और सदाचार शैली में भी गद्य का प्रयोग हुआ है।[3]

प्राकृत गद्य साहित्य

आगम सम्बन्धी गद्य, कथा साहित्य, चम्पू काव्य और सिद्धान्त सम्बन्धी गद्य। प्राकृत में जितने भी आगम ग्रन्थ हैं उन सभी में गद्य की प्रधानता है। अंग आगम, उपांग–आगम, छेद–सूत्र, मूलसूत्र, प्रकीर्णक आदि आगम साहित्य में कथात्मक एवं भावात्मक दृष्टि गद्य रूप में है। प्रारम्भ से लेकर बीसवीं शताब्दी तक प्राकृत में गद्य प्रधान रचनाएँ लिखी गई हैं।[4]

पालि गद्य साहित्य

पालि भाषा में भी गद्य साहित्य के निबन्ध लिखे गए। विनयपिटक,

---

1. डॉ. माया जैन, आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं काव्यकला, पृष्ठ 150, प्रका. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी, सांगानेर (जयपुर)
2. सूर्यकान्त : संस्कृत वाड्.मय का इतिहास, पृष्ठ 270–299
3. डॉ. श्रीमती माया जैन–आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं काव्यकला, पृष्ठ 150–151,
4. वही, पृष्ठ 151

सूत्रपिटक, अभिधम्मपिटक एवं अनुपिटक आदि आगम साहित्य के ग्रन्थ गद्य प्रधान शैली में हैं।[1]

हिन्दी गद्य साहित्य

हिन्दी में कथा, कहानी, आख्यायिका, रेखाचित्र, संस्मरण, उपन्यास, नाटक आदि के अतिरिक्त समालोचनात्मक निबंध हिन्दी गद्य साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखता है।[2]

ब्रजभाषा का गद्य साहित्य

ब्रजभाषा गद्य का प्रारम्भ गोरखपंथी ग्रन्थ में मिलता है। विट्ठलनाथ के श्रृंगार रस मण्डन में भी गद्य का प्रयोग हुआ है। चौरासी वैष्णवन की वार्ता, अष्टयाम, बैताल पच्चीसी के अनुवाद, बिहारी सतसई की टीका आदि में भी मिलता है।[3]

खड़ी बोली का गद्य साहित्य

रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाषा योग विशिष्ट' में खड़ी बोली गद्य का प्रयोग किया था। पं. दौलतराम ने जैन पद्मपुराण की रचना खड़ी बोली में की। खड़ी बोली का विकास भारतेन्दु युग तक हुआ। भारतेन्दु के पश्चात् गद्य के विकास में तत्सम शब्द की बहुलता का श्रीगणेश हुआ।[4]

जैन हिन्दी गद्य साहित्य

जैन साहित्य का प्रारम्भ प्राकृत भाषा में हुआ। भूतबलि पुष्पदन्त ने षट्खंडागम जैसे सिद्धान्त ग्रन्थों की रचना प्राकृत में गद्य शैली में की। जैन हिन्दी गद्य साहित्य को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं–

(1) प्राचीन जैन हिन्दी गद्य साहित्य

(2) आधुनिक गद्य साहित्य।[5]

प्राचीन जैन हिन्दी गद्य साहित्य

गद्य साहित्य के निर्माण, रक्षण और विकास में जैन समाज का

1. आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं काव्यकला, पृष्ठ 152
2. वही, पृष्ठ 152
3. वही, पृष्ठ 152
4. वही, पृष्ठ 152
5. वही, पृष्ठ 153

योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जैन लेखकों ने अपने धार्मिक विचारों को जनता तक पहुँचाने और प्राचीन (प्राकृत और संस्कृत में रचित काव्य) धर्मग्रन्थों की व्याख्या के लिए लोकभाषा का सहारा लिया। मौलिक गद्य का भी निर्माण इन लोगों ने किया।[1] जैन गद्यकारों ने अनेक वचनिकाएँ प्रस्तुत कीं। पाण्डे राजमलजी की 'समयसार कलश' पर लिखी गई बालबोधनी टीका सबसे प्रसिद्ध एवं प्राचीन है।

पाण्डे राजमल्लजी : अध्यात्मकमलमार्तण्ड, पंचाध्यायी, जम्बूस्वामी चरित, लाटीसंहिता, छन्दोविद्या आदि इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।[2]

बनारसीदास : परमार्थ वचनिका और निमित्त उपादान चिट्ठी आदि ग्रन्थ हैं।[3]

हिन्दी गद्य में कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें अनुभवप्रकाश, चिद्विलास, आत्मावलोकन, परमार्थ पुराण, ज्ञानदर्पण, उपदेश रत्नमाला, स्वरूपानंद आदि महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं।[4]

पण्डित टोडरमल : आपकी रचनाओं को दो भागों में बाँटा है–

(1) मौलिक रचनाएँ और

(2) व्याख्यात्मक टीकाएँ।[5]

दौलतराम कासलीवाल : इनकी गद्य रचनाओं में पद्मपुराण वचनिका, आदिपुराण वचनिका और हरिवंशपुराण वचनिका महत्त्वपूर्ण हैं।[6]

जयचन्द छाबड़ा : इनके 15 ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं– तत्त्वार्थसूत्र वचनिका, सर्वार्थसिद्धि वचनिका, प्रमेयरत्नमाला वचनिका, स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा भाषा, द्रव्यसंग्रह वचनिका, समयसार वचनिका, देवागम स्तोत्र, अष्टपाहुड़ वचनिका आदि।[7]

---

1. हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ 122
2. आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं काव्यकला, पृष्ठ 155
3. वही, पृष्ठ 155
4. वही, पृष्ठ 156
5. वही, पृष्ठ 156
6. वही, पृष्ठ 157
7. हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 504

पण्डित सदासुखदास : निम्न प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं– भगवती आराधना, भाषा वचनिका, तत्त्वार्थसूत्र, लघु भाषाटीका, तत्त्वार्थसूत्र वृहद भाषाटीका अर्थप्रकाशिका, समयसार नाटक भाषा वचनिका, अकलंकाष्टक भाषा वचनिका, मृत्युमहोत्सव, रत्नकरण्डश्रावकाचार भाषाटीका और नित्य नियम पूजा।[1]

निबंध परम्परा और उसका विश्लेषण

गद्य एवं पद्य दोनों ही भाषा, भाव, विचार, रीति, गुण, माधुर्य, ओज, प्रसाद एवं अलंकृत शब्द और अर्थ से युक्त हैं। उनके प्रत्येक बालबोध, वीतराग विज्ञान, धर्म के दश लक्षण, बारह भावना, अहिंसा महावीर की दृष्टि में, शाकाहार आदि विचारों तथा कुन्दकुन्द शतक, शुद्धात्म शतक, समयसार पद्यानुवाद, समयसार कलश पद्यानुवाद, योगसार, जिनेन्द्रवंदना, द्रव्यसंग्रह, अष्टपाहुड़ आदि के पद्यानुवाद में काव्य के अनेक तत्त्वों का समावेश है।[2]

''शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्''[3] जिसमें शब्द और अर्थ का समावेश हो, वह साहित्य है।

जिसमें अनुकूल शब्द और अर्थ का मिश्रण होता है, उसे सत्साहित्य कहते हैं।[4]

डॉ. भारिल्ल के निबन्ध

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के जितने भी विचार हैं उनमें मानवीय जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है उनके विचारों में दर्शन, अध्यात्म के अतिरिक्त उदात्त चित्रों, निबन्धन भाषा शैली अलंकृत भाव, सूक्तियाँ, लोकोक्तियाँ, दृष्टान्त, प्रकृति–चित्रण, समीक्षात्मक दृष्टि, काव्यकला के भावपक्ष और कला पक्ष दोनों ही हैं।

---

1. आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं काव्यकला, पृ. 159
2. भरतमुनि नाट्यशास्त्र 9/130
3. भामह : काव्यालंकार 2/40
4. आचार्य हेमचन्द्र : काव्यानुशासन, पृष्ठ 18

स्तुतिकाव्य और उनकी काव्यकला

जिसमें गुणों का निरूपण किया जाता है उसे स्तुति कहते हैं।[1] यथार्थ चित्रण गुणों के उत्कृष्ट की कथनी, आख्या, प्रशंसा आदि का नाम भी स्तुति है।[2]

स्तुति को पूजा, स्तोत्र, संस्तव, स्तवन, वन्दना, विनय, मंगल, भक्ति एवं अर्चना भी कहते हैं।[3]

डॉ. भारिल्ल के स्तुतिकाव्य और उनकी काव्यकला

स्तुति कई प्रकार की मानी गई है, जिसमें आराध्य के गुणों को विशेष महत्त्व दिया जाता है। पूजा में गुणों का अनुसरण, भक्ति में गुणानुवाद, स्तवन में किसी अध्यात्म पुरुष के गुणों की आराधना आदि को महत्त्व दिया जाता है। प्राचीन समय से लेकर अब तक बीसवीं एवं इक्कीसवीं शताब्दी के प्रवेश में भी संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी में अनेक पूजन, स्तवन आदि लिखे गए हैं। भूधरदास, द्यानतराय, भगवतीदास, अर्जुनदास, अजयराज, विश्वभूषण, जुगल किशोर, राजमल पवैया आदि ने तीर्थंकर सम्बन्धी पूजाएँ लिखी हैं। संस्कृत में डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य, आचार्य विद्यासागर, आचार्य सुनील सागर, आर्यिका विशुद्धमती, आर्यिका ज्ञानमती, आ. सुपार्श्वमती, आ. स्याद्वादमती आदि ने हिन्दी में अनेक पूजाएँ लिखी हैं। प्राकृत में आर्यिका विशुद्धमती, आर्यिका ज्ञानमती, आचार्य सुनील सागर ने भी रचनाएँ लिखी हैं। प्राकृत के महाकवि डॉ. उदयचन्द्र जैन उदयपुर ने भी स्तुतिकाव्य में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।[4]

डॉ. भारिल्ल ने भी इस युग में अपने सृजन से अनेक प्रकार का योगदान दिया है उन्होंने देव–शास्त्र और गुरु से सम्बन्धित पूजाएँ लिखीं अनेक भक्ति स्तुति, स्तोत्र आदि भी लिखे हैं।

---

1. आचार्य समन्तभद्र – स्वयंभू स्तोत्र, श्लोक 86
2. आचार्य समन्तभद्र – युक्त्यानुशासन श्लोक–2
3. जैन प्रेमसागर – जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि, पृष्ठ 28–29
4. आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं कृतित्व कला, पृष्ठ 66

नाटक

संवाद स्वरूप एवं विश्लेषण

विशेष अभिप्राय पूर्वक उत्तम आपसी वार्ता जहाँ की जाती है वहाँ संवाद होता है। दो व्यक्तियों को आपसी वार्ता या प्रश्नपूर्वक परिदृश्य की उपस्थिति जहाँ होती है वहाँ संवाद है। ये दो काव्य हैं। श्रव्य काव्य का आनन्द सुनने या पढ़ने से लिया जाता है और दृश्य काव्य का आनन्द पात्रों के शारीरिक, वाचिक एवं मनोगत भावों के अनुकरण से होता है आचार्य धनन्जय ने अभिनय के आधार पर पात्रों का जो चरित्र–चित्रण किया है, उसमें आंगिक, वाचिक, आहारिक एवं सात्त्विक भावों का अनुकरण किया जाता है। भरत मुनि ने जिसे अनुकीर्तन कहा है।

दृश्य काव्य को रूपक कहते हैं। **"तत्राभिनेयतद्रूपारोपात्तु रूपकम्"** अर्थात् जहाँ अनुरूप कारण से अभिनय किया जाता है, वह रूपक होता है। रूपक को नाट्य भी कहते हैं।

नाटक शब्द – नाटक की उत्पत्ति 'नृत' या 'नृत्य' से मानी गई है। 'नृत' लय और ताल होती है। उसके समारोप से रूपक बनता है।[2]

रूपक के प्रकार – संवाद युक्त अभिव्यक्ति प्रयोजन विशेष रूप से होती है, वे प्रयोजन नाटकादि हैं–

"नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं दिमः।
व्यायोगसमवकारी वीथ्यङ्केहामृगा इति।।"

नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, दिग, व्यायोग, समवकार, वीथि, अंक और ईहामृगा।[2]

इन दस रूपकों में नाटक, प्रकरण और प्रहसन तीन महत्त्वपूर्ण हैं।

---

1. धनंजय कवि दस रूपक , प्रका. चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी
2. शर्मा कृष्णदेव – भारतीय काव्यशास्त्र, पृष्ठ 219, प्रका. विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2002

नाटक की दृष्टि से विचार करते हैं तो उसमें प्रसिद्ध कथानक पाँच संधियों का न्यास, प्रसिद्ध नायक एवं नायिका आदि होते हैं।[1] आचार्य विश्वनाथ ने इसकी विस्तृत व्याख्या की है। भरतमुनि ने विचित्र मनोरंजन को देने वाला नाटक कहा है। उसमें धीरोदात्त प्रतापी नायक और नायिका होती है।[2] रूपकों में विविध संवाद होते हैं।

डॉ. भारिल्ल के संवाद –

अभिनय, दृश्य, घटना, कथावस्तु, संवाद आदि की लघुता होने से इनके दृश्यों को नाटक आदि कुछ भी नहीं कहा जा सकता। परन्तु अभिव्यक्ति, पात्र, चरित्र–चित्रण, आचार–विचार, क्रिया–कलाप, संवाद आदि से उनके दृश्यकाव्यों को नाटिका में लघु नाटिका भी नहीं कह सकते हैं, परन्तु वे संवाद–परस्पर की वार्ता युक्त चित्र हैं, जो बालकों के चित्त को प्रभावित करते हैं।

संवादों का नामोल्लेख –

बालबोध पाठमाला भाग–1 में तीर्थंकर भगवान, देव–दर्शन, जीव–अजीव, दिनचर्या, भगवान आदिनाथ लघु बालकों के बोध के लिए ही लघु संवाद युक्त तात्त्विक चिंतन है। तीर्थंकर भगवान में छात्र और अध्यापक दो ही पात्र हैं। छात्र प्रश्नकर्त्ता के रूप में और अध्यापक उन प्रश्नों का समाधान करने वाले हैं। इसमें तीर्थंकर और भगवान दोनों की पृथक्–पृथक् व्याख्याएँ की गई हैं। तीर्थंकर धर्मतीर्थ का उपदेश देते हैं और भगवान वीतरागी और सर्वज्ञ हैं।[3]

पात्र में छात्र और अध्यापक दोनों ही विचारशील हैं, संवाद में बालकों के लिए प्रेरक भाव हैं। भाषा में माधुर्य और प्रचलित जैन शब्दावलियों का प्रयोग है। देव–दर्शन में दो प्रमुख पात्र हैं–दोनों ही जिन मंदिर जाते हैं और विधि अनुसार देव–दर्शन करते हैं। डॉ.

1. आचार्य विश्वनाथ – साहित्य दर्पण दूसरा पर्व, प्रका. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2001
2. नाट्यदर्पण–दूसरा पर्व, प्रका. मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली,2004
3. बालबोध पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 8–9, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

भारिल्ल ने इसमें छोटे–छोटे संवाद दिए हैं।

'दिनेश – जिनेश ! ओ जिनेश !! कहाँ जा रहे हो?

जिनेश – मन्दिर जी ।''

इस नाटिका का प्रमुख उद्देश्य आत्मा से परमात्मा के भाव जागृत करना है। कथन में प्रश्नोत्तर शैली है।[1]

जीव–अजीव इस संवाद में दोनों की वास्तविकता पर प्रकाश डाला गया है। जीव सुख–दुःख का अनुभव करता है और अजीव नहीं। शरीर अजीव है, आत्मा जीव है। इन्हीं दो शब्दों के माध्यम से हीरालाल और ज्ञानचन्द इन दोनों के संवादों से जीव–अजीव का ज्ञान कराया गया है। भाषा में बालकों की सहज जिज्ञासा है।[2]

दिनचर्या – इस संवाद में अध्यापक रमेश, सुरेश ये तीन पात्र हैं, जो प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर णमोकार मंत्र का जाप करते हैं। अध्यापक आत्मा के स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं, उसमें भी आत्मा और परमात्मा के अन्तर के पश्चात् देव–दर्शन की शिक्षा भी देते हैं।[3]

भगवान आदिनाथ – इसमें दो नारी पात्र हैं। बेटी और माँ; बेटी पूछती हैं भक्तामर जी क्या हैं?

माँ – भक्तामर स्तोत्र एक स्तुति है, जिसमें भगवान आदिनाथ की स्तुति है।[4]

ऋषभ आदि तीर्थंकर आदिनाथ हैं। जिन्होंने सर्वप्रथम मुक्तिमार्ग को प्राप्त किया था। उन्होंने एक हजार वर्ष तक मौन साधना की थी।

इसमें ऋषभ राजा उनकी पत्नी नन्दा, ब्राह्मी और सुन्दरी, बाहुबली और भरत तथा नीलांजना नामक नर्तकी के नामों का उल्लेख है। इसमें ऋषभ के पिता राजा नाभिराय और ऋषभ की माता रानी मरूदेवी का कथन है।[5]

बालबोध पाठशाला भाग–2 में पाप, कषाय, सदाचार, गतियाँ,

1. बालबोध पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 11 से 13
2. वही, पृष्ठ 14 से 15
3. वही, पृष्ठ 17 से 19
4. वही, पृष्ठ 20
5. वही, पृष्ठ 20 से 21

द्रव्य एवं भगवान महावीर इन चार संवादों में बालकों के संस्कारों को बनाए रखने के लिए सरल रीति से अलग–अलग विषय से समझाया गया है।

और उसके पाप और कारण – इसमें पुत्र–पिता ये दो पात्र हैं। पुत्र अपने पिता से पूछता है कि लोभ पाप का बाप है तब पिताश्री कहते हैं सबसे बड़ा पाप तो मिथ्यात्व ही है, जिसके वश में होकर जीव घोर पाप करता है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पाप को पुत्र जानता है, पर मिथ्यात्व को नहीं इसीलिए उसे समझाया जाता है कि उल्टी मान्यता ही मिथ्यात्व है।[1]

मिथ्यात्व परिग्रह ?

चौबीस परिग्रहों में सबसे पहला नम्बर तो इसका ही आता है। पाप में कषाय का ही उल्लेख है। कषाय नामक स्वतंत्र पाठ में सुबोध और प्रबोध दो पात्र हैं, दोनों ही कषाय के विषय को समझना चाहते हैं। सुबोध कहता है कि "आत्मा मात्र जानता देखता है। इस पर प्रबोध कहता है– कषाय तो उसका विभाव है स्वभाव नहीं।"

विभाव क्या होता है ?

आत्मा के स्वभाव के विपरीत भाव को विभाव कहते हैं।[2]

इसमें राग द्वेष आदि विभाव के साथ–साथ चारों कषायों का वर्णन है, जो सहज और बोधगम्य भावों से परिपूर्ण है।

सदाचार की शिक्षा

बालसभा में अध्यक्ष एवं शांतिलाल एक छात्र और एक छात्रा निर्मला खाने पीने के लोभ के कारणों पर प्रकाश डालते हैं। उसमें रात्रिभोजन से संबंधित हानि पर निर्मला प्रकाश डालती है और अपने विषय का प्रतिपादन करते हुए कहती है कि रात्रिभोजन करने वाले यदि अस्पताल नहीं पहुँचे तो खुद ही स्वर्ग की तैयारी करने लगते। इसी प्रसंग में वह कहती है कि वास्तव में रात्रिभोजन में गृद्धता अधिक होने से तीव्रता होती है।[3]

1. बालबोध पाठमाला भाग–2, पृष्ठ 7
2. वही, पृष्ठ 11
3. वही, पृष्ठ 18

इसमें अध्यक्ष पद से बोलते हुए अध्यक्ष जी समझाते हैं कि पानी में भी जीव होते हैं, इसीलिए बच्चों को पानी छानकर पीना चाहिए।[1]

इसी तरह गतियों में चार गति; द्रव्य में पुद्गल द्रव्य, विश्व आदि की परिभाषा दी गई है। छः द्रव्यों के समुदाय को विश्व कहते हैं, ये अनादिअनंत स्वनिर्मित है।[2]

भगवान महावीर में अध्यापक और विद्यार्थी दो ही पात्र हैं। अध्यापक बालकों को समझाते हैं कि महावीर का कल जन्म कल्याणक होगा। इस पर एक विद्यार्थी उनके जन्म के प्रति जिज्ञासा करता है और अध्यापक उसका समाधान करता है। एक विद्यार्थी उनके नामों का उल्लेख करता है। अध्यापक–वीर, अतिवीर, सन्मति, वर्द्धमान और महावीर इन पाँचों से सम्बन्धित संक्षिप्त जानकारी देते हैं। इसमें भगवान बनने की वास्तविकता का कथन किया जाता है। दिव्यध्वनि के पश्चात् केवलज्ञानी भगवान महावीर कहलाये। उन्होंने 72 वर्ष की आयु में जिस दिन मुक्ति को प्राप्त किया था वह दिन दीपावली के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसे महावीर निर्वाण महोत्सव के नाम से मनाते हैं।[3]

बाल बोध पाठमाला भाग–3 में श्रावक के अष्ट मूलगुण, इन्द्रियाँ, सदाचार, द्रव्य–गुण–पर्याय, एवं भगवान नेमीनाथ इन संवादों के माध्यम से डॉ. भारिल्ल ने बालकों को सात्विक जीवन जीने का मार्ग दर्शाया है। श्रावक के अष्ट मूलगुण में मद्य, मांस, मधु और पाँच उदुम्बर फल बड़, पीपल, कठूम्बर, गूलर और पाकर (एक प्रकार के वृक्ष. के फल) इन पांच जातियों के फल को त्याग करने वाला अष्ट मूलगुण धारी श्रावक होता है।[4]

इन्द्रियों में पांच इन्द्रियों के विषय का वर्णन है। सदाचार में भक्ष्य और अभक्ष्य वस्तुओं का कथन किया गया है। आज के संदर्भ में चाट–पकोड़े, आलू की टिकिया चौराहे पर ही मिलते हैं उसमें त्रसघात, बहुघात, अनुपसेव्य, नशाकारक और अनिष्ट आदि पदार्थों

1. बालबोध पाठमाला भाग–2, पृष्ठ 18
2. वही, पृष्ठ 19
3. वही, पृष्ठ 27
4. (क) उत्तरपुराण (ख) बालबोध पाठमाला भाग–3, पृष्ठ 30 से 33

का भी उल्लेख है। अभक्ष्य भक्षण को महा पाप कहा गया है।[1]

द्रव्य–गुण–पर्याय के विवेचन में सम्पूर्ण द्रव्य की अवस्थाओं पर सिद्धान्त की दृष्टि से विवेचन किया गया है। इसमें द्रव्य के सामान्य व विशेष दोनों ही भावों को सरल संवादों के रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा द्रव्य के अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व और प्रदेशत्व इन सभी पर अलग–अलग विचार दिए गए हैं।[2] भगवान नेमिनाथ में सौरीपुर के कुमार के राजकाल का विवेचन एवं वैराग्य को प्रस्तुत किया गया है। इसमें डॉ. भारिल्ल ने नेमिकुमार को बाल–ब्रह्मचारी कहा है।

छोटे–छोटे संवादों में बालकों के अनेक प्रेरणास्पद भाव हैं, उनकी जिज्ञासाओं के समाधान हैं। उन्हें अपने जीवन को समझने का अवसर भी प्राप्त होता है और आत्मा और शरीर के अलग–अलग स्वरूप का ज्ञान। इन्हें नन्हें बालक पढ़ते हैं, उनका अभिनय करते हैं और फिर उनसे नए–नए विचारों का ज्ञान भी करते हैं।

श्रोता, दर्शक या पाठक आदि एक बार यह विचार करने को बाध्य हो जाता है कि पाप दुःख रूप है, कषाय बंधन रूप है और आत्म स्वभाव सदैव एक सा विशुद्ध, निर्मल, पवित्र आदि ही तो है। इन संवादों या विचारों को बड़े भी पढ़ते हैं, उन्हें पढ़कर आत्म–ज्ञान प्राप्त करते हैं, क्योंकि उनमें सभी तरह से भेद–विज्ञान का निरूपण है, आत्म–मंथन है और संसार से विरक्ति के कारण भी हैं।

डॉ. भारिल्ल एक क्षेत्र से नहीं बंधे, अपितु वे सबसे जुड़े हुए सभी को बहुत कुछ कह जाते हैं। इससे बाल–वृद्ध, नर–नारी आदि बहुत कुछ सीख जाते हैं।

वीतराग विज्ञान पाठमाला में प्रतिपादित संवादों का अनुशीलन

डॉ. भारिल्ल ने प्रथम वर्ग में बालकों को ज्ञान कराने के लिए बालबोध के तीन भागों में अनेक प्रकार के संवाद दिए हैं। जो पाँच

1. बालबोध पाठमाला भाग–3, पृष्ठ 12
2. वही, पृष्ठ 21 से 22

से दस वर्ष की अवस्था के लिए अत्यन्त ही उपयोगी है। ग्यारह से पच्चीस वर्ष के वर्ग के बालकों, युवाओं एवं युवतियों के लिए वीतराग–विज्ञान व तत्त्वज्ञान के भागों में अनेक चिन्तनपूर्ण विषय संवाद रूप में प्रस्तुत किये है।

वीतराग विज्ञान

यह एक ऐसा ज्ञान है जिसमें आत्मा से परमात्मा बनने की शिक्षा दी गई है। वीतराग को केवलज्ञानी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, परमात्मा आदि कहा गया।[1]

संसारी जीवों में सबसे उत्कृष्ट आत्मा को परमात्मा कहा गया।[2] परमात्मा को सर्वज्ञ भी कहते हैं, जो लोकालोक के सम्पूर्ण पदार्थों को एक साथ एक ही समय में जानते–देखते हैं।[3]

डॉ. भारिल्ल ने आठवीं शताब्दी के प्रसिद्ध अध्यात्मवेत्ता महाकवि योगीन्दु के परमात्मप्रकाश को आधार बनाकर आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि जो ज्ञानस्वभावी आत्मा होता है वह अलग–अलग परिणामों के कारण तीन प्रकार का कहा गया– (1) बहिरात्मा (2) अंतरात्मा और (3) परमात्मा।

परमात्मा पूर्ण निराकुल एवं अनंत सुखी होते हैं वे दो प्रकार के कहे गए हैं,सकल परमात्मा और निकल परमात्मा। सकल परमात्मा को अरहंत और निकल परमात्मा को सिद्ध कहा गया।[5]

डॉ. भारिल्ल ने योगीन्दु नामक महाकवि को भी संवाद का प्रमुख पात्र बनाकर आत्मा–परमात्मा के विषय को प्रतिपादित किया है। प्रभाकर नामक चरित्र प्रश्नकर्त्ता के रूप में है। इसके मूल में श्रावक और मुनि दोनों को परमात्मा के स्वरूप की दृष्टि दी है।

सात तत्त्व के संवाद में उमास्वामी के तत्त्वार्थसूत्र में प्रतिपादित

1. बालबोध पाठमाला भाग–3, पृष्ठ 26
2. धवला पुस्तक–1
3. वर्णी जिनेन्द्र – जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग–3, पृष्ठ 19, प्रका. भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, 2007
4. स्वयंभू स्तोत्र श्लोक–106, प्रका. वीरसेवामन्दिर दरियागंज दिल्ली
5. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 8

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वों का विवेचन जिस रूप में हुआ है उसे मुमुक्ष की जिज्ञासा, शंका एवं प्रश्नकर्ता के अभिप्राय को ध्यान में रखकर सातों तत्त्वों का विवेचन किया गया है। प्रवचनकार के रूप में सम्पूर्ण तत्त्वदृष्टि पर प्रकाश डाला गया और कहा गया कि यथार्थ श्रद्धा बिना मोक्ष मार्ग नहीं हो सकता।[1]

जैन सिद्धान्त एवं तत्त्व के ग्रंथों में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता को मोक्षमार्ग माना है। सर्वार्थसिद्धिकार ने इन्हें साक्षात् मोक्षमार्ग कहा है।[2] डॉ. भारिल्ल ने भी पवित्र दशा को आधार बनाकर आत्मदृष्टि को महत्त्व दिया।

षट् आवश्यक – आवश्यक मुनियों और श्रावकों दोनों के ही होते हैं।

यहाँ पर संवाद रूप में श्रावक के छः आवश्यक प्रतिदिन करने योग्य कार्यों पर प्रकाश डाला गया है।

देवपूजा गुरूपास्ति, स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानञ्चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने दिने।।[3]

इसमें प्रवचनकार और श्रोता दोनों के ही दृष्टिकोणों में विचारों की प्रमुखता है। जिज्ञासा में श्रोता की रुचि और प्रवचनकार के समझाने में तात्त्विक चिन्तन का समावेश है।

कर्म–स्वरूप एवं विश्लेषण

कर्म को कारक, क्रिया, कथन, अधिकार, प्रवृत्ति, विवेचन प्रतिपादन आदि कहा गया।[4] जिससे जीव मिथ्यादर्शनादि परिणामों को प्राप्त होता है उसे कर्म कहते हैं। वे उपार्जित कर्म कहे जाते हैं।[5] मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति योग, मोह एवं क्रोध आदि भाव कर्म हैं।[6]

---

1. वही, पृष्ठ 11 से 13
2. सर्वार्थ सिद्धि 1/1/7/5
3. वीतराग विज्ञान पाठमाला, भाग–1, पृष्ठ 24
4. वर्णी जिनेन्द्र – जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग–2, पृष्ठ 26–27
5. भगवती आराधना, पृष्ठ 20/31/8 प्रका. सौलापुर
6. समयसार गाथा 87, प्रका. कुन्दकुन्द भारती, दिल्ली 2001

डॉ. भारिल्ल ने षट्खण्डागम्, गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार, क्षपणासार आदि ग्रंथों के आधार पर कर्म की परिभाषा निम्न दी है– अपनी भूल से विकारी रूप परिणमन कर्म है, जो मोह–राग और द्वेष को उत्पन्न करते हैं। उन्हें दुःखरूप माना है वे घाती और अघाती दोनों ही होते हैं और उन्हीं के आधार पर कर्मों के आठ भेदों और उनके स्वरूप पर प्रकाश डालकर उनकी 148 कर्म प्रकृतियों का भी संकेत किया है। चामुण्डराय, आचार्य नेमिचन्द्र इन दोनों पात्रों के आधार पर कर्म के विषय को संवाद रूप में प्रस्तुत किया है।

द्रव्यकर्म और भावकर्म दोनों कर्मों से बंध होता है। द्रव्यकर्म आत्मा से संबद्ध हो जाते हैं और भावकर्म आत्मा में विकार उत्पन्न करते हैं।[1] कर्म घाति और अघाति भी होते हैं, जिसका वर्णन करते हुए लिखा है जो जीव के अनुजीवी गुणों को घात करने में निमित्त हो वे घाति कर्म हैं और जो आत्मा के अनुजीवी गुणों के घात में निमित्त न हो वे अघाति कर्म हैं।[2]

उक्त विवेचना की 'चित्रमाला' प्रस्तुत है–

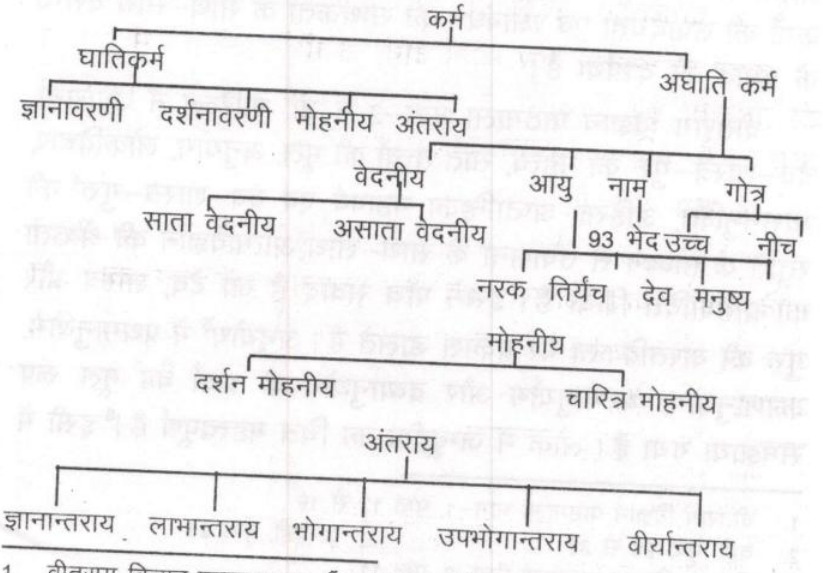

1. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 17 से 18
2. वही, पृष्ठ 18

इत्यादि घातिकर्म और अघाति कर्म[1] के आठ भेदों का संक्षिप्त परिचय उनके उपभेदों का ज्ञान इस संवाद की प्रमुख विशेषता है।

रक्षाबंधन नामक संवाद में अध्यापक और छात्र ये दो पात्र रक्षाबंधन पर्व के प्रारम्भ को कथा के माध्यम से प्रतिपादित करते हैं। छात्र प्रश्न करता है कि अंकपनाचार्य कौन थे? उन पर कैसा उपसर्ग आया था? वह कैसे दूर हुआ? इस प्रश्न का समाधान अध्यापक अंकपनाचार्य मुनि और उनके संघ में रहने वाले सात सौ मुनियों का विधिवत् प्रतिपादन कर रक्षाबंधन की सार्थकता पर प्रकाश डालते हैं।[2]

जम्बूस्वामी नामक संवाद में अंतिम केवली जम्बूस्वामी के वैराग्य का संवाद रूप में प्रतिपादन हुआ है। कुमार की दीक्षा से उनकी नवपरिणीता राजकुमारियां भी वैराग्य के भाव को प्राप्त हुई।[3]

वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–1 के अनेक संवाद पौराणिक, ऐतिहासिक पुरुषों के चरित्र से जुड़े हुए हैं इनमें डॉ. भारिल्ल ने आत्मा से परमात्मा बनने की कला, तत्त्व की वास्तविकता, आवश्यक कर्मों की उपादेयता एवं रक्षाबंधन की सार्थकता के साथ–साथ वैराग्य के प्रभाव को दर्शाया है।

वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–2 में डॉ. भारिल्ल ने उपासना, देव–शास्त्र–गुरु का महत्त्व, सात तत्त्वों की भूल, अनुयोग, लोकविचार, व्यसनमुक्ति, अहिंसा, अष्टान्हिका महापर्व एवं देव–शास्त्र–गुरु[4] की स्तुति के माध्यम से उपासना के साथ–साथ आत्मविज्ञान की श्रेष्ठता को प्रतिपादित किया है। इसमें पाँच संवाद है जो देव, शास्त्र और गुरु की वास्तविकता पर प्रकाश डालते हैं। अनुयोग[5] में प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के ग्रंथों का मूल रूप समझाया गया है। लोक में जम्बूद्वीप का चित्र महत्त्वपूर्ण है।[6] इसी में

1. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 17 से 19
2. वही, पृष्ठ 20 से 22
3. वही, पृष्ठ 25
4. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–2, पृष्ठ 11
5. वही, पृष्ठ 19 से 21
6. वही, पृष्ठ 25

लोक वर्णन है जम्बूद्वीप तीन लोक के स्वरूप का भी संवाद रूप में प्रतिपादन किया गया है।

अष्टान्हिका महापर्व में दिनेश और जिनेश के आपसी संवाद हैं जिसमें जिनेश–दिनेश की जिज्ञासाओं का समाधान करता है। अष्टाह्निका पर्व में देव कहाँ जाते हैं। इस प्रश्न पर जिनेश उत्तर देता है कि जो आत्मसाधना करते हैं वे आत्महित में प्रवृत्त होते हैं।[1] भगवान पार्श्वनाथ में अध्यापक और रमेश दो पात्र हैं जो पार्श्वनाथ तीर्थक्षेत्र और उनकी कुमार अवस्था का विवेचन करते हैं। इसमें डॉ. भारिल्ल ने आत्मसाधना पर विशेष बल दिया और यह समझाया कि केवलज्ञानी किसी के द्वारा रक्षित नहीं होते।[2]

इस तरह डॉ. भारिल्ल की संवादयुक्त नाटिकाएँ संस्कारों को जन्म देने वाली हैं।

वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–3 में डॉ. भारिल्ल ने सिद्ध पूजन को, पूजा के फल को, जीव के उपयोग, अगृहीत और गृहीत मिथ्यात्व, मैं कौन हूँ? ज्ञानी श्रावक के बारह व्रत, मुक्ति का मार्ग, निश्चय और व्यवहार, दशलक्षण महापर्व, बलभद्र राम, समयसार स्तुति आदि का वर्णन किया है। पूजा विधि और फल इसमें राजू और सुबोधचन्द्र दो पात्र हैं। राजू अपने पिता सुबोधचन्द्र से पूजा के बारे में जानने की अपनी जिज्ञासा प्रकट करता है। पूजा किसे कहते हैं? इसका क्या फल होता है? आदि का उत्तर सुबोधचन्द्र देते हैं। इष्टदेव शास्त्र–गुरु स्तवन ही पूजा है।[3]

उपयोग में दर्शनलाल और ज्ञानचन्द दो पात्र हैं। दोनों ही अपने–अपने नाम की सार्थकता चाहते हैं। ज्ञानचन्द कहता है कि 'उपयोगो लक्षणम्' जीव का लक्षण उपयोग है। ज्ञान और दर्शन के कार्य को उपयोग कहते हैं। उपयोग के दो भेद हैं– दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग तथा दर्शनोपयोग के चार व ज्ञानोपयोग के आठ भेद बताए गए हैं।[4]

1. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–2, पृष्ठ 39
2. वही, पृष्ठ 45
3. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–3, पृष्ठ 6
4. वही, पृष्ठ 9 से 11

अगृहीत और गृहीत मिथ्यात्व में छात्र और अध्यापक का संवाद है। इसमें छात्र मिथ्यात्व तथा अगृहीत और गृहीत के विषय में प्रश्न करता है? तब जीवादि सात तत्त्वों की विपरीत श्रद्धा को ही मिथ्यात्व कहते हैं। जो अनादि से ही शरीर, रागादि पर पदार्थों में अहंबुद्धि करता है, वह अगृहीत मिथ्यात्व है और जो कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्र आदि उपदेश से उल्टी मान्यता की पुष्टि होती है वह गृहीत मिथ्यात्व है।[1] ऐसा अध्यापक समझाते हैं।

मुक्ति का मार्ग में प्रवचनकार व मुमुक्षु के साथ–साथ जिज्ञासु, शंकाकार आदि के माध्यम से मोक्षमार्ग को प्रतिपादित किया गया है। सच्ची श्रद्धा, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र की एकता मोक्षमार्ग है।[2] इन तीनों का यथार्थ चित्रण इसकी प्रमुखता है। इसे रत्नत्रय भी कहा गया।[3] रत्नत्रय बंध का कारण नहीं है क्योंकि इसकी प्राप्ति होने पर शुभ और अशुभ बंध नहीं होते।

निश्चय और व्यवहार में गुमानीराम और पण्डित टोडरमलजी दो पात्र हैं। दोनों के संवाद के माध्यम से डॉ. भारिल्ल ने मोक्षमार्ग का स्वरूप व उसके भेदों का वर्णन किया है। पण्डित टोडरमल जी अपने बेटे गुमानीराम को समझाते हुए कहते हैं कि मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार से है – (1) निश्चय मोक्षमार्ग और (2) व्यवहार मोक्षमार्ग।

"सच्चे निरूपण को निश्चय कहते हैं और उपचरित निरूपण को व्यवहार कहते हैं।[4] व्यवहार असत्यार्थ है और निश्चय सत्यार्थ है।

दशलक्षण महापर्व में जिनेश और विनोद दोनों मित्र हैं। इस संवाद में दश धर्म उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य ये धर्म के दस प्रकार हैं।[5] तत्त्वार्थ सूत्र में इन्हीं को महत्त्व दिया गया है।[6]

1. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–3, पृष्ठ 13 से 14
2. तत्वार्थ सूत्र 1/1
3. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–3, पृ. 28–29
4. वही, पृ. 32
5. वही, पृ. 37
6. तत्वार्थ सूत्र 1/2

बलभद्र राम में छात्र और अध्यापक दो पात्र हैं। इसमें राम का चौदह वर्ष का वनवास और सीता का रावण द्वारा हरण करने की पौराणिक कथा का वर्णन है।[1]

इसप्रकार डॉ. भारिल्ल ने छोटे–छोटे संवादों द्वारा अपने विचारों को श्रावकों के मध्य रखकर अनेक शिक्षाप्रद कारकों को स्पष्ट किया।

डॉ. भारिल्ल के तत्त्वज्ञान पाठमाला में लक्षण, भेद एवं तथ्य के प्रयोगों में संस्कृतनिष्ठ शब्द हैं। लक्षण और लक्षणाभास में प्रवचनकार और जिज्ञासु हैं। जिज्ञासु के प्रश्न का समाधान किया जाता है कि अनेक मिली हुई वस्तुओं में से किसी एक वस्तु को पृथक् करने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं। लक्षण दो प्रकार का होता है–

आत्मभूत लक्षण और अनात्मभूत लक्षण। जो लक्षण वस्तु के स्वरूप में मिला हो उसे आत्मभूत लक्षण कहते हैं और जो लक्षण वस्तु के स्वरूप से पृथक् हो उसे अनात्मभूत लक्षण कहते हैं।[2]

इस संवाद में शंकाकार, श्रोता व दो अन्य पात्र और हैं जो अपनी शंका का समाधान प्रवचनकार से करते हैं। इसमें लक्षण के दोषों का भी वर्णन किया गया है।

पंचभाव के अन्तर्गत प्रवचनकार और जिज्ञासु द्वारा पांच भावों का वर्णन किया गया है।

जीव के असाधारण भाव पाँच प्रकार के हैं– औपशमिक, क्षायिक, मिश्र (क्षायोपशमिक), औदयिक और पारिणामिक।

कर्मों का फलदान सामर्थ्यरूप से उद्भव सो 'उदय' है, अनुद्भव सो 'उपशम' है, उद्भव तथा अनुद्भव सो क्षयोपशम है, अत्यन्त विश्लेष (वियोग) सो 'क्षय' है। द्रव्य का आत्मलाभ (अस्तित्व) जिसका हेतु है वह 'परिणाम' है। इसप्रकार जीव के असाधारण पाँच भाव होते हैं।[3]

चार अभाव में आचार्य समन्तभद्र और जिज्ञासु दो पात्र हैं।

1. तत्वार्थसूत्र, पृ. 41
2. तत्वज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 24 से 25, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर
3. वही, पृष्ठ 37

जिज्ञासु के प्रश्न का समाधान करते हुए आचार्य समन्तभद्र ने कहा कि एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में अस्तित्व न होने को अभाव कहते हैं।[1] अभाव चार प्रकार के होते हैं– प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव।

चारों अभावों को संक्षेप में कहेंगे कि जिसका अभाव होने पर नियम से कार्य की उत्पत्ति होती है, उसे प्रागभाव कहते हैं, जिससे सद्भाव होने पर नियम से विवक्षित कार्य का अभाव होता है, उसे प्रध्वंसाभाव कहते हैं। अन्य (पुद्गल) के स्वभाव (वर्तमान पर्याय) में स्व (अन्य पुद्गल) स्वभाव की व्यावृत्ति अन्योन्याभाव है। तथा कालत्रय की अपेक्षा जो अभाव हो, वह अत्यन्ताभाव है।[2]

पाँच पाण्डव में सुरेश, रमेश तथा अध्यापक तीन पात्र हैं। इसमें अध्यापक अपने छात्र सुरेश व रमेश को पांच पाण्डवों की कहानी सुनाते हैं। इस कहानी के माध्यम से यह शिक्षा दी गई कि जुआ के व्यसन में पड़कर महापराक्रमी पाण्डवों को भी अनेक विपत्तियों में रहना पड़ा। अतः हमें कोई भी काम शर्त लगाकर नहीं करना चाहिए।[3]

इसप्रकार तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–1 के माध्यम से डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने अपने छोटे–छोटे संवादों के माध्यम से अपनी बात श्रोता तक पहुँचाई है।

तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–2 में डॉ. भारिल्ल ने अपने नाटक शास्त्रों का अर्थ समझने की पद्धति, पुण्य और पाप, उपादान–निमित्त, षट् कारक आदि लघु संवाद हैं। शास्त्रों के अर्थ समझने की पद्धति के अंतर्गत पण्डित टोडरमल तथा दीवान रतनचंद दो पात्र हैं।

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने अपनी इस नाटिका में पण्डित टोडरमल के द्वारा शास्त्रों के अर्थ समझने की पद्धति का वर्णन किया है। उन्होंने कहा कि प्रत्येक काम करने और प्रत्येक बात समझने का अपना एक तरीका होता है। जब तक हम सही तरीके को न समझ लें तब तक कोई भी काम अच्छा नहीं होता। चारों अनुयोगों के कथन

1. तत्वज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 46
2. वही, पृष्ठ 47
3. वही, पृष्ठ 58–59

को ठीक प्रकार से समझने पर ही वस्तु के सत्य स्वरूप को समझा जा सकता है।[1]

उपादान–निमित्त में प्रवचनकार व जिज्ञासु दो पात्र हैं। उसमें कार्य की उत्पादक सामग्री को ही कारण कहते हैं। कारण दो प्रकार का होता है– उपादानकारण व निमित्तकारण।

उपादानकारण – जो स्वयं कार्य रूप परिणमित हो, उसे उपादानकारण कहते हैं।

निमित्तकारण – कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप जिस पर आ सके, उसे निमित्तकारण कहते हैं। उपादान कारण दो प्रकार से होता है। त्रैकालिक उपादान कारण व क्षणिक उपादान कारण। उसीप्रकार निमित्त कारण भी दो प्रकार से होता है। उदासीन और प्रेरक। इसमें इसके समझने से लाभ का भी वर्णन किया गया है।[2]

षट्कारक में प्रवचनकार व जिज्ञासु दो पात्र हैं, जो क्रिया का जनक हो, क्रियानिष्पत्ति में प्रयोजक हो, उसको कारक कहले हैं। कारक छह होते हैं– (1) कर्त्ता (2) कर्म (3) करण (4) सम्प्रदान (5) अपादान (6) अधिकरण। कर्त्ता जो स्वतंत्रया करता है वह कर्त्ता है, कर्त्ता जिसे प्राप्त करता है, वह कर्म है, साधकतम अर्थात् उत्कृष्ट साधन को करण कहते हैं, कर्म जिसे दिया जाता है अथवा जिसके लिए किया जाता है वह सम्प्रदान है, जिसमें से कर्म किया जाता है वह अधिकरण है।

ये छह कारक व्यवहार और निश्चय के भेद से दो प्रकार के हैं। पर निमित्त से कार्य की सिद्धि होना व्यवहारकारक होता है और अपने ही उपादानकरण से कार्य की सिद्धि होती है वह निश्चय कारक होता है।

तत्त्वज्ञान पाठमाला में जीवन के यथार्थ का चित्रण है। संतों, ज्ञानियों एवं प्रबुद्ध विचारकों ने जो चिन्तन किया; उस दृष्टि को लेकर डॉ. भारिल्ल ने संवाद के रूप में रोचक तथ्यों से उस विषय को स्पष्ट किया है।

1. तत्वज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 9
2. वही, पृष्ठ 23 से 25

5. पद्य साहित्य का विकास

हिन्दी साहित्य परम्परा में प्राकृत एवं अपभ्रंश का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। अपभ्रंश के कवियों ने काव्य को विशेष महत्त्व दिया और उसी के आधार पर काव्य की रचना प्रक्रिया को आगे बढ़ाया। अपभ्रंश का काल प्राकृत के साथ ही शुरू हो गया था। परन्तु पांचवी शताब्दी के पश्चात् अपभ्रंश के कवियों ने अनेक प्रकार की रचनाएँ लिखीं। वे रचनाएँ बोलचाल की भाषा से युक्त थीं। उन्हीं के अनुसार हिन्दी के काव्यकारों ने अनेक प्रकार के काव्यों का सृजन किया।

काव्य के विकास में अपभ्रंश के पश्चात् अनेक प्रकार की बोलियों का विकास हुआ और उसमें दक्खिनी हिन्दी जिसे खड़ी बोली भी कहते हैं इसमें अनेक रचनाकारों ने हिन्दी में काव्य सृजन किया। राजदरबारी कवियों, नवाबों के दरबारों में उर्दू मिश्रित काव्य लिखे गए। तेरहवीं शताब्दी से पद्य साहित्य का विकास हुआ। जैसा कि हिन्दी भाषा के विकास में लिखा है। पद्यमय प्रारम्भिक रचनाएँ सूफी फकीरों ने लिखी हैं इसके अनन्तर विद्यापति का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि ने हिन्दी काव्य को नया रूप दिया है।

भक्तिकाल में संत कवियों ने सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने चौदहवीं शताब्दी में अपने–अपने उपासकों की उपासना में अनेक प्रकार के काव्यों का निरूपण किया। किसी ने प्रेम को आधार बनाया, किसी ने आत्मा को और किसी ने भारतीय सांस्कृतिक नवचेतना को महत्त्व दिया। सूफी सन्तों ने प्रेम भावना को व्यक्त किया। हठी योगियों ने ब्रह्म प्राप्ति के विचारों को काव्य का आधार बनाया। कबीर ने सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर व्यक्ति विशेष से पृथक् काव्य का सृजन किया।

भक्ति के विकास में पद्य साहित्य का योगदान

बौद्ध, जैन, सूफी, वैष्णव आदि के भक्तों ने धार्मिक संकीर्णताओं से हटकर काव्यों का सृजन किया। उन काव्यों में मानव कल्याण की भावना विशेष रूप से थी। कबीर को उस समय का युगदृष्टा कहा

गया, तुलसी को लोकनायक और सूर को कृष्ण उपासक की संज्ञा दी गई।

रीतिकाल का पद्य साहित्य

1700–1900 तक का समय रीतिकाल का समय है। यह काल पूर्ण प्रौढ़ता का काल माना गया। इसमें अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि के आधार पर काव्य को महत्त्व दिया गया। रीतिकाल में श्रृंगार की प्रधानता युक्त काव्यों का विशेष रूप से सृजन हुआ। इस काल के आलम्बन में नारी सर्वोपरि रही।

भक्तिकाल, रीतिकाल के अतिरिक्त आधुनिक काल में अनेक प्रकार के काव्य लिखे गए। मैथिलीशरण गुप्त इस युग के सर्वोत्तम साहित्य प्रतिनिधि थे। उन्होंने महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि की रचना की जिसमें माधुर्य, प्रौढ़ता, कलात्मकता, कल्पना, अनुभूति, गति, प्रवाह, परिमार्जन एवं संस्कृतनिष्ठ, तत्सम शब्दों की बहुलता है। भारत–भारती, साकेत, यशोधरा के पश्चात् द्विवेदी युग में श्रीधर पाठक, हरिऔद्य, सियाराम शरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, देवीप्रसाद, गोपालशरण, सत्यनारायण, माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियों की काव्यकला ने हिन्दी पद्य रचना को अत्यधिक प्रभावी बनाया।

पद्य साहित्य के विभिन्न सोपान

1. भारतेन्दु युग, 2. द्विवेदी युग, 3. छायावाद, 4. प्रगतिवाद, 5. प्रयोगवाद, 6. नयी कविता, 7. नयी कविता से समकालीन कविता तक।[1]

1. भारतेन्दु युग – भारतेन्दु युग के प्रमुख कवियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, ठाकुर जगमोहन सिंह, श्रीधर पाठक, बालमुकुन्द गुप्त, जगन्नाथदास 'रत्नाकर', महावीर प्रसाद द्विवेदी, ईसुरी, महाकवि सूर्यमल्ल चारण, कवि केसरीसिंह जी आदि हैं।[2]

1. हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास, पृष्ठ 212
2. वही, पृष्ठ 212 से 215

(2) द्विवेदी युग – इस युग के प्रमुख कवियों में ब्रज वललभ देवजी वल्लभसरण, मिश्रबंधु, वियोगी हरि, रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', लोचन प्रसाद पांडेय, रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, सियाराम शरण गुप्त आदि हैं।[1]

(3) छायावाद – इस युग के प्रमुख कवियों में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा हैं।[2]

(4) प्रगतिवाद – सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', नागार्जुन, नरेश शर्मा, वीरेन्द्र मिश्र प्रमुख कवि हैं।[3]

(5) प्रयोगवाद – तार सप्तक के कवियों में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', गजानन माधव 'मुक्तिबोध', नेमिचंद, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा, गिरिजा कुमार माथुर के नाम हैं।[4]

डॉ. भारिल्ल द्वारा रचित पूजन साहित्य और उनका मूल्यांकन

वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–3 में सिद्ध पूजन, तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–1 में सीमन्धर पूजन तथा जिनेन्द्र अर्चना में महावीर पूजन और देव–शास्त्र गुरु पूजन का विवेचन है।

सिद्ध का स्वरूप और विश्लेषण –

आगम एवं सिद्धान्त ग्रंथों में आठ कर्मों से रहित आठ महागुणों से सहित परम लोकाग्र में स्थित एवं नित्य सिद्ध होते हैं।[5] अर्थात् जो आठ प्रकार के कर्मों से रहित, अत्यन्त शान्ति–स्वरूप को प्राप्त निरंजन, नित्य गुणों से युक्त कृतकृत्य एवं लोक के अग्रभाग में निवास करने वाले सिद्ध कहलाते हैं। जिनमें जन्म, जरा, मरण, भय, संयोग, वियोग, दुःख,संज्ञा एवं रोगादि नहीं होते हैं; वे सिद्ध कहलाते हैं।[6]

1. हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास, पृष्ठ 217 से 226
2. वही, पृष्ठ 232 से 236
3. हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास, पृष्ठ 238
4. वही, पृष्ठ 243
5. नियमसार गाथा–72
6. धवला पुस्तक – 1/1/1/24

डॉ. भारिल्ल ने पंच–परमेष्ठियों के गुणों की अभिव्यक्ति में सिद्ध का स्वरूप लिखते हुए कहा है कि सिद्ध मुक्त होते हैं।[1] बालबोध पाठमाला भाग–3 में निम्न स्वरूप दिया है–

जो गृहस्थ अवस्था का त्यागकर, मुनिधर्म साधन द्वारा चार घाति कर्मों का नाश होने पर अनंत चतुष्टय प्रकट करके कुछ समय बाद अघाति कर्मों के नाश होने पर समस्त अन्य द्रव्यों का संबंध छूट जाने पर पूर्ण मुक्त हो गये हैं, लोक के अग्रभाग में किंचित् न्यून पुरुषाकार विराजमान हो गये हैं, जिनके द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का अभाव होने से समस्त आत्मिक गुण प्रकट हो गये हैं, वे सिद्ध हैं। उनके आठ गुण कहे गये हैं–

समकित दर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहना।
सूक्ष्म वीरजवान, निराबाध गुण सिद्ध के।।

1. क्षायिक सम्यक्त्व
2. अवगाहनत्व
3. अनंत दर्शन
4. सूक्ष्मत्व
5. अनंत ज्ञान
6. अनंतवीर्य
7. अगुरुलघुत्व
8. अव्याबाधत्व।[2]

देव–शास्त्र–गुरु के गुणों का स्तवन पूजन या पूजा कही जाती है। पूजा में भावों की प्रधानता होती है जिससे अशुभ भाव की समाप्ति होती है। अनंत चतुष्टय के धनी अहरंत और सिद्ध भगवान को डॉ. भारिल्ल ने इष्ट देव कहा है। वे परम पूज्य होते हैं उनकी अष्ट द्रव्य से पूजा की जाती है।[3] सिद्ध पूजन में सिद्ध के गुणों का स्मरण किया जाता है। डॉ. भारिल्ल ने अष्ट द्रव्य से पूर्व स्थापना में उनका स्वरूप इसप्रकार किया है –

"चिदानन्द स्वातमरसी, सत् शिव सुन्दर जान।
ज्ञाता–दृष्टा लोक के, परम सिद्ध भगवान।।"[4]

सिद्ध पूजन में जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और

1. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल – णमोकार महामंत्र, पृष्ठ 13
2. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल – बालबोध पाठमाला भाग–3, पृष्ठ 112
3. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–3 पृष्ठ 7–8
4. वही, पृष्ठ 1

फल इन पदों में अलग–अलग दृष्टि से सिद्ध के स्वरूप को अभिव्यक्त किया है उन्हें अखण्ड चिद्पिण्ड भी कहा है।[1]

अर्घ्य के पद में उनके स्वभाव के विवेचन के पश्चात् जयमाला में सम्पूर्ण सिद्ध के गुणों का निरूपण किया है। इसमें तीन प्रकार के छन्द हैं। दोहा छन्द में उन्हें परमात्मप्रकाश कहा तथा पद्धरि छन्द में ज्ञान स्वरूप, सत्यार्थभान, शिव–पद दाता भी कहा है।[2]

पूजन में छन्द, अलंकार और रस

दोहा छन्द – इसमें 48 मात्रायें होती हैं। इसके प्रथम एवं तृतीय चरण में तेरह–तेरह और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में ग्यारह–ग्यारह मात्राएं होती हैं।

"पर का कुछ नहीं चाहता, चाहूँ अपना भाव।
निज स्वभाव में थिर रहूँ, मेटो सकलविभाव।"[3]

वीर छन्द – इस छन्द के प्रत्येक चरण में 16,15 की यति से 31 मात्राएँ होती हैं।

"ज्यों–ज्यों प्रभुवर जल पान किया, त्यों–त्यों तृष्णा की आग जली।
थी आश कि प्यास बुझेगी अब, पर यह सब मृगतृष्णा निकली।।
आशा–तृष्णा से जला हृदय, जल लेकर चरणों में आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।"[4]

पद्धरि छन्द – इसके प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ और अन्त में गुरु, लघु होता है।

जय ज्ञानमात्र, ज्ञायक–स्वरूप, तुम हो अनन्त चैतन्य रूप।
तुम हो अखण्ड आनन्द पिण्ड, मोहारि दलन को तुम प्रचण्ड।।[5]

सिद्ध पूजन में अलंकार

जिसके द्वारा अलंकृत या सुशोभित किया जाता है वह अलंकार है। शोभा को बढ़ाने वाले धर्म को अलंकार कहा गया है।[6] डॉ.

1. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–3, पृष्ठ 1–3
2. वही, पृष्ठ 4
3. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–3 पृष्ठ 5
4. वही, पृष्ठ 1
5. वही, पृष्ठ 4
6. काव्यदर्शन 2/1

भारिल्ल की सिद्ध पूजन में अनुप्रास, उपमा, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है कहीं–कहीं दृष्टान्त अलंकार भी दिए गए हैं।

अनुप्रास – जहाँ वर्णों की आवृत्ति हो उसे अनुप्रास कहते हैं।[1]

"मल–मल कर खूब नहा कर के, तन के मल का विच्छेद किया।"

उपमा – जहाँ समानता दिखाई जाती है वहाँ उपमा अलंकार होता है इसकी पहचान 'इव', 'तुल्ल', 'सम' आदि हैं।[2]

"तुमको चन्दनसम है पाया।"

रूपक – जहाँ उपमेय पर उपमान का आरोप किया जाता है वहाँ रूपक अलंकार होता है।[3]

सचमुच तुम अक्षत हो प्रभुवर, तुम ही अखण्ड अविनाशी हो।

दृष्टान्त – प्रस्तुत और अप्रस्तुत क्रिया, गुण, चेष्टा आदि का यथार्थ चित्रण करना दृष्टान्त अलंकार है।

ज्यों–ज्यों प्रभुवर जलपान किया, त्यों–त्यों तृष्णा की आग जली।[4]

थी आस कि प्यास बुझेगी अब, पर यह सब मृगतृष्णा निकली।[5]

इसी तरह काव्य के गुणों को ध्यान में रखकर इनकी काव्य कला पर विस्तार से विचार किया जाए तो अनेक प्रकार के अलंकारों का ज्ञान हो सकता है, जिसे पृथक् रूप से प्रबंधन रूप दिया जा सकता है।

भारिल्ल की सिद्ध पूजन में रस

मूलतः काव्य के गुणों में रस का भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। जिससे आस्वादन किया जाता है उसे रस कहते हैं। रस आनन्द और हित से युक्त होता है।[6] डॉ. भारिल्ल की सिद्ध पूजन में आनन्द की अनुभूति और आत्मकल्याण की भावना निहित है इसके प्रत्येक चरण में शान्तरस की अभिव्यक्ति है, जो पाठक के लिए शान्ति प्रदान करती है।

1. वाग्भटाड.कार 4/17
2. वीतराग विज्ञान पाठमाला–1, पृष्ठ 121
3. काव्य प्रकाशक 10/83
4. वीतराग विज्ञान पाठमाला–3 पृष्ठ 4
5. वाग्भट् 4/81
6. वीतराग विज्ञान पाठमाला–3, पृष्ठ 1

'मेरा स्वभाव है ज्ञानमयी, यह भेदज्ञान पा हरषाया।
होकर निराश सब जग भर से अब सिद्ध शरण में मैं आया।।'[1]

यह पूजन अनेक भावों से परिपूर्ण है। इसमें कविहृदय डॉ. भारिल्ल ने श्री सीमन्धर भगवान को अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान और अनंत सुख और अनंत बल से युक्त माना है। इसकी स्थापना के छन्द में उनका स्वरूप इसप्रकार प्रतिपादित किया है –

"भवसमुद्र सीमित कियो, सीमन्धर भगवान।
कर सीमित निजज्ञान को, प्रगट्यो पूरण ज्ञान।।
प्रगट्यो पूरण ज्ञान वीर्य दर्शन सुखधारी।
समयसार अविकार विमल चैतन्य विहारी।।"[2]

जिसके प्रत्येक पद में छः पंक्तियां हैं, वे वीर छन्द हैं। इसकी जयमाला में दोहा छन्द दिया गया, जिसमें उन्हें पूर्व विदेह का भगवान माना गया है।

"वैदही हो देह में, अतः विदेही नाथ।
सीमन्धर निज सीम में शाश्वत करो निवास।।
श्री जिन पूर्व विदेह में, विद्यमान अरहन्त।
वीतराग सर्वज्ञ श्री, सीमन्धर भगवन्त।।"[3]

जयमाला में दोहा के पश्चात् पद्धरि छन्द के माध्यम से उन्हें ज्ञान स्वभावी कहा गया है।

"हे ज्ञानस्वभावी सीमन्धर! तुम हो असीम आनन्दरूप।
अपनी सीमा में सीमित हो, फिर भी हो तुम त्रैलोक्य भूप।।"[4]

छन्द – कुण्डलिया, दोहा, पद्धरि और सोरठा ये चार ही छन्द प्रयुक्त हैं। कुण्डलिया के उदाहरण –

---

1. वीतराग विज्ञान पाठमाला–3, पृष्ठ 2
2. रस मीमांसा, पृ. 396
3. वीतराग–विज्ञान पाठमाला–3, पृष्ठ 2
4. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 3

भव–समुद्र सीमित कियो, सीमन्धर भगवान।
कर सीमित निजज्ञान को, प्रगट्यो पूरण ज्ञान।।
प्रगट्यो पूरण ज्ञान वीर्य दर्शन सुखधारी।
समयसार अविकार विमल चैतन्य–विहारी।।
अंतर्बल से किया प्रबल रिपु–मोह पराभव।
अरे भवान्तक! करो अभय हर लो मेरा भव।।[1]

सोरठा

समयसार है सार, और सार कुछ है नहीं।
महिमा अपरम्पार, समयसारमय आपकी।।[2]

अलंकार –

कवि ने प्रत्येक पद को अलंकृत शैली में लिखा है जिसमें अनुप्रास की बहुलता है। इसके अतिरिक्त श्लेष और यमक अलंकार भी है।[3]

श्लेष अलंकार

एक ही शब्द में दो या दो से अधिक अर्थ का समावेश होता है श्लेष अलंकार होता है।[4]

"समयसार है सार, और सार कुछ है नहीं।
महिमा अपरम्पार, समयसारमय आपकी।।"[5]

समयसार का अर्थ सिद्धान्त रहस्य या विशुद्ध आत्म–स्वरूप का स्वाभाविक ज्ञान यथार्थ में विशुद्ध आत्मा का सार है। समयसार आचार्य की कुन्दकुन्द की रचना का नाम भी है।

इस तरह सीमन्धर पूजन में छन्द, अलंकार के अतिरिक्त एकमात्र शान्त रस की बहुलता है। कवि के काव्य में समय / मूल्य / काल / सीमा / मर्यादा आदि अर्थ व्यक्त होते हैं। कहीं पर दिव्यज्ञान, कहीं पर आनन्द, कहीं भगवन्त और किसी जगह आत्मानुभूति के अर्थ में देखा जा सकता है।

1. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 4
2. वही, पृष्ठ 6
3. वाग्भट्लंकार 1 / 4 / 127
4. वही 4 / 127
5. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 3

महावीर पूजन –

इसमें अंतिम तीर्थंकर महावीर के पावन गुणों का स्मरण किया गया है। अष्टद्रव्य के पश्चात् पंचकल्याणक के पाँच अर्घ से उनके गर्भ जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष तक की यात्रा का ज्योतिषीय प्रमाण देकर सोरठा छन्द में वर्णन किया है। दोहा एवं पद्धरि छन्द के माध्यम से उनके प्रत्येक नाम पर भी प्रकाश डाला गया है और उन्हें स्मरण करते हुए परमात्म स्वरूप को स्थापित किया है।

तुम समयसार हम समयसार, सम्पूर्ण आत्मा समयसार।
जो पहिचानें अपना स्वरूप वे हो जावें परमात्मरूप।।

इसमें शान्त रस का प्रयोग है। यह रचना भी अलंकृत शैली में है। इसमें लय की विशेषता है।

देव–शास्त्र–गुरु पूजन –

इसमें सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु के स्वरूप को ध्यान में रखकर कविहृदय डॉ. भारिल्ल ने अनेक प्रकार के गुणों को आधार बनाकर जो रचना की है, वह वीतरागता के सार को दर्शाने वाली है। इसमें उन्होंने वीतराग सर्वज्ञ प्रभु को देव माना। शास्त्र में भी वीतराग वाणी से निकले हुए तत्त्वज्ञान को दर्शाने वाले शास्त्र को महत्त्व दिया और कहा कि वे दिव्यवाणी युक्त हैं, भव्य हैं महामोह को नाश करने वाले हैं वे द्वादशांग रूप हैं।

इस पूजन में दोहा के रूप में स्थापना की गई। ज्ञानोदय छन्द में अष्टद्रव्य में विवेचन है। जयमाला में दोहा और वीरछन्द का प्रयोग भी है। अर्थात् वीर छन्द में 22 अक्षर हैं इसलिए यह 22 अक्षरों वाला छन्द है।

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुमको ना अब तक पहिचाना।
अतएव पड़ रहे हैं प्रभुवर, चौरासी के चक्कर खाना।।
करुणानिधि तुमको समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा।।

इस प्रकार डॉ. भारिल्ल के पूजन साहित्य के अतिरिक्त अन्य

काव्य साहित्य भी नीति, अध्यात्म और संस्कार के कारणों को भी दर्शाने वाले हैं।

भारिल्ल द्वारा रचित अन्य काव्य शास्त्र में शुद्धात्म–शतक, कुन्दकुन्द शतक, अर्चना, प्रवचनसार : पद्यानुवाद, अष्टपाहुड़ : पद्यानुवाद, द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद, जिनेन्द्र वन्दना एवं बारह भावना, योगसार : पद्यानुवाद, समयसार कलश : पद्यानुवाद और समयसार : पद्यानुवाद है।

शुद्धात्म शतक नामक पद्यानुवाद में शुद्ध दृष्टि का विवेचन है।[1]

निज आत्मा को शुद्ध अर पररूप परको जानता।
है कौन बुध जो जगत में परद्रव्य को अपना कहे।[2]
यह समयसार ग्रंथ की गाथा 300 से ली गई है।
चतुर्गति से मुक्त हो यदि चाहते हो सुख सदा।
तो करो निर्मल भाव से निज आतमा की भावना।[3]

यह अष्टपाहुडः भावपाहुड़ गाथा 60 से लिया गया है।

कुन्दकुन्द शतक

डॉ. भारिल्ल ने आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य में से प्रमुख 101 गाथाओं का पद्यानुवाद हिन्दी में किया।[4]

'जो भव्यजन संसार–सागर पार होना चाहते।
वे कर्म ईंधन दहन निज शुद्धातमा को ध्यावते।

समयसार : पद्यानुवाद –

इसके पद्यानुवाद में अत्यन्त सरल व सहज भाषा है जो रंगभूमि एवं जीव–अजीव अधिकार, कर्ताकर्म अधिकार, पुण्य–पाप अधिकार, आस्त्रव अधिकार, संवर अधिकार, निर्जरा अधिकार, बंध अधिकार, मोक्ष अधिकार, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार के रूप में विभिन्न हिन्दी पद्यानुवाद है।

---

1. जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ 175, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर
2. वही, पृष्ठ 94
3. वही, पृष्ठ 198
4. वही, पृष्ठ 94

समयसार कलश : पद्यानुवाद –

विविध छन्दों में रचित कलश के पद्यानुवाद में हिन्दी भाषा के विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है जैसे दोहा, सोरठा, हरिगीत, रोला, सवैया इकतीसा, कुण्डलिया, अडिल्ल, वसंततिलका इत्यादि छन्द हैं।

योगसार का हिन्दी पद्यानुवाद

स्व और पर के भेद विज्ञान को प्रस्तुत करने वाला है। इसके सम्पूर्ण आशय को निम्न पंक्ति में देखा जा सकता है–

जोइन्दु मुनिवरदेवने दोहे रचे अपभ्रंश में।
लेकर उन्हीं का भाव मैंने रख दिया हरिगीत में।।[1]

द्रव्य संग्रह : पद्यानुवाद –

इसके मूल रचनाकार नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती हैं। उनके रचित 58 गाथाओं को हिन्दी पद्यानुवाद के रूप में ईसवी सन् दो हजार दो को प्रस्तुत किया गया–

ईसवी सन् दो सहस दो अर चतुर्दश दिसम्बर।
को द्रव्यसंग्रह शास्त्र का पूरण हुआ अनुवाद यह।।[2]

अष्टपाहुड़ : पद्यानुवाद –

दर्शन, सूत्र, चारित्र, बोध, भाव, मोक्ष, लिंग और शील पाहुड़ ये आठ पाहुड़ आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा प्राकृत में लिखे गए। उनका हिन्दी पद्यानुवाद अत्यन्त ही सार्थक है। इसकी रचना के विषय में कवि ने स्वयं लिखा है–

पूरण हुआ आनन्द से श्रावण सुदी एकादशी।
को पद्यमय यह सन् दो सहस दो ईसवी।।[3]

प्रवचनसार : पद्यानुवाद

यह ज्ञान, ज्ञेय और चारित्र इन तीन अधिकारों में विभक्त दार्शनिक

---

1. योगसार पद्यानुवाद पृष्ठ अंतिम पेज, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर
2. द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद, पृष्ठ अन्तिम, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर
3. अष्टपाहुड़ अंतिम पृष्ठ, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

ग्रंथ है जिसमें शुभोपयोग, अशुभोपयोग और शुद्धोपयोग के कथन को दार्शनिक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया। डॉ. भारिल्ल के द्वारा प्रवचनसार पद्यानुवाद को जैसे ही प्रस्तुत किया गया वैसे ही इसका सर्वत्र स्वागत हुआ। इसके लेखन का समय निम्न दिया गया –

क्रिसमस के दिन चतुर्दशी अगहन् सुद शनिवार।
पूर्ण हुआ यह विक्रमी इकसठ दोय हजार।।[1]

जिनेन्द्र वंदना एवं बारह भावना

यह डॉ. भारिल्ल की स्वतंत्र रचना है जिसे हिन्दी में प्रस्तुत किया गया है। इसके प्रारम्भिक व अन्तिम दोहा छन्द तथा शेष हरिगीतिका छन्द में 24 तीर्थंकरों को स्मरण किया गया। उसमें भी अनुप्रास, श्लेष और यमक अलंकार है।

चौबीसों परिग्रह रहित, चौबीसों जिनराज।
वीतराग सर्वज्ञ जिन हितकर सर्व समाज।।[2]

24 तीर्थंकर के प्रत्येक पद में उनके स्वरूप का कथन किया गया। उसमें भी प्रायः विभावना, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग है। सम्पूर्ण पद्यांश में अनुप्रास एवं रूपक अलंकार का प्रयोग भी है। रस में शांत रस सर्वत्र विद्यमान है।

बारह भावना में अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिर्दुलभ और धर्म भावना इन बारह भावनाओं में दो प्रकार की दृष्टियाँ हैं, जिसे स्व दृष्टि और पर दृष्टि कह सकते हैं। उसमें भी अध्यात्म की प्रधानता है। अलंकृत शैली, दृष्टान्तों की बहुलता, भेद–विज्ञान दृष्टि, शुद्धात्म तत्त्व, ज्ञायक भाव, ज्ञान आराधना आदि अनेक विचार नये मूल्यों को लेकर उपस्थित हुए हैं। अन्तिम धर्म भावना में अनेक प्रकार की दृष्टियाँ देखी जा सकती हैं–

1. प्रवचनसार पद्यानुवाद, अन्तिम पृष्ठ
2. जिनेन्द्र वन्दना एवं बारह भावना, पृष्ठ 1

कामधेनु कल्पतरू संकटहरण बस नाम के।
रतन चिन्तामणी भी है चाह बिन किस काम के।।
भोगसामग्री मिले अनिवार्य है पर याचना।
है व्यर्थ ही इन कल्पतरू चिन्तामणी की चाहना।।[1]

अर्चना – इस संकलन में देव–शास्त्र–गुरु, सिद्ध, सीमन्धर एवं महावीर पूजन है, जो डॉ. भारिल्ल द्वारा रचित है।

इस प्रकार डॉ. भारिल्ल के स्वतंत्र काव्य एवं अध्यात्म ग्रंथों के पद्यानुवाद आत्मानुभूति को प्रकट करने वाले हैं। इनके हिन्दी के प्रयोगों में संस्कृतनिष्ठ शब्दों की बहुलता है। इनके काव्यों में तत्सम्, तद्भव एवं देशी शब्दों का प्रयोग भी स्वाभाविक रूप से हुआ है।

7. अन्य साहित्य

डॉ. भारिल्ल बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। उन्होंने कहानी, उपन्यास, संवाद, विवेचन, प्रवचन एवं काव्य सृजन किया है। इन्होंने गद्य–पद्य में दोनों ही प्रकार का साहित्य रचा है। इसके अतिरिक्त भी शिक्षागत, नीतिगत विचार भी हैं, जिन्हें बालबोध पाठमाला भाग 1, 2, 3 वीतराग विज्ञान पाठमाला 1, 2, 3 और तत्त्वज्ञान के दो भाग आदि हैं। जैसे बालबोध में विविध पाठमाला के अन्तर्गत संवाद शिक्षाप्रद नीति ज्ञानवर्द्धक विचार, लक्षण, भेद और अनेक प्रकार के प्रेरक दृष्टान्त आदि भी हैं।

इसके अतिरिक्त बिखरे मोती, सुक्तिसुधा, गागर में सागर, चिन्तन की गहराइयाँ, गोली का जवाब गाली से भी नहीं, बिन्दु में सिन्धु, रीति–नीति, मैं स्वयं भगवान हूँ, णमोकार महामंत्र एक अनुशीलन है।

बालबोध पाठमाला भाग–1 में जैन जगत में प्रसिद्ध अनादि मूलमंत्र णमोकार मंत्र उसकी महिमा और उसका संक्षिप्त अर्थ भी दिया गया है। परमेष्ठियों के नामोल्लेख के साथ–साथ तत्संबंधी अलग–अलग चित्र भी दिए गए हैं। चार मंगल के पश्चात् तीर्थंकरों के नाम, देवदर्शन विधि, जीव–अजीव विश्लेषण, दिनचर्या, भगवान

1. जिनेन्द्र वन्दना एवं बारह भावना, पृष्ठ 39

आदिनाथ के पश्चात् डॉ. भारिल्ल द्वारा रचित 'मेरा धाम' नामक काव्यात्मक विचार भी प्रेरक हैं।

बालबोध पाठमाला भाग–2 में देव की स्तुति, पाप में पाँच पापों का उल्लेख किया है। कषाय, सदाचार, गतियाँ, द्रव्य व भगवान महावीर तथा अन्त में जिनवाणी स्तुति है।

बालबोध पाठमाला भाग–3 में संकल्प में "भगवान बनेंगे' तथा देव–दर्शन, पंचपरमेष्ठी, श्रावक के अष्टमूलगुण, इन्द्रियाँ, सदाचार, द्रव्य–गुण–पर्याय, भगवान नेमिनाथ, जिनवाणी स्तुति आदि है।

वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–1 में देव–स्तुति, आत्मा और परमात्मा, सात तत्त्व, षट् आवश्यक, कर्म, रक्षाबन्धन, जम्बूस्वामी, बारह भावना आदि का विवेचन है।

वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–2 में उपासना जिसके अन्तर्गत देव–शास्त्र–गुरु पूजन, देव–शास्त्र–गुरु, सात तत्त्वों सम्बन्धी भूल, चार अनुयोग, तीन लोक, सप्त व्यसन, अहिंसा : एक विवेचन, अष्टान्हिका महापर्व, भगवान पार्श्वनाथ, देव–शास्त्र–गुरु स्तुति है।

वीतराग–विज्ञान पाठमाला भाग–3 में सिद्ध पूजन जिसमें सिद्ध का स्वरूप बताया गया है। पूजा–विधि और फल, उपयोग, अगृहीत और गृहीत मिथ्यात्व, मैं कौन हूँ? ज्ञानी श्रावक के बारह व्रत, मुक्ति का मार्ग, निश्चय और व्यवहार, दशलक्षण महापर्व, बलभद्र राम, समयसार स्तुति आदि है।

तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–1 में श्री सीमन्धर पूजन, सात तत्त्व सम्बन्धी भूलें, लक्षण और लक्षणाभास, पंचमगुणस्थानवर्ती श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ, सुख क्या है? पंच भाव, चार अभाव, पाँच पाण्डव, भावना बत्तीसी आदि का विवेचन है।

तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–2 में महावीराष्टक स्तोत्र, शास्त्रों के अर्थ समझने की पद्धति, पुण्य और पाप, उपादान–निमित्त, आत्मानुभूति और तत्त्व विचार, षट्कारक, चतुर्दश गुणस्थान, तीर्थंकर भगवान महावीर, देवागम स्तोत्र है।

चिन्तन की गहराइयाँ

इसमें निम्न चिन्तन है– बुद्धि, विवेक, मर्यादा, निर्णय, खोज, विवेक, धर्म, सम्मान, श्रद्धा, हट, ज्ञान, लक्ष्य, स्वावलम्बी, सुख, अनुराग, पुण्य वीतरागता, समयभाव, पूर्णज्ञानी बहुमान, अंधश्रद्धालु, निर्भय, परिग्रह, आशा, शुद्ध–अशुद्ध, स्वभाव, यश, समर्पण, मुक्ति, ध्येय, हित, सत्य, करुणा, अक्षम्य अपराध, जागृत विवेक, धर्म के लक्षण, क्षमा, भावना कल्याणक, शाकाहार, शरण, परमात्मा, पर्याय, ध्यान मैं कौन हूँ? निमित्त उपादान आदि विषयों पर चिन्तन किया गया है।

बिखरे मोती

यह पुस्तक डॉ. भारिल्ल के चिन्तन से संबंधित है।

इस प्रकार डॉ. भारिल्ल के बहुविध चिन्तन से यह स्पष्ट होता है कि आपने कहानी, निबन्ध, लेख, काव्य एवं प्रवचन के माध्यम से समाज को नई दिशा दी है। आचार्य कुन्दकुन्द, अमृतचन्द, उमास्वामी, पूज्यपाद आदि के प्राचीन सिद्धान्तों को जन–जन तक पहुँचाने का प्रयास किया है। सैद्धान्तिक विवेचन की मुख्य धारा में जुड़कर हिन्दी के सशक्त जैन विचारक पण्डित टोडरमल पण्डित बनारसी दास, कविवर भूधरदास, पण्डित दौलतराम आदि के साथ–साथ डॉ. भारिल्ल का हिन्दी जैन साहित्य में योगदान रहा।

निष्कर्ष

यह अध्याय डॉ. भारिल्ल के कृतित्व पर केन्द्रित है। सरस्वती–पुत्र भारिल्ल का समयसार अनुशीलन आध्यात्मिक जगत् को अनूठी देन है तो सत्य की खोज में उनकी कल्पनाशक्ति और तार्किकता प्रभावित किए बिना नहीं रहती। तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, मैं कौन हूँ और पण्डित टोडरमल के व्यक्तित्व और कृतित्व पर इनका शोधकार्य महत्त्वपूर्ण कार्य है, इसमें सन्देह नहीं। इनकी कृतियों के बारे में विभिन्न विद्वानों के विचार उनके समग्र व्यक्तित्व को उजागर करते हैं।

इनके उपन्यास के सिलसिले में उपन्यास का तात्त्विक विवेचन भी इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। विविध विधाओं में इनकी सर्जनात्मक भावभूमि से परिचित कराने का प्रयास भी द्रष्टव्य है। इनके पद्यानुवाद में मूल का सा वैशिष्ट्य विद्यमान है। गद्य–पद्य के अतिरिक्त बालबोध भाग–1, 2, 3 वीतराग विज्ञान पाठमाला 1, 2 3 और तत्त्वज्ञान के दोनों भागों में इनके शिक्षा व नीति सम्बन्धी विचार से अवगत हुआ जा सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन्होंने अपनी कृतियों से हिन्दी साहित्य को विशेष रूप से समृद्ध किया है।

जिनने अपनी तर्क बुद्धि से, सदा सफलता पाई।
जो भी इनके आड़े आया, उसने मुँह की खाई।।
जिनकी वाणी में जादू है, शब्दों में आकर्षण।
सातत्त्व और छह द्रव्यों का, करते सही निरूपण।।
जिनकी वाणी सुनकर प्रमुदित हो जाता तन मन है।
पण्डित श्री हुकमचन्द भारिल्ल का, वन्दन–अभिनन्दन है।।
शत–शत अभिनन्दन है।।1।।
ग्राम बरौदा की मिट्टी ने, वह कमाल दिखलाया।
भारत में ही नहीं विदेशों तक में नाम कमाया।।
यह बुन्देली वीर जिस समय, मंच के ऊपर आता।
कितनी बड़ी सभा हो एकदम, सन्नाटा छा जाता।।
कोई दे दो शास्त्र उसी पर, घण्टों बोला करते।
समयसार के गणधर हैं, पूरा जबान पर रखते।।
मन्त्र मुग्ध हो जाते श्रोता, सुन करके प्रवचन हैं।
पण्डित श्री हुकमचन्द भारिल्ल का, वन्दन–अभिनन्दन है।।
शत–शत अभिनन्दन है।।2।।
सरस्वती का भण्डार भर दिया, ऐसी कलम चलाई।
जो भी लिखा अकाट्य आपने, ऐसी क्षमता पाई।।
इनने अपनी तर्क बुद्धि से, हर उलझन सुलझाई।
पाँच सूत्र देकर समाज को, नई राह दिखलाई।।
'काका' इनके अभिनन्दन को, यह रोली चन्दन है।
पण्डित श्री हुकमचन्द भारिल्ल का, वन्दन–अभिनन्दन है।।
शत–शत अभिनन्दन है।।3।।

– हजारीलाल जैन 'काका'

तृतीय अध्याय

डॉ. भारिल्ल के उपन्यास और कहानियों में विचार-तत्त्व

हिन्दी गद्य साहित्य की विविध विधाओं में उपन्यास का अपना विशेष स्थान है, क्योंकि उपन्यास में यथार्थ जीवन का चित्रण होता है। उसका कथानक मानवीय जीवन के अधिक निकट रहता है। उपन्यास से परिस्थितियों का ज्ञान भी होता है और सूक्ष्म घटनाओं, ऐतिहासिक परिस्थितियों एवं जीवन के अनेक रहस्यों का ज्ञान भी होता है। उपन्यास अनेक कथा परिवेशों से जुड़ा हुआ भी रहता है।

उपन्यास एक काल्पनिक कथा है जो मानव के अधिक निकट है, उसकी धरोहर व अमानत है। जीवन की प्रस्तावित रूपरेखा है इसमें कथा के प्रमाण द्वारा किसी बात को प्रमाणित किया जाता है।

लेटिन भाषा के 'नावेल' शब्द का अर्थ है– 'युवा और ताजी' जिसका निर्माण या सृजन अभी–अभी हुआ है। 'नावेल' का अर्थ एक ऐसी कहानी है, जिसकी यथेष्ट लम्बाई है और उसमें उपन्यास की विशेषताएँ हैं। उपन्यास शब्द की व्याख्या दो प्रकार से की गई है। 'उपन्यास प्रसादनम्' प्रसादन को उपन्यास कहते हैं। 'उत्पत्ति कृतो ह्यर्थः उपन्यासः संकीर्तित' अर्थात् किसी अर्थ को युक्तिपूर्वक प्रस्तुत करना उपन्यास है। 'उपन्यास' मनुष्य जीवन के विविध रूपों, आयामों, आकारों, अनुभूतियों और अनुभवों को व्यापकता, गहराई और विस्तार देता है।

उपन्यास विधा पर पहला सैद्धान्तिक निबंध आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा। जिनमें कुछ महत्त्वपूर्ण स्थापनाएँ दी हैं–

- उपन्यास साहित्य का एक प्रधान अंग है।
- मानव प्रकृति पर इसका बहुत प्रभाव पड़ता है।

• यह उस सूक्ष्म से सूक्ष्म घटना को प्रत्यक्ष करने का यत्न करता है जिससे मनुष्य का जीवन बनता है और जो इतिहास आदि की पहुँच के बाहर है।

• आचार्य शुक्ल ने इतिहास से 'उपन्यास' का अन्तर बताते हुए लिखा कि 'अपनी असंख्यता और क्षिप्रगति के कारण ऐतिहासिक प्रमाणों की पकड़ में न आने वाली इन घटनाओं के निर्देशन के निमित्त मनुष्य की अनुमान शक्ति उठ खड़ी होती है जो अनेक व्यापारों के अभ्यास से वैसे ही किसी एक व्यापार का आरोपण कर सकती है। उनका आधार सत्य है, उसे असत्य नहीं समझना चाहिए।

• डॉ. श्यामसुन्दर दास के अनुसार 'उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है। उपन्यास आज के युग की सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्य विधा है। उपन्यास मानव जीवन और मानव–चरित्र की व्याख्या करता है और उनका उद्‌घाटन करता है।

• गुलाबराय लिखते हैं– 'उपन्यास कार्य–कारण शृंखला में बंधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार और पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप में उद्‌घाटन किया जाता है।''

• जयशंकर प्रसाद उपन्यास में यथार्थ के अंकन की संभावना को महत्त्व देते हुए लिखते हैं, ''मुझे कविता और नाटक की अपेक्षा उपन्यास में यथार्थ का अंकन सरल प्रतीत होता है।'' अपने दीर्घ कलेवर के कारण उपन्यास में चरित्र के फैलाव की अधिक गुंजाइश होती है। ई. एम. फास्टर लिखते हैं– ''जीवन के गुप्त रहस्यों को अभिव्यक्त करने की विशेषता जितनी उपन्यास में है उतनी अन्य किसी कला में नहीं।''[1]

डॉ. भारिल्ल का उपन्यास 'सत्य की खोज'

यह उपन्यास आध्यात्मिक दृष्टि से जुड़ा हुआ है। इसलिए उपन्यासों के वर्गीकरण के आधार पर इस उपन्यास को आध्यात्मिक

1. हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास, पृष्ठ 251–253

उपन्यास कह सकते हैं, क्योंकि इसमें समाज के साथ–साथ आचार–विचार की प्रमुखता है। इसके मूल में धर्म के शुद्ध उपयोगी अवस्था का विवेचन है। लेखक ने लिखा है वीतरागी, सर्वज्ञ देव और उसके पोषक शास्त्र तथा वीतरागी मार्ग पर चलने वाले शुद्धोपयोगी संत ही गुरु है। देव, शास्त्र और गुरु का मार्ग उपयुक्त मार्ग है।[1]

श्रद्धा और विवेक के कथन में अध्यात्म का ही निरूपण है, जिसे समाज के सम्मुख रखकर कहा गया कि "वीतरागता, सर्वज्ञता और हितोपदेशी पूज्य है।"[2] शुद्धता उसका स्वभाव है, जिसका जैसा स्वरूप होता है, वह सदैव विद्यमान रहता है। वस्तु नहीं, मात्र दृष्टि बदलना है।[3] इस विचार ने वस्तु के सहज स्वभाव की ओर व्यक्ति को प्रेरित किया है और यह सूत्र भी दिया कि दृष्टि का सम्यक् होना ही सुख का कारण है– सत्य, सुख व संतोष स्वभाव–दृष्टिवन्त के ही होते हैं।

यथार्थ में प्रत्येक स्थिति का चित्रण होता है। डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने यथार्थ के साथ समाज के आदर्श को प्रस्तुत किया है।

यह कहते हुए हर्ष का अनुभव होता है कि अध्यात्म तत्त्ववेता ने आध्यात्मिक गुत्थियों को सुलझाने के लिए सत्य की खोज नामक उपन्यास की खोज की है, जिसे आध्यात्मिक उपन्यास कह सकते हैं। आत्मानुभूति जिसका मूल विषय है जो आत्मानुभव को दर्शाता है "आत्मा स्वयं अनुभूति स्वरूप है।"[4]

किसी भी कथा, काव्य या ग्रंथ की समीक्षा करने के लिए उनके तत्त्वों को विशेष महत्त्व दिया जाता है। आलोचकों ने उपन्यास विधा को छः तत्त्वों पर परखा है यथा – 1. कथानक, 2. चरित्र चित्रण, 3. कथोपकथन या संवाद, 4. भाषा, 5. देशकाल (समय), 6. उद्देश्य।[5]

इनके अतिरिक्त शीर्षक को भी आवश्यक तत्त्व के रूप में लिया जा सकता है।

1. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल – सत्य की खोज, पृष्ठ 11, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, सन् 1977
2. वही, पृष्ठ 21 3. वही, पृष्ठ 23 4. वही, पृष्ठ 202
5. हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास, पृष्ठ 254

'सत्य की खोज' शीर्षक

यह शीर्षक क्यों और किसलिए रखा गया, यह अपने आप मे रोचक है। लेखक चाहे तो इसका शीर्षक सत्य, धर्म, विवेक, अविवेक, निश्छल, सरल, अभय आदि कुछ भी नाम रख सकता था। इसमें विवेक, तर्कसंगत एवं सटीक प्रतीत होता है। विवेक कई दृष्टियों को लिए हुए है, जिसमें सामाजिक दृष्टि भी है। विवेक बिना मनुष्य पग–पग पर ठगाया ही जाता है। धर्म दृष्टि से इसे संस्कार और अध्यात्म दृष्टि से आत्मा भी विवेक का अर्थ होता है। यह समीक्षा का उपयुक्त विषय है।

सामाजिक सत्य में प्रवेश करके उपन्यासकार का कथन है कि 'होता वही है जो होना होता है।'[1] वह उसी रूप में कथन करता है। कुन्दकुन्द एवं सिद्धसेन ने स्पष्ट रूप से कहा है कि "जो वस्तु जिस रूप में परिणमन करती है उस समय वह वस्तु उसी रूप को प्राप्त हो जाती है।"[2]

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने भी अपने उपन्यास 'सत्य की खोज' में लिखा है कि–

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायश्च तादृशः।
सहायास्तादृशाः सन्ति यादृशी भवितव्यता।।[3]

जिसका जैसा भविष्य होता है, उसकी बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है, पुरुषार्थ भी उसी ओर करता है और उसे सलाहकार व सहायक भी वैसे ही प्राप्त हो जाते हैं।[4]

कथानक

किसी भी उपन्यास में उसका कथानक मूल होता है। अनेक उपन्यासकारों ने कथानक को उपन्यास में आवश्यक तत्त्व माना है।

---

1. सत्य की खोज, पृष्ठ 2
2. वही, पृष्ठ 23
3. सन्मति सूत्र – अनेकान्त गाथा–15
4. सत्य की खोज, पृष्ठ 35

डॉ. त्रिगुणायत ने कथा को उपन्यास का प्राण कहा है।[1]

कथा साहित्य का आधार स्तम्भ कथावस्तु होती है।[2]

उपन्यास का मूल है उपन्यास में व्याप्त कौतूहल का तत्त्व कथानक के सहारे ही विकास पाता है।[3]

'सत्य की खोज' का कथानक

इस उपन्यास में कल्पना शक्ति का समावेश है, जिसके आधार पर उपन्यासकार ने 'सत्य की खोज' को प्रस्तुत किया है। यह मार्मिक एवं यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसमें सेठ अर्हत्दास पत्नी जिनमती और पुत्र विवेक के आदर्श गुणों का चित्रण है। विवेक ने अपना विवेक अपने माता और पिता के धार्मिक गुणों से प्राप्त किया है। वे आडम्बरों से दूर मर्यादा पर केन्द्रित अत्यन्त प्रसन्न तथा आज्ञाकारी भी थे। वे धार्मिक तथा तर्क के साथ देव–शास्त्र और गुरु के प्रति श्रद्धा भी रखते थे। उनकी विचारधारा मित्रों में भी प्रसिद्ध थी।[4] वे धर्म को स्वपरीक्षित साधना मानते हैं।[5]

विवेक का विवाह एक विवेकी रूपमती कन्या के साथ हो जाता है। विवेक के माता–पिता उससे सुख का अनुभव करते हैं। रूपमती सहजभाव से अपने सास–ससुर की सेवा को महत्त्व देती है।[6] नारी का स्वरूप श्रद्धा को प्रतिपादित करता है, नारियाँ सहज ही श्रद्धामयी होती हैं।[7] यह स्वयं उपन्यासकार ने लिखा है सहज श्रद्धामयी रूपमती और उसका आस्थावान पति विवेक अपने जीवन से संतुष्ट थे। परन्तु पिता और माता की इच्छा पुत्रोपलब्धि की थी; इस कारण उसे कुलदेवी की आराधना के लिए कहा गया। परन्तु तत्त्वज्ञान के प्रति श्रद्धा रखने वाला विवेक आत्म विश्वास को ही महत्त्व देता है उसकी पत्नी भी

1. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, दूसरा भाग, पृष्ठ 116
2. डॉ. प्रतापनारायण टंडन– हिन्दी साहित्य में कथा शिल्प का विकास, पृष्ठ 75
3. डॉ. भागीरथ मिश्र : काव्यशास्त्र, पृष्ठ 83
4. सत्य की खोज, पृष्ठ 10
5. वही, पृष्ठ 10 6. वही, पृष्ठ 9 7. वही, पृष्ठ 13

पति की आस्था पर विश्वास न करते हुए उसे रूढ़िवादी परम्पराओं की ओर ले जाने का प्रयत्न करती है। रूपमती मन ही मन प्रार्थनाएँ, उपवास, बोलमा, मनौतियाँ, घी के दीपक जलाना, छत्र चढ़ाने के साथ ही गंड़ा–ताबीज[1] बांध कर पुत्रवती होना चाहती थी। परन्तु कर्म को कुछ अलग ही दर्शाना था। विवेक धर्म से अध्यात्म की ओर अग्रसर था और उसकी पति परायण रूपमती भी अध्यात्म पर विश्वास करके धर्म मार्ग की ओर अग्रसर होती है।

लेखक ने 'सत्य की खोज' से आत्मा के सत् स्वरूप को प्रतिपादित करने का जो संकल्प किया, उसमें वे खरे उतरते हैं। यही नहीं अपितु डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के इस उपन्यास में प्रारम्भ से लेकर अंत तक रोचकता है और सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या भी।

चरित्र चित्रण

उपन्यास में चरित्र–चित्रण का अत्यधिक महत्त्व होता है। कथा का विकास पात्रों के चरित्र से होता है। विचारकों ने भी लिखा है चरित्र–चित्रण उपन्यास का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, क्योंकि मनुष्य का अस्तित्व उसके चरित्र में है।[2]

इस उपन्यास में दो प्रकार के चरित्र हैं पहला वर्गप्रधान तो दूसरा व्यक्तिप्रधान चरित्र।

वर्गप्रधान चरित्र में कुदेव, कुगुरु, कुविचार आदि हैं, जिन्हें ढोंगी कहा गया है तो दूसरा व्यक्ति प्रधान चरित्र, जिनमती, अहर्तदास, विवेक, रूपमती है। इस उपन्यास में प्रमुख दो पात्र हैं जिन पर पूरा कथानक टिका हुआ है– विवेक और उसकी पत्नी रूपमती।

विवेक का चरित्र चित्रण सिद्धान्तों के संदर्भ में विवेक सुमेरू जैसा अचल है, उसे धर्म के नाम पर होने वाले आडम्बरों, अंधविश्वासों व ढोंगी महात्माओं से घुटन होती है। विवेक एक आध्यात्मिक व्यक्ति है जो कर्मकाण्ड से हमेशा दूर ही रहना चाहता है। विवेक उसकी

1. सत्य की खोज, पृष्ठ 13
2. वही, पृष्ठ 13

विद्वत्ता, सहनशीलता, अनुशासन, क्षमता आदि गुणों से युक्त है। वह सर्वगुणसम्पन्न व सर्वदोषरहित है। विवेक एक आदर्श जैन श्रावक होने के साथ--साथ प्रखर प्रवक्ता, गम्भीर अध्येता, गहरा विद्वान, क्षमा का सागर, मननशील, सूक्ष्म चिन्तक, आदर्श पति, समाजसेवक, कठोर प्रशासक भी है।

विवेक का व्यक्तित्व एक युगपुरुष के रूप में उभरा है। कहीं–कहीं विवेक का[1] उत्तेजना भरा स्वर भी दिखाई देता है जैसे–

रूपमती की मूर्खतापूर्ण बातों को सुनकर पहले से ही उद्विग्न विवेक उत्तेजित हो कहने लगा–

"जैसी मूर्ख तू, वैसे ही वे! जरा विचार तो कर! बोलमा बोलने के पाँच–छः माह बाद ही बच्चा हो गया। इसका अर्थ है कि तीन–चार माह का गर्भ पहले से ही था और गर्भ में उस समय बच्चा ही था, कोई बच्ची का बच्चा नहीं हो गया।[2]

विवेक का चरित्र आज की भटकती दिशाहीन युवा पीढ़ी को एक सही दिशा या चेतना प्रदान करता है।[3]

अर्हत्दास का चरित्र चित्रण यह विवेक के पिताश्री हैं। वे स्वभाव से सरल, संसार से उदास, शान्त, धर्मानुरागी महापुरुष थे।[4] वे भी कर्मकाण्डों से सर्वथा दूर ही रहा करते थे। अन्धविश्वासों, पाखण्डों, तंत्र–मंत्र आदि में ये विश्वास नहीं करते थे।

रूपमती का चरित्र चित्रण रूपमती अपने रूप सौंदर्य में अच्छी हैं। परन्तु धर्मयुक्त होते हुए भी सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र और सच्चे देवों पर विश्वास नहीं करती हैं। सन्तान के अभाव में वह अन्धविश्वासों से युक्त हो जाती हैं। सहज एवं सरल, शान्त इस नारी के विचारों का परिवर्तन उसके पति विवेक के माध्यम से ही होता है।

---

1. तत्त्ववेता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, सप्तम खण्ड, पृष्ठ 86
2. सत्य की खोज, पृष्ठ 20
3. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, सप्तम खण्ड, पृष्ठ 87
4. सत्य की खोज, पृष्ठ 1

जिनमती का चरित्र चित्रण जिनमती विवेक की मातुश्री है जो अध्यात्म गुणों से युक्त हैं। सदाचार एवं आदर्श भावना से पूर्ण नारी हैं।

कथोपकथन या संवाद

कथा वस्तु के स्वाभाविक विकास और पात्रों के चित्रांकन में कथोपकथन का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के उपन्यास 'सत्य की खोज' में लम्बे–लम्बे संवादों की प्रमुखता है, क्योंकि वे उन संवादों से समाज को अध्यात्म की प्रेरणा देना चाहते हैं इसलिए उसमें तत्त्वचिन्तन की प्रमुखता है जैसे–

"मैं शादी को सौदा नहीं मानता।

..... अनुभव से लाभ उठाना चाहिए।[1]

"जिस व्यक्ति या सिद्धान्त को हम अत्यन्त विश्वसनीय एवं ठोस मानते आ रहे हों ..... आधार समाप्त हो गया।[2]

छोटे संवादों में भी महत्त्वपूर्ण भाव है....

"यह कोरा भाषण नहीं, सत्य है, तथ्य है, इसे मजाक में नहीं उड़ाया जा सकता है।"

अभय ने कहा – "अधिक भावुक न बनो, मतलब की बात करो।"[3]

"कौन कथन सत्य है कौन झूठ ....

..... एक ही वस्तु को कहीं नित्य लिखा है कहीं अनित्य। वस्तु जैसी है वैसा ही लिखा।"[4]

संवाद योजना में पति–पत्नी का वार्तालाप, मित्र के प्रश्नों के उत्तर, धार्मिक प्रश्न और उनके समाधान आदि संवाद स्वाभाविक एवं उद्देश्य से जुड़े हुए हैं। इसमें नाटकीयता भी है, चरित्र–चित्रण, रहस्य उद्घाटन, पात्रों के अनुकूल कथन, उद्देश्य एवं मार्मिक विवेचन के साथ ही साथ तात्त्विक चित्रण, दार्शनिक विवेचन, वीतरागता की

1. सत्य की खोज, पृष्ठ 6
2. वही, पृष्ठ 8
3. वही, पृष्ठ 6
4. वही, पृष्ठ 9

प्रामाणिकता, श्रद्धा का स्वरूप, वस्तुस्वभाव आदि सबकुछ है।

'सत्य की खोज' का भी एक संवाद इसप्रकार है–

"जहाँ विवेक है, वहाँ आनन्द है, निर्वाण है और जहाँ अविवेक है वहाँ कलह है, विनाश है। समय अमूल्य है, मानव भव का एक–एक क्षण सत्य के अन्वेषण, रमण एवं प्रतिपादन के लिए है।"[1]

इस प्रकार आत्मानुभूति स्वभाव अभिव्यक्ति, ज्ञानानन्द एवं वीतरागता के भावों से पूर्ण संवादों में परम तत्त्व का वातावरण है।

भाषा

उपन्यास की भाषा लोक के विचारों/भावों को व्यक्त करने का एकमात्र माध्यम होती है। सशक्त मार्मिक प्रस्तुति के लिए भाषा सरल, भावानुकूल, पात्रों के स्तर के अनुरूप होना चाहिए।[2]

'सत्य की खोज' नामक उपन्यास से यह ज्ञात होता है कि लेखक कलम का धनी है। इसमें सभी पात्रों की भाषा उनकी गरिमा, स्तर के अनुरूप है। उपदेशात्मक स्थलों पर संस्कृतनिष्ठ भाषा, शान्त क्षणों में प्रवाहमयी भाषा, बुन्देलखण्ड से होने के कारण बुन्देली भाषा, मुहावरे, लोकभाषा का प्रयोग सहज ही उपन्यास में समाविष्ट हो गए हैं। इसके अलावा संस्कृतनिष्ठ भाषा, संस्कृत के उद्धरण, सूक्तियाँ लेखक के संस्कृतज्ञ होने का अनुमान करती हैं।[3]

इस उपन्यास की भाषा में कहीं भी कृत्रिमता नहीं दिखती। सरल, सहज प्रवाह युक्त भाषा है।

इस उपन्यास में लेखक ने अनेक शैलियों का प्रयोग किया है – उपदेशात्मक शैली, उदाहरण शैली, मनोविश्लेषणात्मक शैली, वर्णनात्मक शैली, आत्मविश्लेषणात्मक शैली, नाटकीय शैली, सूत्रात्मक समास शैली, तार्किक शैली, व्यंग्यात्मक शैली आदि का प्रयोग किया है।[4]

1. सत्य की खोज, पृष्ठ 199
2. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल सप्तम खण्ड, पृष्ठ 8
3. वही, पृष्ठ 81
4. वही, पृष्ठ 82

देशकाल (समय)

उपन्यास के आधार पर यदि वहाँ का वातावरण हो तो उपन्यास बहुत ही प्रभावशाली होगा। जैसा पात्र हो उसी अनुकूल वहाँ का वातावरण, वेशभूषा, खान–पान हो तो उपन्यास में वास्तविक जीवन को छूता हुआ दिखाई देगा।

''उपन्यास में देश–काल की परिस्थितियों, परम्पराओं, जीवन–पद्धतियों का जितना बढ़िया चित्रण है, उपन्यास में उतनी ही प्रभावोत्पादकता, प्रामाणिकता व सजीवता का समावेश होता है।''[1]

वातावरण दो प्रकार से होता है – आन्तरिक वातावरण में घटनाओं, परिस्थितियों, पात्रों की मानसिक दशाओं, अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण होता है और बाह्य वातावरण का अर्थ, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक परिवेश आदि होता है।[2]

किसी भी व्यक्ति पर तात्कालिक वातावरण का प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल पर भी उस समय की परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य ही पड़ा। 'सत्य की खोज' नामक उपन्यास के प्रारम्भिक सर्गों में प्राकृतिक वातावरण को दर्शाया गया है उसके बाद 18वें सर्ग से उस समय की जो सामाजिक परिस्थितियाँ थीं उसको बताया गया है। उस समय ढोंगी साधु–महात्माओं की भी कमी नहीं थी। अन्धविश्वास, मंत्र–तंत्र, गंडा–ताबीज, बोलमा आदि कुरीतियाँ भी कम नहीं थीं। इस प्रकार के वातावरण के अनुरूप लेखक ने इस उपन्यास की रचना की है और समाज को इन अन्धश्रद्धाओं से दूर कर अध्यात्म की ओर लाने का प्रयत्न किया है।

उद्देश्य

हर सृजन के पीछे कोई न कोई उद्देश्य होता है। बिना प्रयोजन कोई कार्य नहीं होता। उपन्यासकार, उपन्यास का लेखन विशेष उद्देश्यों के माध्यम से करता है।[3]

1. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल सप्तम खण्ड, पृष्ठ 89
2. वही, पृष्ठ 90
3. वही, पृष्ठ 82

'सत्य की खोज' नामक उपन्यास में लेखक का मूल उद्देश्य समाज को क्रियाकाण्डों से दूर हटाकर अध्यात्म, तत्त्वचर्चा और वीतरागता की ओर ले जाना है तथा अनेक धार्मिक और सामूहिक मूढ़ताओं से युक्त, रूढ़ियों में उलझे और विखण्डित समाज को रूढ़िमुक्त और संगठित करना है।[1] इस उपन्यास का मूल उद्देश्य विवेक स्वयं अपने इस संकल्प के माध्यम से व्यक्त करता है–

"धर्म के नाम पर न तो मैं समाज को विघटित होते देख सकता हूँ और न मुझसे धर्म की कीमत पर संगठन ही होगा। मैं धर्म को कायम रखकर समाज को संगठित करूंगा और समाज को संगठित रखकर धर्म को उसके सामने प्रस्तुत करूंगा – यह मेरा संकल्प है।"[2]

कहानी साहित्य – कथात्मक परिचय

प्रारम्भिक कथा विकास–आगम परम्परा

हिन्दी का जैन कथा–साहित्य, प्राकृत, सस्कृत और अपभ्रंश की आनुपूर्वी में लिखे गए साहित्य की देन है। जिनमें 'प्राकृत कथाएँ' वसुदेवहिण्डी 'वृहत्कथा' आदि कथा है।[3] कथा के बीज लोकगीतों की चाल या तर्ज, स्तवन, सज्झाय ढाल आदि छोटे–छोटे ल्युमन[4] तेस्सितोरि, जेकोबी आदि अनेक यूरोपीय प्राच्यविदों ने जैन–कथा साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण गवेषणाएँ की हैं। हर्टल ने गुजरात में उपलब्ध जैन–साहित्य के आधार पर भारतीयेत्तर साहित्य में उपलब्ध समानान्तर आधार कथाओं का अन्वेषण किया है।[5] जैन कथाओं में प्रयुक्त प्राकृत, संस्कृत भाषा का भी अपना महत्त्व है। अधिकतर कथाएँ लोक–प्रचलित भाषाओं में लिखी गयी हैं। कथा साहेत्य में लोककथाएँ, दन्तकथाएँ, नैतिक

1. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल सप्तम खण्ड, पृष्ठ 92
2. सत्य की खोज, पृष्ठ 243
3. डॉ. सत्यप्रकाश जैन, हिन्दी जैन कथा साहित्य, पृष्ठ 11, प्रका. शैली, श्री पार्श्वनाथ दिगंबर जैन मंदिर, सब्जी मण्डी, दिल्ली–11006, सन् 1993
4. वही, पृष्ठ 11 5. वही, पृष्ठ 11

आख्यायिकाएँ, प्रेमाख्यान, साहसिक कहानियाँ, पशु–पक्षियों की कहानियाँ आदि प्राप्त होती हैं। बोलचाल की भाषा में जनसाधारण के लिए जो कहा जाता है, वह 'कथा' है। लोककथा और साहित्यिक कथा अभिप्राय विशेष से कही जाने वाली कथा है।[1]

कथा प्रबन्ध की प्रमुख वस्तु है। वस्तु से हमारा अभिप्राय कथ्य या कथानक से है। कथा शब्द कथन, प्रबन्धरूपवाक्य और वार्ता आदि। पुरुषार्थ में उपयोगी होने से धर्म, अर्थ और काम का कथन करना कथा है।[2] वक्ताओं के वाक्य–संदर्भ का नाम कथा है। वादी प्रतिवादियों के पक्ष–प्रतिपक्ष के ग्रहण को कथा कहते हैं।[3] आचार्य कुन्दकुन्द ने वार्ता को कथा कहा है। बन्ध और भोग की कथा तो सब जीवों के सुनने में आई है, परिचय तथा अनुभव में भी आई है, किन्तु रागादि से रहित होकर विभक्त होने की बात सुलभ नहीं है।[4]

कथा के भेद

पुरुषार्थ की अपेक्षा निम्न भेद हैं–

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार कथाएँ कही गई हैं।[5]

पात्र की अपेक्षा कथा के भेद –

- दिव्यकथा –देवों सम्बन्धी कथा या देवलोक सम्बन्धित कथा।
- दिव्यमानुषी कथा – देव और मनुष्य सम्बन्धी कथा या देवलोक या मनुष्य लोक सम्बन्धी कथा।
- मानुषी कथा – मनुष्य लोक सम्बन्धी कथा।

वार्ता की अपेक्षा कथा के भेद –

- अद्‌भुत कथा • महाकथा और • वृहत् कथा

धर्म की अपेक्षा कथा के भेद[6]

---

1. वही, पृष्ठ 12
2. वही, पृष्ठ 15
3. वही, पृष्ठ 15
4. वही, पृष्ठ 14
5. पुरुषार्थोपयोगित्वात्त्रिवर्गकथनं कथा महापुराण, 1, 1/8
6. लीलावती कथा–गाथा 20–25, प्रका. दिगम्बर जैन पंचायती मंदिर दिव्य 1968

- आक्षेपिणी – अनुकूल कथा
- विक्षेपिणी – प्रतिकूल
- संवेदिनी – प्रभावित करने वाली।
- निर्वेदिनी – वैराग्य उत्पन्न करने वाली।

शैली के आधार पर कथा के भेद[1] –

- सकल कथा – सम्पूर्ण प्रकार की कथा।
- खण्ड कथा – एक अंश की कथा।
- उल्लाप कथा – जन्मजन्मान्तर की कथाएं उपकथाएं
- परिहास कथा – हँसी उत्पन्न करने वाले।
- संकीर्ण कथा – सीमित कथा।

इस तरह से पुरुषार्थ, व्यक्ति, लोक व्यवहार आदि की दृष्टि से कथाओं के भेद दिए गए हैं। इनकी कथाएँ प्रायः धर्म के मूल से जुड़ी हुई हैं इसलिए धर्म कथा कह सकते हैं।

गद्य काव्य की दृष्टि से कथा के भेद[2] –

• आख्यायिका कथा, • कथानिका, • खण्डकथा और • परिकथा।

कथा की विशेषताएँ[3] –

1. वक्ता–श्रोता पद्धति पर आधारित कथा।
2. अलौकिक, अतिमानवीय तथा अतिप्राकृत तत्त्वों एवं अतिशयोक्ति पूर्ण कथन संबंधी कथा।
3. धर्मगाथा की शैलियों से समन्वित कथा।
4. परिवर्तन युक्त कथा।
5. इष्टदेव के माहात्म्य संबंधी कथा।
6. योजना और क्रमबद्ध कथा अवान्तर प्रसंगों से परिपूर्ण[4]

---

1. कुवलयमाला अनुच्छेद 7, पृ. 4, प्रका. प्राकृत परिषद्, अहमदाबाद, 1976
2. अरिनारायण अध्याय 337, प्रका. चौखम्भा विद्याभारती, वाराणसी, सन् 2000
3. डॉ. सत्यप्रकाश जैन– हिन्दी जैन कथा साहित्य, पृष्ठ 25–26
4. चन्देल, डॉ. उमापतिराय : पौराणिक आख्यानों का विकासात्मक अध्ययन, पृष्ठ 90 से उद्धृत।

7. शान्तरस की प्रमुखता की कथा।

8. प्रासंगिक कथा।

9. अलंकृत वर्णनों से संबंधित कथा। उपदेशात्मक प्रवृत्ति तथा सूक्तियों की बहुलता वाले कथानक।

10.गतिशील और अतिशयता युक्त कथा।

11.परम्परा संबंधी कथा।

12.धर्मवृत्ति वाली कथा।

13.लोक–रचना, लोक स्थिति तथा वंशावलियों की कथा।

विषयवस्तु की दृष्टि से कथा[1] –

- धार्मिक–पौराणिक -- 63 श्लाका पुरुषों की कथा।
- प्रतीकात्मक – आधार युक्त कथा।
- वीरगाथात्मक – योद्धाओं की कथा।
- प्रेमाख्यानक – प्रेम कथाएँ।
- प्रशस्तिमूलक – वंश परम्परा से युक्त कथा।
- लोकगाथात्मक – जन प्रचलित कथाएं।

डॉ. भारिल्ल की कथाएँ

डॉ. भारिल्ल की कथाएँ धार्मिक–पौराणिक दोनों तरह की कथाएँ हैं– जिनमें चरित, वक्ता, श्रोता, दान–उपवास की विभिन्न विशेषताएँ व प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं। उनमें केवल घटनाओं का ही उल्लेख है। इसके साथ ही रचना के मुख्य प्रयोजन में धर्म, विज्ञान, इतिहास, खगोल, भूगोल आदि का ज्ञान तथ्यात्मक विवरणों, मनोरंजक आदि है। उनके कथाकाव्यों में कथा के भीतर कथाएँ चलती हैं। जैसा कि डॉ. नामवर सिंह ने कहा– कल्पित अथवा लोककथा के आधार पर लिखे गए आख्यान काव्य को कथाकाव्य कहते हैं।[2] डॉ. शास्त्री जनसाधारण के कार्य व्यापारों की योजनाओं से भारित कथाओं को

1. डॉ. सत्यप्रकाश जैन – हिन्दी जैन कथा साहित्य, पृष्ठ 26
2. सिंह, डॉ. नामवर : हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, तृतीय परिवर्द्धित संस्करण, पृष्ठ 212

कथाकाव्य के नाम से अभिहित करते हैं।[1] आचार्य आनन्दवर्द्धन ने जिसे सफलकथा कहा है उसी अपेक्षा की पूर्ति करने वाली कथाएँ डॉ. भारिल्ल की कथाओं में है।[2] उनमें कल्पना प्रसूत, लोक प्रचलित चरित, जन–जीवन पुरुषों के व्यक्तित्व आदि के दर्शन होते हैं। कथाओं में राजा, मंत्री, सेठ, पुरोहित, सार्थवाह, साधुपुरुष तथा सेनापति ही नहीं, साधारण व्यक्ति भी हैं।[3] कथाएँ गद्य और पद्य दोनों में लिखी हुई मिलती हैं।

कहानियों के नाम

डॉ. भारिल्ल के कथा संकलन का एक नाम 'आप कुछ भी कहो' है, जिसमें निम्न शीर्षक दिए गए हैं – अक्षम्य अपराध, जागृत विवेक, अभागा भरत, उच्छिष्ट भोजी, परिवर्तन, तिरिया–चरित्तर, जरा–सा अविवेक, गाँठ खोल देखी नहीं, असंतोष की जड़, एक केतली गर्म पानी है।

इसमें आपके विचार अत्यन्त ही प्रभावक गद्य में है। आपका गद्य साहित्य करीब 6 हजार पृष्ठों में हैं जो कि विचारात्मक व आत्मचिंतन से जुड़े हुए हैं। आपकी कथाएँ धर्म कथाएँ लिये हैं, जो पुराण पुरुषों पर आधारित है। कुछ कथाएँ सामाजिक, नैतिक एवं आचार–विचार के मूल्य को भी स्थापित करती हैं।

'आप कुछ भी कहो' संकलन में 11 कथाएँ हैं। जिनमें पाँच पौराणिक हैं, शेष सामाजिक हैं।[4] पौराणिकता पर आधारित कहानियों में मौलिकता है, अध्यात्म का पुट है। सामाजिकता पर आधारित कहानियाँ समाज को सही दिशा देती हैं। अतः इस संकलन में कुछ कहानियाँ धार्मिक, कुछ सामाजिक और कुछ पारिवारिक हैं और अध्यात्म तो है ही।

---

1. शास्त्री, डॉ. देवेन्द्र कुमार : भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश कथा काव्य, पृष्ठ 75–76 से उद्धृत।
2. वही, पृष्ठ 77
3. शास्त्री डॉ. नेमिचन्द्र : प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ 443
4. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, सप्तम खण्ड, पृष्ठ 113

डॉ. भारिल्ल ने देश, समाज और संस्कृति को ध्यान में रखकर कहानियों के माध्यम से आत्मदृष्टि को प्रभावित किया। इसलिए इनकी कहानियों को काल्पनिक न कहकर शिष्ट एवं वास्तविक प्रयोगवादी कहानी कहा जा सकता है।[1]

प्रथम 'आप कुछ भी कहो' कहानी के माध्यम से अज्ञानी जगत के असीम अन्धविश्वास को व्यक्त किया गया है। महाराज अत्यंत स्पष्ट शब्दों में कहते जा रहे हैं कि कुष्ठ रोग दूर करने में हमने कुछ भी नहीं किया; फिर भी अज्ञानी जगत यही कहता है कि आप कुछ भी कहो, हम यही मानेंगे कि यह कुष्ठ रोग मिटाने का काम आप ही ने किया है।

दूसरी कहानी अक्षम्य अपराध में यह बताया गया है कि राह चलते मंत्रियों से वाद–विवाद करना ऐसा अक्षम्य अपराध है कि जिसने सात सौ सन्तों का जीवन संकट में डाल दिया।

तीसरी कहानी जागृत विवेक में यह बताया गया है कि महान काम करने वाले व्यक्तियों का विवेक सतत जागृत रहना चाहिए। शिष्यों का विनयशील होना अत्यन्त आवश्यक है, पर विवेक की कीमत पर नहीं।

'अभागा भरत' और 'उच्छिष्ट भोजी' नामक चौथी और पांचवीं कहानी में यह बताया गया है कि बड़ा भाग्य तो जिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि सुनने का अवसर मिलना है, चक्ररत्न की प्राप्ति नहीं।

तात्पर्य यह है कि जिसे हम महाभाग्य समझ रहे हैं, वह महा अभाग्य ही है।

भूतकाल में अगणित लोगों द्वारा भोगी हुई जूठी भूमि को भोगने वाला उच्छिष्ट भोजी है, जूठन खाने वाला है। उसे महाभाग्यवान कैसे कहा जा सकता है।

छठी कहानी 'परिवर्तन' है जिसमें 'आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी' के धर्म परिवर्तन की घटना को दर्शाया गया है।[2]

संकलन की सातवीं कहानी 'जरा–सा अविवेक' सेठ धनपतराय

1. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, सप्तम खण्ड, पृष्ठ 114
2. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 271

एवं पण्डित सुमतिचन्द की मित्रता और मित्रता में आई कटुता का वर्णन है।[1] इसमें यह बताया गया है कि जरा से अविवेक से कितना बड़ा अनर्थ हो सकता है।

जिसप्रकार लाल असली लाल नहीं, किन्तु उस लाल को पहिचानने वाला लाल (पुत्र) है। उसीप्रकार आत्मा को पहिचानने वाला आत्मा ही असली आत्मा है, भगवान आत्मा है।

'असंतोष की जड़' इस कहानी की नायिका अपने जीवन में व्याप्त असंतोष के कारण आत्महत्या पर उतारू है, उसके जीवन का असंतोष तो स्वयं उसकी मान्यता है अर्थात् अपने जीवन–साथी को समझ न पाने में छिपा है।[2]

जिसप्रकार एक केतली गर्म पानी कोई बड़ी समस्या नहीं थी, उसे आसानी से उपलब्ध किया जा सकता था और बालक की आवश्यक आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती थी, उसीप्रकार असन्तुष्ट जनता की आवश्यक मांगों को सहज पूरा किया जा सकता था, अनावश्यक तूल देकर हम समस्या को बड़ी बनाकर जनता को दबाते हैं; वह उचित नहीं है।

चरित्र–चित्रण इस कृति में दो प्रकार के पात्र हैं। नारी पात्र और पुरुष पात्र, जिनके माध्यम से भारिल्ल जी ने विशेष उद्देश्य को प्रस्तुत किया है।

'आप कुछ भी कहो' में ऋषिराज का चरित्र स्वाभाविक गुणों से युक्त है; परन्तु कुष्ठ रोग से पीड़ित होने पर भी उस पर ध्यान नहीं देते। वे 'नमोस्तु' करने वाले के लिए 'धर्मवृद्धिरस्तु'[3] का संदेश देते हैं। इसमें राजा, राजश्रेष्ठ और राजसभा के अनेक सदस्यों का उल्लेख है। इस कथानक से सम्यक् स्थिति का ज्ञान कराया गया है। संत कोढ़ी है जो दिगम्बर साधु भी है जिनकी आलोचना राजसभा में की जाती है।[4] कुछ दिनों के बाद वे वस्तु स्वरूप को जानने वाले

1. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 271
2. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, सप्तम खण्ड, पृष्ठ 116
3. आप कुछ भी कहो, पृष्ठ 9
4. वही, पृष्ठ 11

वादीराज कोढ़ से रहित हो गए यह बात जैसे ही जनसमूह में फैली वैसे ही सम्राट एवं जन–जन का व्यक्ति दर्शनार्थ उमड़ पड़ा। इसमें एक मात्र चरित्र ऋषि का है जो दिगम्बर हैं इस पुरुष चरित्र में सम्राट के नाम का उल्लेख नहीं है।

'अक्षम्य अपराध' में आचार्य अकंपन का चरित्र चित्रण है जो श्रुत अर्थात् शास्त्र के अनुसार या सिद्धान्त के अनुसार संयमी थे। दूसरी ओर मुनि श्रुतसागर शास्त्र के ज्ञाता थे। इसमें श्रुतसागर को ज्ञानी और अकंपन को संयमी साधक कहा है।

जिन्होंने उपसर्ग दूर किया, वे तो उस समय मुनि थे ही नहीं; क्योंकि वे तो उस समय मुनिपद छोड चुके थे।

जागृत विवेक में ध्यानी आचार्य धरसेन का चरित्र–चित्रण है। जिन्हें भारिल्ल जी ने वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, अनुभववृद्ध और गुरु परम्परा से प्राप्त समृद्ध श्रुत परम्परा के धनी माना है।[1] इसमें पुष्पदंत को पुष्प के समान दन्त पंक्ति वाले और भूतबलि को अभूतपूर्व बल वाला कहा है।[2] इनमें पुष्पदंत भूतबलि और धरसेन जैसे आचार्यों के विवेक को प्रतिपादित किया गया है।[3]

'अभागा भरत' में भरत के कर्त्तव्यनिष्ठ होने का कथन किया गया है उनके पिता ऋषभदेव और राजमाता यशस्वती को वात्सल्यमयी माँ कहा गया है।[4] इस कथानक में भरत के राजनैतिक विवेचन की अपेक्षा उनके धार्मिक सद्भाव की विशेषता का उल्लेख है। दिव्यध्वनि श्रवण का अवसर प्राप्त न होने से भरत ने स्वयं को अभागा स्वीकार किया है।

डॉ. भारिल्ल की कहानियों में तत्त्व

1. धार्मिक पौराणिक तत्त्व –

'आप कुछ भी कहो' कहानी संकलन में मूलतः आत्मा से परमात्मा के स्वभाव की पहचान कराने के लिए जो कथन किया है वह उदात्त है। इनके प्रत्येक शीर्षक में तत्त्वज्ञान एवं विशुद्ध आत्मस्वरूप

1. आप कुछ भी कहो, पृष्ठ 23
2. वही, पृष्ठ 24
3. वही, पृष्ठ 25
4. वही, पृष्ठ 28

की भावना है। पौराणिक पुरुष भरत, धार्मिक पुरुष वादीराज, धरसेन, पुष्पदन्त–भूतबली आदि हैं। इनके चरित्र चित्रण में कथाकार ने निम्न महत्त्वपूर्ण कथन को महत्त्व दिया है–

1. आध्यात्मिक चिन्तन में परमात्म दृष्टि। 2. श्रद्धा की अभिव्यक्ति। 3. वास्तविक गुरु की पहचान। 4. हृदय परिवर्तन और जीवन की सार्थकता। 5. सत्य और असत्य का निर्णय । 6. चिन्तामणि का चिन्तन। 7. ज्ञानी के रहस्य का उद्घाटन। 8. मिथ्यात्व का भेदन। 9. आत्मावलोकन के सोपान।

2. प्रतीकात्मक तत्त्व –

प्रतीक योजना कहानी की विषयवस्तु को अत्यधिक उपयोगी बना देती है। वह मार्गदर्शक, प्रेरक और सदाचरण की अभिव्यक्ति भी करते हैं। संगीत, कहानियों एवं उनके प्रवचन साहित्य में प्रयुक्त कथाएँ किसी न किसी तरह के मूल्यांकन को महत्त्व देती है। उदाहरण के लिए 'आप कुछ भी कहो' इसमें शरीर को पुद्गल कहा गया है और रोग भी पुद्गल होते हैं। किसी का चाहा कुछ भी नहीं होता उसी भव में मोक्ष जाने वाले सनतकुमार चक्रवर्ती को भी मुनि अवस्था में सात सौ वर्ष तक कुष्ठ व्याधि रहीं।[1] इसी आशा को लेकर वादीराज के भाव को व्यक्त किया। दिगम्बर धर्म आत्मा का धर्म है, शरीर का नहीं।[2]

'अक्षम्य अपराध' में शब्द को प्रतीक मानकर गुणों की उपयोगिता पर प्रकाश डाला और इस विषय में लिखते हुए कहा साधु मर्यादाओं से युक्त होते हैं।[3]

'जागृत विवेक' में आचार्य धरसेन ने श्रुत परम्परा की सुरक्षा के लिए जो प्रयत्न किया वह अत्यन्त ही सार्थक है, जिन्होंने वृद्ध अवस्था में उत्साही युवा मुनीराजों को चरणों में नतमतस्क पाया।[4]

'अभागा भरत' में शौर्य की अपेक्षा मातृत्व की प्रमुखता है।

डॉ. भारिल्ल ने 'मुझे आपसे कुछ कहना है' की भूमिका में अपनी

1. आप कुछ भी कहो, पृष्ठ 10
2. वही, पृष्ठ 10–11
3. वही, पृष्ठ 19
4. वही, पृष्ठ 22

कहानियों के उद्देश्य को इस तरह व्यक्त किया है–

कथा–साहित्य साहित्य–क्षेत्र की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। सत्य और तथ्य को जन–जन तक पहुँचाने का इससे अधिक सशक्त माध्यम अभी तक कोई दूसरा विकसित नहीं हो सका है। 'सत्य की खोज' की असाधारण लोकप्रियता ने मेरा ध्यान उक्त तथ्य की ओर विशेष रूप से आकर्षित किया है। मैं सत्यार्थदृष्टा, क्रान्तिकारी आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य श्री कानजी स्वामी द्वारा प्रदत्त तत्त्वज्ञान को आत्मसात् करने एवं जन–जन तक पहुँचाने में ही संलग्न रहा हूँ। उनके द्वारा उद्घाटित मूलभूत तथ्यों को, जिनवाणी के मर्म को विवादस्थ विषयों को सुव्यवस्थित रूप से सरल–सुबोध भाषा एवं सुगम शैली में सप्रमाण–लिपिबद्ध करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है।

मैंने कथा–साहित्य की अजेय शक्ति की गहराई में प्रवेश किया, फिर कथा साहित्य को महत्त्व दिया। कथा साहित्य के दो रूप हैं– उपन्यास और कहानी।

कहानी की अपेक्षा उपन्यास का आकार–प्रकार विस्तृत होने के कारण अपनी बात प्रस्तुत करने के लिए उसमें अधिक अवकाश रहता है; तथापि व्यस्तता के इस युग में लोगों को इतना अवकाश कहाँ है, जो लम्बे–लम्बे उपन्यासों को पढ़ सके। आज तो लम्बी कहानियों की अपेक्षा भी लघुकथाएँ अधिक पढ़ी जाती हैं।

सत्यसाहित्य का निर्माण परमसत्य के उद्घाटन के लिए किया जाने वाला महान् कार्य है; अतः इसका पठन–पाठन भी परमसत्य की उपलब्धि के लिए गम्भीरता से किया जाना चाहिए; पर आज इसे मनोरंजन की वस्तु बना लिया गया है। इसप्रकार का दुरुपयोग कथा–साहित्य में सर्वाधिक हुआ है।

इसी प्रकार साहित्य की इस सशक्त विधा के सदुपयोग से यदि हम परमसत्य को जन–जन तक सहज पहुँचा सकते हैं तो दुरुपयोग से अनजान जनता को चमत्कारों के घटाटोप में भी उलझा सकते हैं, मंत्र–तंत्रों के चक्कर में भी फँसा सकते हैं; कुछ नहीं तो मनोरंजन के नाम पर उनके इस महत्वपूर्ण मानव जीवन के अमूल्य क्षणों को यों ही बरबाद तो कर ही सकते हैं।

जैन कथा–साहित्य में भी इसप्रकार की सभी प्रवृत्तियाँ पायी जाती रही हैं। कथा–साहित्य का दिशाबोधक यन्त्र (कुतुबनुमा) तत्त्वज्ञान होता है; क्योंकि कथा–साहित्य का सृजन ही तत्त्वज्ञान को सरल–सुबोध रूप में प्रस्तुत करने के लिए होता है। जिनागम का कथानुयोग (प्रथमानुयोग) भी द्रव्यानुयोग, करणानुयोग एवं चरणानुयोग का पोषक होना चाहिए, होता भी है; किन्तु तत्त्वज्ञानशून्य कथालेखकों ने अपनी चमत्कारप्रियता के कारण उसे विकृत किया है। अथवा यह भी हो सकता है कि अज्ञान के कारण अनजाने में ही ऐसा हो गया हो। जो भी हो, पर मूल कथाबिन्दुओं एवं जैन तत्त्वज्ञान के संदर्भ में उनका पुनर्मूल्यांकन आवश्यक अवश्य है। यह कथन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित प्रथमानुयोग के बारे में नहीं, मध्यकालीन भट्टारकीय प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में समझना चाहिए।

प्रस्तुत प्रकाशन में संगृहीत कहानियों में इसप्रकार के कुछ बिन्दुओं को स्पर्श किया गया है; जिनमें आप देखेंगे कि कथानक सम्पूर्णतः उसी रूप में होने पर भी दिशाबोध एकदम बदल गया है।

'आप कुछ भी कहो' नामक प्रथम कहानी इसका सर्वाधिक सशक्त उदाहरण है, जिसमें उपलब्ध कथानक के मूल ढाँचे को सम्पूर्णतः उसी रूप में रखे जाने पर भी प्रचलित कहानी का कायाकल्प हो गया है। कहानी की थुलथुल काया से चमत्कारिक कल्पनाओं की अनावश्यक वसा (चर्बी) सम्पूर्णतः विसर्जित हो गई है एवं उसके अंग–अंग में तात्त्विक तेज प्रस्फुटित हो उठा है। चमत्कारिक उपलब्धियों से सम्पूर्णतः इन्कार कर दिये जाने पर भी तेजस्वी गुरु का तेज व गौरव कम नहीं होने पाया है, अपितु द्विगुणित हो उठा है।

'आप कुछ भी कहो, पर हम तो इसे आपका चमत्कार ही मानेंगे' – इस अन्तिम वाक्य ने अज्ञान की जड़ें कितनी गहरी होती हैं – इस तथ्य को जिस सुन्दरता के साथ उजागर किया है, उससे समस्त चमत्कारिक कल्पनाओं की वास्तविक स्थिति सहज ही स्पष्ट हो जाती है।

गुण और दोष सम्बन्धी तात्त्विक अज्ञान के कारण कभी–कभी हम अक्षम्य अपराधों को भी गुणों के रूप में स्मरण करने लगते हैं। भूमिकानुसार आचरण सम्बन्धी ज्ञान के अभाव में भी इसप्रकार की भूलें होती हैं।

साधु पुरुषों को अपने व्यवहार और विकल्पों की सीमा को पहिचानना ही चाहिए। समाज और देश में उत्तेजना फैलाने वाले कार्य श्रमणभूमिका में तो अक्षम्य अपराध ही हैं।

यद्यपि मोह–राग–द्वेष और तत्सम्बन्धित समस्त सदसदाचरण अपराध ा ही हैं; तथापि साधु और श्रावकों में अपनी–अपनी भूमिकानुसार सीमित राग–द्वेष तो पाये ही जाते हैं; पर ध्यान रहे पाये जाने मात्र से वे गुण नहीं हो जाते, रहते तो दोष ही हैं, उन्हें दोष नहीं मानना अपराध है। यदि वे दोष नहीं होते तो तदर्थ प्रायश्चित्त क्यों लेना पड़ता है ?

'अक्षम्य अपराध' कहानी इस तथ्य को उजागर करती है।

सद्भाग्य और दुर्भाग्य की सच्ची समझ भी कितने लोगों को होती है ? लौकिक वैभव एवं भोगसामग्री की उपलब्धि ही जिनका ध्येय है, येन–केन प्रकारेण इन्हें प्राप्त कर लेने वाले ही जिन्हें भाग्यशाली दिखते हैं; चक्रवर्ती भरत के अन्तरंग को अभिव्यक्त करने वाली 'अभागा भरत' और 'उच्छिष्ट भोजी' कहानियाँ उनकी आँखें खोल देने के लिए पर्याप्त हैं, बशर्ते उनकी ज्योति ही समाप्त न हो गई हो।

प्रस्तुत प्रकाशन में ग्यारह कहानियाँ संगृहीत हैं; जिनमें से कुछ तो ऐतिहासिक एवं पौराणिक आख्यानों के आधार पर लिखी गई हैं, शेष काल्पनिक हैं।

पौराणिक आधारों पर लिखी गई कहानियों में कथानक के मूल बिन्दुओं को पूर्णतः सुरक्षित रखते हुए, उसके आन्तरिक मर्म को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया गया है। पात्रों की आन्तरिक कमजोरियों एवं कमियों के उद्घाटन में यह सावधानी सर्वत्र बरती गई है कि उनकी गरिमा को आँच न आने पावे। चक्रवर्ती भरत को अभागा और उच्छिष्ट भोजी बताये जाने पर भी उनका गौरव खण्डित नहीं होने पाया है।

आद्य चक्रवर्ती सम्राट भरत का चरित्र प्रथमानुयोग (जैन कथा –साहित्य) का एक ऐसा अद्भुत चरित्र है; जिसमें चरणानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग एवं जिन–अध्यात्म में वर्णित चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरतसम्यग्दृष्टि श्रावक के जीवन (आचार–विचार एवं व्यवहार) के

प्रत्येक चरमबिन्दु को स्पर्श किया गया है।

'उच्छिष्ट भोजी' कहानी के अन्त में समागत भरत का यह कथन उनके अन्तर का परिचय देने के लिए पर्याप्त है –

"माँ, तेरे भरत का राग चाहे उसके वश की बात न हो; पर उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान–विवेक धोखा नहीं खा सकता। भले ही भरत इस चक्रवर्तित्व को छोड़ न सके, पर इसमें रहकर गर्व अनुभव नहीं कर सकता, इसमें रम नहीं सकता। चक्रवर्तित्व भरत का गौरव नहीं; मजबूरी है, मजबूरी।"

काल्पनिक कहानियों में पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं को स्पर्श किया गया है।

जहाँ एक ओर 'असन्तोष की जड़' और 'जरा–सा अविवेक' कहानियाँ जरासी भूल एवं अपरिपक्व व्यवहार के कारण होने वाले पारिवारिक कलह एवं सामाजिक विघटन के चित्र प्रस्तुत करती हैं तो 'तिरिया –चरित्तर' यह स्पष्ट करती है कि **कोरे शब्दों के संग्रह का नाम पाण्डित्य नहीं है, ज्ञान की गरिमा अनुभव से प्राप्त होती है।**

'जागृत विवेक', 'परिवर्तन' एवं 'गाँठ खोल देखी नहीं' कहानियाँ भी कोरी कहानियाँ नहीं हैं, उनमें भी कुछ कहने का प्रयास किया गया है।

'जागृत विवेक' कहानी में विद्यार्जन में विनय और विवेक के स्थान का निर्धारण हुआ है। आचार्य धरसेन के निम्नांकित कथन में सब–कुछ आ गया है –

"यद्यपि विवेक का स्थान सर्वोपरि है, किन्तु वह विनय और मर्यादा को भंग करने वाला नहीं होना चाहिए। विवेक के नाम पर कुछ भी कर डालना तो महापाप है; क्योंकि निरंकुश विवेक पूर्वजों से प्राप्त श्रुतपरम्परा के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।"

इसीप्रकार 'गाँठ खोल देखी नहीं' कहानी की निम्नांकित पंक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य हैं –

"सड़कों पर, गलियों में घूमते दर–दर की ठोकर खाते

चेतन लालों की कीमत आज किसको है ? आज तो सभी जड़ रत्नों के पीछे भाग रहे हैं। आज कौन–सा घर इन चेतन लालों से खाली है ? कमी लालों की नहीं; उन्हें पहिचाननेवालों की है, सँभालने वालों की है। दूसरों की बात जाने दीजिए; हम स्वयं लाल हैं, पर अपने को पहिचान नहीं पा रहे हैं।"

कहानी की विषयवस्तु चाहे कुछ भी हो, मेरी रुचि का विषय और जीवन का अभिन्न अंग होने से अध्यात्म तो तिल में तेल की भाँति इन सभी कहानियों में सर्वत्र अनुस्यूत है ही। यह भी कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि **कथानक तो मात्र बहाना है, मूल प्रतिपाद्य तो अध्यात्म ही है।**[1]

मानवीय गुणों की विवेचना

विचार व्यक्ति को शिक्षित, तेजस्वी, धार्मिक, चिन्तनशील, ज्ञानी, विवेकी एवं अध्यात्म प्रेमी बनाता है। "नाणं नरस्स सारो" ज्ञान मनुष्य का सार है इसके बिना किसी भी तरह के गुण प्रकट नहीं होते। यही नहीं अपितु आगमों में ज्ञान को प्रथम स्थान दिया गया और कहा गया है कि ज्ञान के पश्चात् आचरण होता है।[2] इसी तरह यह भी कहा है "नाणेण विणा न हुंति गुणा" ज्ञान के बिना चारित्र नहीं होता।[3] आचार को विशुद्ध बनाने के लिए विचारों की, ज्ञान की परिपक्वता आवश्यक है। ज्ञान आत्मा की चिन्तन शक्ति है और यही विचार शक्ति को बढ़ाने वाली होती है।

डॉ. भारिल्ल के सम्पूर्ण विचारों में अनेक प्रकार के मानवीय मूल्यों के कारणों का समावेश है। उनके विचारों में धर्म, भारतीय दर्शन एवं मनोविज्ञान के विभिन्न आयाम भी समाहित हैं, जिसे सामान्य रूप से मन को जागृत, सुसंस्कृत एवं आध्यात्मिक मूल्यों से श्रेष्ठ माना गया है। विचारकों ने मानवीयता को प्रथम स्थान दिया है। मानवता की प्राप्ति के पश्चात् जितने भी विचारक हैं, उनके विचारों में श्रद्धा

1. आप कुछ भी कहो, पृष्ठ 1 से 8 तक
2. दशवैकालिक 4/10
3. उत्तराध्ययन 29/59

अति आवश्यक बतलाई गई है। मानवीयता और श्रद्धा के साथ–साथ संयममय जीवन को अत्यन्त संस्कारित कहा गया है। उसी से विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ होती हैं। मानवीयता, श्रद्धा, संयम और शक्तियाँ चार गुण यदि हैं तो वही मनुष्य कहला सकता है। इसी के कारण उसे मनन, चिन्तन में तल्लीन रहने वाला प्राणी भी कहते हैं।[1] अथर्ववेद में उसे दिव्य कोष और प्रकाश से परिपूर्ण माना है।[2] सामवेद में मनुष्य को देवताओं से भी श्रेष्ठ कहा गया है। इसी तरह महाब्राह्मण[3], ऐतरेय उपनिषद[4], मनुस्मृति[5], रामचरित मानस आदि में उसकी श्रेष्ठता के गुण गाए गए हैं। कहा है–

बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सद्ग्रंथन गावा।[6]

उसे शक्तिपूज्य भी कहा है क्योंकि वही सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतरागी एवं भगवान आत्मा बन सकता है। इसलिए देव से भी उसे श्रेष्ठ माना गया। उसमें ब्राह्मी शक्ति और आश्यान्तर[7] शक्ति दोनों ही होती है। आत्म शक्ति से दिव्य तेज उत्पन्न होता है जिसे प्राप्त करना अत्यन्त कठिन एवं दुर्लभ कहा है। आगे बढ़ने, प्रगति करने[8], जागृत रहने और परमात्म स्वरूप की प्राप्ति करने में मानवीयता है। आगम–स्वाध्याय, श्रद्धा एवं साधना भी मानवीयता का गुण है।

मानवीय जीवन मूल्य

"जीवन मूल्य किसी भी समाज के वास्तविक विकास के बैरोमीटर होते हैं, और बैरोमीटर की इकाइयों की प्रतिच्छाया उस समाज के साहित्य, विशेषकर उपन्यास पर निरंतर पड़ती रहती है। इसलिए एक भाषा के उपन्यास–साहित्य में जीवन मूल्यों को तलाशना उस

1. सौभाग्यमल–जीवन और विचार, पृष्ठ 275, प्रका. जैन साहित्य प्रकाशन, रतलाम, 1969
2. अथर्ववेद 10/2/31
3. महाब्राह्मण 6/9/2
4. ऐतरेय उपनिषद् 1/2/3
5. मनुस्मृति 299/20, प्रका. चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1976
6. रामचरितमानस – गीता प्रेस गोरखपुर, 2002
7. स्थानाङ्ग सूत्र 3/3
8. उत्तराध्ययन सूत्र 10/4

समाज के सांस्कृतिक उन्नयन के ग्राफ और साहित्य की प्रासंगिकता को ही परखना है।"[1]

मानवीय मूल्य और उसकी अवधारणा

'मानवीय मूल्य' का अर्थ जानना, अलग–अलग दृष्टि से देखना होता है। जीवन–मूल्य का जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है; क्योंकि बिना मूल्यों के जीवन नीरस होता है। जीवन एवं मूल्य एक दूसरे के पूरक हैं जो गति व विकास की तरफ ले जाते हैं। सम्पूर्ण सामाजिक संगठन और व्यवस्था का आधार जो कुछ है, वही मानवीय मूल्य है।[2]

मूल्य का वास्तविक अर्थ चिन्तन है।

मूल्य शब्द और उसकी निरुक्तियाँ –

'मूल्य' शब्द 'मूल' धातु के साथ 'मत' प्रत्यय से बना है, जिसका अर्थ प्राप्ति, कीमत, मजदूरी[3] मूलेन आनाश्यते अभिभूयते मूलेन समं वा इति। "मूल" किसी वस्तु के बदले में मिलने वाला धन कीमत।"[4]

'मूल्य' शब्द अंग्रेजी के 'VALUE' लेटिन के 'VALERE' से बना है, जिसका अर्थ अच्छा एवं सुन्दर है। अर्थात् 'मूल्य' शब्द के अर्थ में शिव और सुन्दर सन्निहित रहते हैं।[5] मूल्य शब्द नीति शास्त्रीय दृष्टि से 'VALUE' है।[6]

मानवमूल्य स्वरूप और विश्लेषण

मूल्यवान वस्तु की कामना मूल्य है। किसी भी इच्छा या आवश्यकता के पूरक मूल्य है। आत्मविश्वास अथवा आत्मानुभूति भी मूल्य है।[7]

---

1. डॉ. शर्मा मोहनी–हिन्दी उपन्यास व जीवन मूल्य, पृष्ठ 4
2. The Social structure of values, Dr. R.R. Mukherji, P. 21
3. संस्कृत हिन्दी कोश–वामन शिवराम आप्टे, पृष्ठ 812, प्रका. मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 2006
4. हिन्दी विश्व कोश, सं. श्री नगेन्द्रनाथ बसु, पृष्ठ सं. 238–391
5. Philosophy of values, The cultural Heritage of India, M. Hirriyana, P. 645
6. हिन्दी साहित्य कोश भाग–1, प्रधान सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ सं. 604
7. Fundamentals of Ethics, W.M. Vrban, P. 16- 18

पूर्ण विकास और गति भी मूल्य है। जीवन के प्रति कुछ निश्चित लक्ष्य भी मूल्य है। मूल्य न तो किसी मशीन द्वारा उत्पादित वस्तु है और न ही यह किसी सरकार द्वारा निर्मित कानून है। मूल्य एक अंतर्दृष्टि है, एक अवधारणा है, एक दृष्टिकोण है।[1] प्राणी चिन्तन भी मूल्य है।[2] मूल्य एक वैचारिक इकाई है, एक दृष्टिकोण है जो कि विवेकशील मानव के चिन्तन का परिणाम है। मूल्य का अर्थ है जीवन[3] जो कुछ भी इच्छित, वांछित है वही मूल्य है।[4] लक्ष्य, सत्यं, शिवम्, सुन्दरम्, विचारणा, चिन्तन भी जीवन मूल्य है। मानव मूल्य जीवन के प्रति दृष्टिकोण है। मनुष्य का व्यक्ति, समाज और वस्तु के साथ एक वैचारिक सम्बन्ध है। मनुष्य की मूल–प्रवृत्तियाँ हैं।

पाश्चात्य एवं भारतीय विचार

भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही धाराओं के अन्तर्गत मूल्य मीमांसा का विषय है। यह एक स्वतंत्र विज्ञान है। 'मूल्य–मीमांसा' अंग्रेजी शब्द यूनानी शब्द 'एक्सियस' और 'लागस' से बना है। 'एक्सियस' का अर्थ मूल्य या कीमत है तथा 'लोगस' का अर्थ तक, सिद्धान्त या मीमांसा है। 'मूल्य' चेतन का गम्भीर तत्त्व है।[5] मूल्य अर्थात् लक्ष्य मानव को संयमित, सुखद बनाता है। मूल्य–चिन्तन है।

भारतीय विचार

भारतीय दर्शन में अभिव्यक्ति स्वीकार करना भी मूल्य है। आध्यात्मिक दृष्टि एवं समत्वमूलक पुरुषार्थ है। मूल्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष है। आध्यात्मिकता और स्वतंत्रता मूल्य है।[6] भारतीय दर्शन शरीर, मन बुद्धि और आत्मा इन तत्त्वों को जीवन का प्राचीनतम मूल्य मानता है।

"The philoshphar who is engaged in that franch of philosophy knowns 'theory of value' is distinguished by the fact that the word

1. The intuitive Philosophy Rohit Mehta, P. 39-A
2. उदृत – आधुनिक काय में नवीन जीवन मूल्य, डॉ. हुकमचन्द राजपाल, पृष्ठ 16
3. कुमार विमल – आलोचना (पत्रिका) अक्टूबर–दिसम्बर, 1967, पृष्ठ 64
4. The social structure of values, R.K. Mukherji, P. 21
5. Contemporary Philosophic prpbilms, R.S. rerry, P. 488
6. The Indian Minded, C.A. Moor, P. 153

which is most careful about is the word 'value' contemporary philosophic problems. R.S. Rerry, P. 488 The Indian Scheme of values recognizes four human ends 'resuscitate' they are Wealth (Artha) pleasure (kama) Righteousness (epooma) and perfection spiritual freedom Gnukisha" The Indian minded C.A. Moor. P. 153

डॉ. भारिल्ल के उपन्यास और कहानियों में विविध प्रकार के विचार तत्त्व हैं, जिनमें मानवीय मूल्यों से जुड़े हुए निम्न तत्त्व भी हैं– इसमें विनय, वैराग्य, संयम, श्रमणधर्म, गुरु–शिष्य, इन्द्रियनिग्रह, मनोनिग्रह, श्रावकधर्म, साधकजीवन और राग–द्वेष परिणामों की समाप्ति का संदेश भी है।

विनय तत्त्व

गुरु की आज्ञा, निर्देश का पालन, गुरु की समीपता और मनोभाव को समझना विनय है।[1] बड़ों के प्रति सदा सम्मान, सेवा भाव, शील, सदाचरण एवं प्रिय व्यवहार का नाम विनय है।[2] विनय को धर्म का मूल भी कहा गया है। अनुशासन का नाम भी विनय है। विनय तप भी है और श्रेष्ठ धर्म भी है।[3]

'सत्य की खोज' में विनय को विवेक कहा है।[4] सरल स्वभाव, मनोगत भाव एवं बुद्धिमान की आकृति को देखना भी विनय कहा गया।[5] विनय के बिना तो विद्या प्राप्त होती ही नहीं है।[6] पर विवेक और प्रतिभा भी अनिवार्य है, इनके बिना भी विद्यार्जन असम्भव है। गुरु के प्रति आदर्श आस्था का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, पर वह आतंक की सीमा तक नहीं पहुँचना चाहिए, अन्यथा वह विवेक को कुण्ठित कर देगी।

तीक्ष्ण बुद्धि और विनय से व्याकरण, साहित्य, गणित, न्याय, सिद्धान्तादि शास्त्रों का समुचित अभ्यास भी होता है। बड़ों की मर्यादा विनयशील युवक कभी नहीं छोड़ते।[7] रूपमती एक श्राविका थी जो अपने सास–श्वसुर को माँ–बाप के समान आदर–सम्मान देती,

1. उत्तराध्ययन 1/2
2. दशवैकालिक 9/2/3
3. प्रश्न व्याकरण 2/3
4. सत्य की खोज, पृष्ठ 1
5. वही, पृष्ठ 4
6. वही, पृष्ठ 25
7. वही, पृष्ठ 3

सेवा–शुश्रुषा करती।[1] नारियाँ सहज ही श्रद्धामयी होती है। रूपमती भी आस्थावान थी।[2]

इनकी कहानियों में भी विनय का किसी न किसी रूप में स्थान है। 'नमोस्तु' विनम्रता का सूचक है यह श्रावक के द्वारा साधु को देखकर की गई वंदना है।[3] 'धर्मवृद्धिस्तु' इस शब्द में विनीत शिष्य के लिए मंगल आशीर्वाद है।[4] सदाचारी सन्तुलित–विवेक और विनयशील मर्यादाओं से समृद्ध होते हैं।[5]

वैराग्य तत्त्व

इन्द्रिय विषय के साथ–साथ समस्त परिवार, कुटुम्ब आदि से विरक्त होना वैराग्य कहलाता है। वैराग्य में सम बुद्धि होती है और मनुष्य का जीवन, शरीर, संसार आदि से निरपेक्ष होता है।[6]

डॉ. भारिल्ल के उपन्यास में वैराग्य तत्त्व का भी समावेश है। इसमें शक्ति को अनुराग कहा है और वीतरागी परमात्मा की उपासना को वैराग्य कहा है। वीतरागी भक्त कुछ मांगता तो नहीं है। जो विरागी या विरक्त होते हैं, वे भविष्य में वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी होते हैं।[7] वे यहाँ तक भी कहते हैं कि ज्ञानी महापुरुष के ज्ञान और वैराग्य रस से सीमातीत आनन्द होता है।[8]

"भरत जी घर में ही वैरागी, वे तो अन–धन सबके त्यागी।"

"भविजन होय सोइ उरधारो, सोई पुरुष बड़भागी"[9]

घर में रहते हुए भी भरत का वैराग्य उत्कृष्ट माना गया है।[10]

संयम तत्त्व

संयम धर्म की उत्कृष्ट आराधना है। जिससे जीव संसार सागर

---

1. सत्य की खोज, पृष्ठ 9
2. वही, पृष्ठ 13
3. आप कुछ भी कहो, पृष्ठ 9
4. वही, पृष्ठ 9
5. वही, पृष्ठ 25
6. सूत्रकृतांग 1/9/7
7. आप कुछ भी कहो, पृष्ठ 20–21
8. वही, पृ. 147
9. वही, पृष्ठ 34
10. वही, पृष्ठ 36

से पार होते हैं।[1] संयम के चार भेद कहे गए हैं मन संयम, वचन, संयम, काय संयम और उपकरण संयम।[2]

'अक्षम्य अपराध' नामक कहानी में संयम के विषय में कहा है 'श्रुत के सागर में लीन होना संयम है।'[3] संयमन को 'संयम' कहते हैं। संयमन अर्थात् उपयोग को परपदार्थ से समेट कर आत्मसन्मुख करना, अपने में सीमित करना, अपने में लगाना। उपयोग की स्वसन्मुखता, स्वलीनता ही निश्चय संयम है। अथवा पाँच व्रतों का धारण करना, पाँच समितियों का पालन करना, क्रोधादि कषायों का निग्रह करना, मन–वचन–कायरूप तीन दण्डों का त्याग करना और पाँच इन्द्रियों के विषयों को जीतना संयम है।[4] उन्होंने प्राणीसंयम और इन्द्रिय संयम ये दो भेद किए हैं।

श्रमण धर्म

श्रमण को साधु कहते हैं वे अनगार यति भी कहलाते हैं डॉ. भारिल्ल ने साधु/श्रमण की निम्न परिभाषा दी है– आत्मस्वभाव को साधते हैं, बाह्य 28 मूलगुणों को अखंडित पालते हैं, समस्त आरम्भ और अंतरंग बहिरंग–परिग्रह से रहित होते हैं, सदा ज्ञान–ध्यान में लवलीन रहते हैं, उन्हें साधु कहते हैं।[5] आचार्यों ने साधु के विषय में लिखा है जो दर्शन और ज्ञान से पूर्ण मोक्ष के मार्ग भूत शुद्ध चारित्र को साधते हैं वे साधु कहलाते हैं।[6] वे भुक्षू, अनगार, यति, मुनि, ऋषि आदि कहलाते हैं; उन्हें श्रमण भी कहते हैं।[7] शत्रु–मित्र के प्रति समभाव रखने वाले साधु सच्चे साधु हैं। वे विरागी समस्त अंतरंग–बहिरंग परिग्रह का त्याग करते हैं और शुद्धोपयोग रूप मुनिधर्म अंगीकार करते हैं।[8] साधु आदेश नहीं देते वे तो परहित की भावना से मात्र

1. उत्तरा सूत्रकृतांग 1/15/24
2. स्थानांत्रा 4/2
3. आप कुछ भी कहो, पृष्ठ 19
4. धर्म के दस लक्षण, पृष्ठ 63
5. बाल बोध पाठमाला, भाग–3, पृष्ठ 10
6. द्रव्य संग्रह गाथा 54
7. जिनेन्द्र वर्णी– जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग–4, पृष्ठ 403
8. सत्य की खोज, पृष्ठ 65

उपदेश देते हैं, वह भी उनका मुख्य कार्य नहीं है, मुख्य कार्य तो ध्यान और अध्ययन है।[1]

गुरु–शिष्य संबंधी विचार

डॉ. भारिल्ल का चिन्तन अत्यन्त ही मार्मिक और सामाजिक मूल्यों से जुड़ा हुआ है, इसलिए उन्होंने अपने चिन्तन में गुरु और शिष्य को विशेष महत्त्व दिया है। उन्होंने गुरु के प्रति अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है– गुरु सहज सरलता के धनी होते हैं। वे अगाध पाण्डित्य से पूर्ण गम्भीर विचारों वाले होते हैं।[2] जागृत विवेक में गुरु और शिष्य दोनों की दृष्टि को प्रस्तुत किया है। उन्होंने गुरु को वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, अनुभववृद्ध, गुरुपरम्परा से प्राप्त समृद्ध श्रुतपरम्परा के धनी आचार्य भी गुरु होते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करते हुए लिखा है– तुम्हारा आत्मा ही तुम्हारा वास्तविक गुरु है। पुष्पदन्त और भूतबलि जैसे गुरु श्रुत में गम्भीर होते हैं।

शिष्य सदाचारी, सन्तुलित–विवेक और विनयशील मर्यादाओं से युक्त होते हैं।[3]

इन्द्रिय निग्रह

इन्दतीति इन्द्र आत्मा। इन्द्र आत्मा को कहते हैं। इन्द्र लिंग का नाम है। इन्द्र से जिसकी रचना होती है उसे इन्द्रिय कहते हैं। इसे अक्ष भी कहते हैं।[4] इन्द्रिय के विषय को रोकना इन्द्रियनिग्रह है। डॉ. भारिल्ल ने शरीर के चिह्न को इन्द्रिय कहा है जो शरीर के चिह्न आत्मा का ज्ञान कराने में सहायक हों वे इन्द्रियाँ हैं।[5]

मनोनिग्रह

मन को एकाग्र करना मनोनिग्रह कहलाता है। संयमशील साधु का संमरम्भ, समारम्भ और आरम्भ की प्रवृत्ति को रोकना मनोनिग्रह है। "एक आत्मा ही उपादेय है, वास्तविक अर्थों में एकमात्र वही ध्येय

1. सत्य की खोज, पृष्ठ 178
2. वही, पृष्ठ 17
3. आप कुछ भी कहो, पृष्ठ 25
4. सर्वार्थसिद्धि, 1/14/185
5. बालबोध पाठमाला भाग–3, पृष्ठ 14

है, वही ज्ञेय है, वही आराध्य है और समस्त जगत हेय है, अध्येय है, अज्ञेय है, अनाराध्य है। आत्मार्थी का एकमात्र कर्त्तव्य समस्त जगत् पर से दृष्टि हटाकर एकमात्र त्रैकालिक ध्रुव निजशुद्धात्मतत्त्व पर ही दृष्टि केन्द्रित करना है। अतीन्द्रिय सुख और आत्म–शान्ति प्राप्त करने का एकमात्र उपाय यही है।"[1]

श्रावक धर्म

जो श्रद्धापूर्वक गुरु आदि से धर्म श्रवण करता है वह श्रावक है। वे पंचपरेष्ठी का उपासक, देव और शास्त्र का आराधक स्वाध्याय, संयम, तप और दान विधिपूर्वक जीवन व्यतीत करता है वह श्रावक है।

डॉ. भारिल्ल ने श्रावक की निम्न परिभाषा दी है– जो अनन्तानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय के अभाव में अपने में देशचारित्र स्वरूप आत्मशुद्धि प्रकट करता है, तब वह व्रती श्रावक कहलाता है।[2]

कथा के प्रत्येक पात्र श्रावक से जुड़े हुए हैं। "आप कुछ भी कहो" में श्रेष्ठीराज श्रावक भी हैं वे विनम्र भाव से नमोंस्तु करते हैं उन्हें धर्मवृद्धिरस्तु का आशीष प्राप्त होता है। इसी में यह भी कहा है कि जो विकल्पों से युक्त होता है वह गृहस्थ होता है।[4] गृहस्थ को श्रावक भी कहा जाता है। अक्षम्य अपराध में विवेक एक श्रावक है जो किसी के विवाद में नहीं उलझता है। वह अपने गुरु की गुरुता को खण्डित नहीं होने देना चाहता है।[5] जागृत विवेक में एक श्रावक को कर्मठ एवं बुद्धिमान कहा गया, जो आराधना को अभीष्ट मानता है।[6] अभागा भरत इस कथानक में ऋषभ के दोनों पुत्र व राजमाता यशस्वती श्रावक के गुणों का पालन करते हैं। भरत राजनीति करते हुए भी श्रावक धर्म का पालन करते हैं।

देश की अखण्डता के लिए मात्र जमीन ही जीतना जरूरी नहीं होता, जनता का दिल भी जीतना होता है। धर्मप्राण जनता धार्मिक सद्भाग्य से ही समर्पित होती है।[7]

1. सत्य की खोज, पृष्ठ 142
2. सागार धर्मामृत 1/15–16
3. आप कुछ भी कहो, पृष्ठ 10
4. वही, पृष्ठ 19
5. वही, पृष्ठ 23
6. वही, पृष्ठ 29
7. आप कुछ भी कहो, पृष्ठ 32

यशस्वती माँ नन्दा उच्च श्राविका है, जो सत्य और असत्य का निर्णय करती है अपने पुत्र को जीवन की सार्थकता पर प्रकाश डालती है।

माँ की आज्ञापूर्वक वह विचार करता है– चित्त कोई जमीन नहीं, जिसे बल से, वैभव से, पुण्य–प्रताप से जीत लिया जाये। चित्त को जीत लेने वालों को छह खण्डों की नहीं, अखण्ड आत्मा की प्राप्ति होती है। अखण्ड आत्मा की उपलब्धि ही जीवन की सार्थकता है।[1]

श्रावक के व्रत

व्रत बारह प्रकार के होते हैं। उनमें हिंसादि पाँच पापों के एकदेश त्यागरूप पाँच अणुव्रत होते हैं। अणुव्रतों के रक्षण और उनमें अभिवृद्धिरूप तीन गुणव्रत तथा महाव्रतों के अभ्यासरूप चार शिक्षाव्रत होते हैं।[2]

सत्य की खोज में अर्हत्दास श्रेष्ठी श्रावक के नियम का पालन करते हैं। उनकी पत्नी जिनमती भी श्राविका धर्मयुक्त जिनोपदिष्ट आचार– विचार से प्रवर्तन करने वाली धार्मिक महिलारत्न थी।[3]

ज्ञानी श्रावक के बारह व्रत होते हैं – अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रहपरिमाणव्रत; दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डव्रत; सामायिकव्रत, प्रोषधोपवासव्रत, भोगोभोग–परिमाणव्रत, अतिथिसंविभागव्रत हैं।

राग–द्वेष परिणाम

जीवन का यथार्थ राग–द्वेष से नहीं प्रकट होता। दूसरों का उपकार सज्जनों की विभूतियाँ हो सकती हैं। दैनिक दृष्टि से उचित हो सकते हैं, परन्तु राग और द्वेष दोनों ही व्यक्ति की वास्तविकता को ही समाप्त कर देते हैं। कषाय–राग है–अशुभ भाव भी राग है और शुभ भाव भी रागहै। दोनों ही राग हैं।[4] जिन्हें प्रशस्त और अप्रशस्त राग कहा जाता है। इष्ट विषयों की आसक्ति भी राग है प्रीत और अप्रीत भी राग–द्वेष है।

---

1. वीतराग विज्ञान भाग–3, पृष्ठ 23
2. सत्य की खोज, पृष्ठ 1
3. वही, पृष्ठ 65
4. नियमसार गाथा 66

डॉ. भारिल्ल के उपन्यास 'सत्य की खोज' में राग और द्वेषादि भावों को उचित नहीं माना। उन्होंने इसी दृष्टि को समझाते हुए लिखा है कि राग धर्म नहीं है और न द्वेष ही धर्म है। धर्म का मर्म तो वीतराग वाणी है।[1] एक अन्य स्थान पर भी कहा है– विभिन्न पदार्थों की एकता का ज्ञान और राग–द्वेषोत्पादक विचार न तो वास्तविक तत्त्वज्ञान है और न तत्त्व विचार। भेद–विज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है और वीतरागता ही वास्तविक चारित्र।[2] राग की हेयता और उपादेयता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "अव्रती और व्रती ज्ञानी के भूमिकानुसार पर्याय में रागांश विद्यमान रहने पर भी, वह उन्हें उपादेय नहीं मानता, विधेय भी नहीं मानता। उपादेय और विधेय नहीं मानने पर भी, नहीं चाहने पर भी, भूमिकानुसार पर्याय में राग आता ही है, टलता नहीं। यह कैसी विचित्र स्थिति है। विचित्र है, पर है।[3]

संयोग से राग होता है। इसप्रकार उन्होंने राग–द्वेष दोनों को ही उपादेय नहीं कहा।[4]

जैनधर्म के प्रभावकारी कारक

धर्म जीवन का शुद्ध सद्गुण का आधार है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्रत, तप आदि सभी होते हैं। इसमें सदाचारी और सुखी बनाने के साधन होते हैं। धर्म उत्कृष्ट मंगल माना गया। जहाँ धर्म होता है वहाँ सभी प्रकार का सम्यक् स्वरूप होता है। जो धर्म की रक्षा करता है उसकी सभी तरह से रक्षा होती है।।[5] धर्म आत्मा का स्वभाव है, जो इसे जानता है वह उत्तम गुणों को प्राप्त होता है। धर्म में समभाव होता है जिसे आत्मा का श्रेष्ठ गुण कहा गया है। आचार्य कुन्दकुन्द ने दर्शन, ज्ञान और चारित्र को आत्मा का उत्कृष्ट आश्रम कहा, जिसमें प्रवेश करके अतिशयता, अनुपम–भाव और अनन्त शक्तियों को प्राप्त कर लेता है।[6]

1. सत्य की खोज, पृष्ठ 78
2. वही, पृष्ठ 92
3. सत्य की खोज, पृष्ठ 153
4. वही, पृष्ठ 158
5. उत्तराध्ययन 14/40
6. प्रवचनसार भाग–1, पृष्ठ 7–15, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, प्रका. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

डॉ. भारिल्ल के उपन्यास एवं कहानियों में धर्म, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, ज्ञान, श्रद्धा, तप, भावना, साधना, भक्ति समभाव, सम्यग्दर्शन, वीतराग भाव, तत्त्व–स्वरूप, आत्मा, मोक्ष आदि के विषय मानवीय जीवन की यथार्थता को प्रकट करते हैं।

धर्म तत्त्व और तत्सम्बन्धी विचार

धर्म परम्परा नहीं स्वपरीक्षित साधना है।[1] धर्म व्यक्तिगत विश्वास है।[2]

अहिंसा

'सत्य की खोज' में सत्य पर विशेष महत्त्व दिया गया; यह सर्वविदित और यथार्थ भी है; परन्तु इसके विवेचन में जो समरम्भ, समारम्भ और आरम्भ की प्रवृत्ति है, वह लौकिक है, जो आचार–विचार की पुष्टि नहीं करते। अहिंसा धर्म है जो लालसा से रहित, कल्पनाओं से परे और विवेक की वास्तविकता को दर्शाता है। अहिंसक विवेक है जो गृहस्थ जीवन में प्रवेश करके अपने जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करता है, देश और समाज का भला करना भी अहिंसा है। रूपमती अपने सास–ससुर की सेवा करती है। वह सेवा भी अहिंसा है।

क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों घातक हैं, इससे किसी का भला नहीं होता। संघर्ष, कषाय भाव है इसी दृष्टि को लेकर के कहा है– कषाय भाव संघर्ष है जो अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न करता है। इसकी जीत सच्ची जीत है। इसी तरह जीवन सुधारना भी अहिंसा है इस विषय में लिखा है– हमें मरण नहीं, जीवन सुधारना है। जिसका जीवन नहीं सुधरा, उसका मरण कैसे सुधर सकता है। आखिर मरण दो जीवनों की संधि ही तो है। जब जीवन ठीक है तो मरण भी ठीक होगा ही। संयोगों के अभाव को भी अहिंसा कहा है। इसी तरह के भावों को लेकर कहा है– संयोगों के जुटाने से सुख नहीं मिलता, किन्तु संयोगों पर से दृष्टि हटाकर स्वभावोन्मुख करने से ही सत्य, सुख व सन्तोष की प्राप्ति होती है। स्वभावदृष्टिवन्त ही वस्तुतः सुखी होते हैं।[3] ज्ञानी और अज्ञानी में यदि कभी संघर्ष हो तो जीत सदा

1. सत्य की खोज, पृष्ठ 10
2. वही, पृष्ठ 11
3. वही, पृष्ठ 44

अज्ञानी की ही होती है, क्योंकि संघर्ष ज्ञान से नहीं, कषाय से चलता है। ज्ञानी की कषाय कमजोर होने से उसका संघर्ष का संकल्प शीघ्र क्षीण हो जाता है।[1]

सत्य

सत्य है आत्मा का धर्म। आत्मा का धर्म आत्मा में रहता है। जो आत्मा के धर्म हैं, उनका सम्पूर्णधर्मों के धनी सिद्धों में होना जरूरी है।[2] उत्तम सत्य अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सहित वीतरागभाव है।[3]

सत्य मनोगत विशेषता है जो जीवन को प्रसन्न करता है। इस विषय में कहा है–सत्य जहाँ होता है वहाँ प्रसन्नता होती है।[4] वस्तु की सत्यता का विशेष महत्त्व होता है और व्यक्ति की सत्य भावना जीवन को सुखी बनाती है। यदि वह गलत है तो विकृत कर देता है।[5] सुखी होने का सही रास्ता सत्य पाना है, सत्य समझना है। किसी का भंडाफोड़ करना नहीं, किसी की पोल खोलना नहीं। यदि एक साधु की पोल खोल भी दी तो क्या हो जाने वाला है, न जाने लोक में ऐसे कितने लोग हैं? तुम कहाँ–कहाँ पहुँचोगे, किस–किस को बचाओगे? सच्चे देव–शास्त्र–गुरु का सही स्वरूप समझना ही कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र से बचने का उपाय है।[6] सत्य नहीं, सत्य की खोज खो गई है। सत्य को नहीं सत्य की खोज को खोजना है। खोज की रुचि जागृत हो गई तो सत्य मिलते देर न लगेगी।[7] उक्त भावना के अनुसार ही इस उपन्यास का नाम 'सत्य की खोज' रखा गया है; क्योंकि इसमें इस बात का संकेत किया गया कि सत्य तीव्र रुचिवन्त को प्राप्त होता है। रुचि उत्पन्न करो सत्य तुम्हारे सामने खड़ा हो जायेगा।[8] सत्य को संख्या की आवश्यकता नहीं होती।[9] सत्य टूटता नहीं, वह तो अटूट होता है। धर्म के लिए सत्य जरूरी है।[10] सत्य की प्राप्ति व्यक्तिगत क्रिया है और आत्मा का प्रचार

1. सत्य की खोज, पृष्ठ 16
2. धर्म के दस लक्षण, पृष्ठ 73
3. वही, पृष्ठ 75
4. सत्य की खोज, पृष्ठ 4
5. वही, पृष्ठ 49
6. वही, पृष्ठ 63
7. वही, पृष्ठ 79
8. वही, पृ 80
9. वही, पृष्ठ 100
10. वही, पृष्ठ 118

सामाजिक प्रक्रिया। सत्य की प्राप्ति के लिए अपने में सिमटना जरूरी है और सत्य के प्रचार के लिए जन–जन तक पहुँचना।[1]

इसप्रकार के गम्भीर विचारों के साथ–साथ शुद्धात्म तत्त्व रूपी परम सत्य की वास्तविकता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है– प्रत्येक द्रव्य स्वयं परिणमनशील है, उसे अपने परिणमन में पर के सहयोग की रंचमात्र भी आवश्यकता नहीं है। फिर अज्ञानी आत्मा व्यर्थ ही पर के सहयोग की आकांक्षा से व्याकुल होता है। सत्य की प्राप्ति स्वयं से, स्वयं में, स्वयं के द्वारा ही होती है, उसमें पर की कुछ भी नहीं चलती।[2] परिवर्तन कहानी में सत्य को सिंहवृत्त कहा है।[3] स्वयं से उद्घाटित सत्य जितना लाभदायक होता है, उतना दूसरों के द्वारा उद्घाटित नहीं।[4]

अस्तेय

डॉ. भारिल्ल ने किसी भी प्रकार के विचारों को दबाना भी ठीक नहीं माना, क्योंकि उससे भी बुराई पनपती है। औपचारिक रूप से वस्तु को नहीं लेना यह कहा जाता है, परन्तु कन्या के विवाह पर लड़के के परिवार वालों के मन में जो आकांक्षाएँ रहती हैं वह चोरी ही हैं। मध्यम स्थिति के परिवार की कन्या स्वीकार कर यह बता दिया कि शादी कन्या से की जाती है धन–दौलत से नहीं।[5] षड्यंत्र करने को भी चोरी कहते हैं जिसे कुत्सित योजना कहा है।[6] 'जरा सा अविवेक' में चोरी व चोरी नहीं करने के भावों का उल्लेख है।

साधक जीवन ब्रह्म अर्थात् आत्म गुणों से युक्त होता है। इनकी समस्त कहानियों में किसी न किसी रूप से ब्रह्मचर्य की गरिमा पर प्रकाश डाला गया है। सनतकुमार चक्रवर्ती का उदाहरण 'आप कुछ भी कहो' में है, जिन्होंने विकल्पों से मुक्त होकर दिगम्बर दीक्षा धारण की थी। 'अक्षम्य अपराध' में अकम्पन की अकम्पन दृष्टि ब्रह्मचर्य से

1. सत्य की खोज, पृष्ठ 142
2. वही, पृष्ठ 143
3. आप कुछ भी कहो, पृष्ठ 36
4. वही, पृष्ठ 63
5. सत्य की खोज, पृष्ठ 8
6. वही, पृष्ठ 199

जुड़ी हुई है। जागृत विवेक नामक कहानी में पुष्पदन्त–भूतबली और धरसेन जैसे आचार्य की ध्यान–मग्नता ब्रह्मचर्य के उदाहरण हैं। जो साधना के पक्के थे जो देवांगनाओं के उपस्थित होने पर भी ध्यानमग्न रहे।[1]

अपरिग्रह

तपस्वी तो वही प्रशंसा के योग्य है जो विषयों की आशा से रहित हो, जिसके पास किसी प्रकार का आरम्भ परिग्रह न हो और जो सदा ज्ञान, ध्यान तथा तप में लीन रहता हो।[2]

ज्ञान

नासमझ होते हुए जो अपने को समझदार मान बैठा हो, उसे समझाना कठिन ही नहीं, असम्भव है। अतः सर्वप्रथम हमें अपने अज्ञान का ज्ञान करना चाहिए। अपने अज्ञान के ज्ञान बिना, कोई समझने को ही तैयार नहीं होता। जो अन्तर से समझने को तैयार होता है, वही समझ सकता है और समझाने वाले का प्रयत्न भी उसे ही समझाने में सफल होता है।[3]

ज्ञान का स्वभाव है तर्क–वितर्क। जब तक कोई भी सिद्धान्त तर्क की तुला पर खरा नहीं उतरता, ज्ञान उसे स्वीकार नहीं कर सकता। यही कारण है कि ज्ञानी परीक्षा प्रधानी होता है। श्रद्धा के समान ज्ञान किसी बात को सहज स्वीकार नहीं कर लेता। वह प्रत्येक चीज को तर्क की कसौटी पर कसता है। जो खरी उतरती है, उसे स्वीकार करता है। जो सिद्धान्त, वस्तु या व्यक्ति परीक्षा बरदाश्त नहीं कर सकता, वह उसे स्वीकार नहीं होता।[4]

विभिन्न पदार्थों की एकता का ज्ञान और रागद्वेषोत्पादक विचार न तो वास्तविक तत्त्वज्ञान हैं और न तत्त्वविचार। भेद–विज्ञान ही

1. आप कुछ भी कहो, पृष्ठ 23
2. सत्य की खोज, पृष्ठ 40
3. चिन्तन की गहराइयाँ, पृष्ठ 4
4. सत्य की खोज, पृष्ठ 87

वास्तविक ज्ञान है और वीतरागता ही वास्तविक चारित्र।[1] पर को जानना है; पर उसे मात्र जानना, उसमें जमना नहीं, रमना नहीं; उसमें डटना नहीं, उससे हटना है। जबकि निज को जानकर उसमें जमना भी है, रमना भी है, उसी में समा जाना है। अपने में ही समा जाना भेद–विज्ञान का फल है। पर को भी जानना है, पर उसकी गहराई में नहीं जाना है। निज को जानना मूल प्रयोजन है; क्योंकि निज को जानने में ही अपना हित है। पर को, जानो तो ठीक, न जानो तो ठीक, जब आत्मा का 'जानना' स्वभाव है तो पर भी जानने में आ ही जाता है।[2]

श्रद्धा

'सत्य की खोज' में श्रद्धा, आस्था, विवेक आदि आदर्श की प्रत्येक स्तर पर किसी न किसी रूप से व्याख्या की गई है। विवेक उसके पिताश्री और मातुश्री तीनों ही पात्र धर्म और धार्मिक विचारों पर श्रद्धा करते हैं। आस्था एवं श्रद्धा नास्तिक गुणों से युक्त रूपमती में भी पाई जाती है। परन्तु उस श्रद्धा को उपन्यासकार ने अंध श्रद्धा कहा है।[3] धर्म और धर्मात्माओं के प्रति श्रद्धा श्रद्धा होती है। श्रद्धा के बिना दुनिया में कुछ भी सम्भव नहीं है।[4]

आत्मा के अनन्त गुणों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुण श्रद्धा है। शेष समस्त गुण तो श्रद्धा का अनुसरण करते हैं। परपदार्थों से भिन्न अपनी आत्मा की रुचि ही सम्यक्–श्रद्धा है और निजात्मा से भिन्न परपदार्थों की रुचि ही मिथ्या श्रद्धा।[5] श्रद्धा को रुचि भी कहते हैं। आत्मरुचि व्यक्ति को आत्मोन्मुखी बनाती है। आत्मश्रद्धान सम्यक् श्रद्धान है और सम्यक् श्रद्धान समस्त दुःखों से मुक्ति पाने का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सोपान है। यह मुक्ति–महल की प्रथम सीढ़ी है।

1. सत्य की खोज, पृष्ठ 92
2. वही, पृष्ठ 95–96
3. वही, पृष्ठ 12
4. वही, पृष्ठ 45–46
5. वही, पृष्ठ 54

इसके बिना ज्ञान और चारित्र भी सच्चे नहीं हो सकते।[1] श्रद्धा का स्वभाव समर्पण है।[2] श्रद्धा ज्ञान का स्वभाव भी है। ज्ञान का स्वभाव है तर्क–वितर्क। जब तक कोई भी सिद्धान्त तर्क की तुला पर खरा नहीं उतरता, ज्ञान उसे स्वीकार नहीं कर सकता। यही कारण है कि ज्ञानी परीक्षा–प्रधानी होता है। श्रद्धा के समान ज्ञान किसी बात को सहज स्वीकार नहीं कर लेता।[3]

इसी तरह तत्त्वनिर्णय को भी श्रद्धा से जोड़ा गया। देखो तत्त्वविचार की महिमा! तत्त्वविचार रहित देवादिक की प्रतीति करे, बहुत शास्त्रों का अभ्यास करे, व्रतादिक पाले, तपश्चरणादि करे, उसको तो सम्यग्श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान होने का अधिकार नहीं और तत्त्व विचार वाला इनके बिना भी सम्यग्श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान का अधिकारी होता है।[4] श्रद्धा को रुचि का नियामक तत्त्व भी कहा है।

श्रद्धा के भावों का चित्रण उनकी प्रत्येक कथा में है। श्रद्धा से युक्त होकर वादिराज सन्त के चरणों में अनेक श्रेष्ठीगण उपस्थित हुए। उस समय उनकी दिव्यदेशना से सभी प्रभावित हुए। वे विकल्पों को छोड़कर निम्न भावों की ओर विचार करने लगे–

"सभी आत्मा स्वयं परमात्मा है, परमात्मा कोई अलग नहीं होते। स्वभाव से तो सभी आत्मायें स्वयं परमात्मा ही हैं, पर अपने परमात्मस्वभाव को भूल जाने के कारण दीन–हीन बन रहे हैं। जो अपने को जानते हैं, पहचानते हैं और अपने में ही जम जाते हैं, रम जाते हैं, समा जाते हैं, वे पर्याय में भी परमात्मा बन जाते हैं।[5]

रुचि ध्यान की नियामक है। जीव की रुचि जिस ओर लग जाती है, उसका ध्यान सहज ही बार–बार उसी ओर जाता है। प्रत्येक जीव के ध्यान का केन्द्र–बिन्दु वही वस्तु बनी रहती है, जो उसे रुचिकर होती है।[6] इसमें भी यह प्रतिपादित किया गया है कि तत्त्वजिज्ञासु

1. सत्य की खोज, पृष्ठ 54
2. वही, पृष्ठ 81
3. वही, पृष्ठ 87
4. वही, पृष्ठ 88–89
5. आप कुछ भी कहो, पृष्ठ 13
6. सत्य की खोज, पृष्ठ 93

पहले भेद–विज्ञान करता है, तत्पश्चात् वीतरागता के मार्ग की ओर अग्रसर होता है। भेदविज्ञान निज और पर के बीच किया जाता है। दो पर पदार्थों के बीच नहीं।[1]

तप

"समस्तरागादिपरभावेच्छात्यागेन स्वरूपे प्रतपनं विजयनं तपः।"

समस्त रागादि परभावों की इच्छा के त्याग द्वारा स्वस्वरूप में प्रतपन करना विजयन करना तप है। समस्त रागादि भावों के त्यागपूर्वक आत्मस्वरूप में लीन होना तप है।" इच्छा निरोध भी तप है।[2]

"सम्मत्तविरहियाणां सुट्ठ वि उग्गं तवं चरंताणं।
ण लहंति बोहिलाहं अविवाससहस्सकोडीहिं।[3]

जीव सम्यक्त्व के बिना करोड़ों वर्षों तक उग्र तप भी करे तो भी वह बोधिलाभ प्राप्त नहीं कर सकता।

"कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन माँहि, त्रिगुप्ति तै सहज टरैं ते।।"[4]

भक्ति / साधना

भक्ति तो भगवान के गुणों के प्रति अनुराग को कहते हैं। भगवान की भक्ति से पुण्य बँधता है।[5] भक्ति को उपासना भी कहते हैं।[6] सच्ची भक्ति वीतराग भगवान की भक्ति होती है इसको उपासना कहते हुए उपासक के लिए समझाया है –

"वीतरागी परमात्मा का उपासक तो वीतरागता का ही उपासक होता है। लौकिक सुख की आकांक्षा से परमात्मा की उपासना करने वाला व्यक्ति वीतरागी सर्वज्ञ भगवान का उपासक नहीं हो सकता।

1. सत्य की खोज, पृष्ठ 95
2. धवला पुस्तक 3 / 5 / 4 / 26 / 54
3. आचार्य कुन्दकुन्द – अष्टपाहुड गाथा 5
4. पं. दौलतराम जी कृत छहढाला, चतुर्थ ढाल– छन्द, पृष्ठ 5
5. सत्य की खोज, पृष्ठ 19
6. वही, पृष्ठ 19

वस्तुतः वह भगवान का उपासक न होकर भोगों का उपासक है।[1] गुणों का चिन्तन भी भक्ति है, जिसके विषय में कहा है कपोलकल्पित चमत्कारों की बढ़ा–चढ़ाकर चर्चा करना भगवान का बहुमान नहीं, भक्ति नहीं, स्तुति नहीं, वरन् उनमें विद्यमान वीतरागता, सर्वज्ञता, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य आदि गुणों का चिन्तवन, महिमा, बहुमान ही वास्तविक भक्ति है।[2]

नारी और उसकी विशेषता

नारी स्वभाव से सरल, शान्त और धर्मानुरागी कही गई है जो प्रत्येक क्षेत्र में अपने मनोगत भावों से जीवन को परिवर्तित करती है। नारियाँ सहज ही श्रद्धामयी होती है। धार्मिक भावना भी उसमें पुरुषों की अपेक्षा अधिक पाई जाती है।[3]

'असन्तोष की जड़' नामक कहानी में सुख–शान्ति के मार्ग के लिए महासती सीता के आदर्श को महत्त्वपूर्ण माना है। उन्होंने लिखा है – महासती सीता को आदर्श मानने वाली भारतीय ललनाओं को यह याद रखना चाहिए कि अपने ही लोगों के असद्व्यवहार से विरक्त सीता ने आत्महत्या का मार्ग न चुनकर आत्मसाधना का रास्ता अपनाया था।[4]

मानवीय मूल्य जनचेतना को जागृत करने वाले होते हैं। उससे समाज के प्रत्येक वर्ग प्रभावित होते हैं और उन्हीं से अपने व्यक्तित्व का विकास भी करते हैं। अनुभव की कसौटी पर ऐसे चिन्तन के क्षण डॉ. भारिल्ल के उपन्यास में सर्वत्र विद्यमान हैं। सत्य तक पहुँचने के साधन भी सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं। अनुभूति के क्षण जीवन को संस्कारित करते हैं और नये मार्ग का दिग्दर्शन भी कराते हैं। कथन शैली की शिल्प में संस्कारों की महनीयता है, इसलिए उनकी कहानी के सभी विचार नई दृष्टि और नई चिन्तनधारा को भी उत्पन्न करती

1. सत्य की खोज, पृष्ठ 20
2. वही, पृष्ठ 29
3. वही, पृष्ठ 13
4. आप कुछ भी कहो, पृष्ठ 83

है। इनके चिन्तन में अध्यात्म का परिवेश सभी पात्रों के साथ जुड़ जाता है। जो इनके विचारों का परिणाम है और जिसे अध्यात्म शैली का प्रभाव ही कहा जा सकता है।

निष्कर्ष

यह अध्याय भारिल्ल के कथा–साहित्य से सम्बन्धित है। इसमें सबसे पहले उपन्यास और कहानी के मानक तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया है। उन्होंने जो भी लिखा, वह मन–मस्तिष्क पर स्थायी प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहता। इनके एकमात्र उपन्यास 'सत्य की खोज' में इनका लक्ष्य पाठक–मैत्री–मय है। उसका शिल्प भी कथा को सार्थकता प्रदान करने की सामर्थ्य लिए है। उपन्यास का प्रतिपाद्य आध्यात्मिकता को पुष्ट करना है। इसमें सन्देह नहीं कि इस दृष्टि से वह सफल रहा है। विवेक और रूपमती पात्रों के माध्यम से कथा को गति देने, यथावश्यक कल्पना का सहारा ले, उसको फलागम तक पहुँचाने के अपने ध्येय में उनकी सफलता चमत्कृत किए बिना नहीं रहती। 'आप कुछ भी कहो' संग्रह की कहानियों में इसी नाम की कहानी अथवा 'असन्तोष की जड़' या फिर 'एक केटली गर्म पानी' सभी किसी न किसी उद्देश्य को लेकर चलती है। कमोबेश यह लक्ष्य उनका मानवीयता का सरोकार है। जो विनय, वैराग्य, संयम, श्रमण, धर्म, गुरु–शिष्य, इन्द्रिय–निग्रह, साधकजीवन, राग–द्वेष जैसे अमूल्य आयामों को प्रतिष्ठित करता है। डॉ. भारिल्ल का इनके प्रति समर्पण भाव विविध रूपों में इनके कृतित्व का महत्त्वपूर्ण उपादान रहा है।

जैन जगत के रत्न तुम, जैन जगत के प्राण।
जैन जगत की शान तुम, जैनों को वरदान।।
गुरुदेव से मारग पाकर, साहस से उसे सम्भाला।
डॉ. भारिल्लजी तुमने, घर–घर कर दिया उजाला।।
अभिनन्दन–अभिनन्दन है, अभिनन्दनीय शुद्धातम।
अनुभव में सबको आए, कर दिया सरल अति आगम।।
जिनशासन ध्वज फहराने, मानो ये जीवन पाया।
पूरे जीवन श्रुत–सागर में, गोता गहन लगाया।।
नयचक्र की अद्भुत श्रुति दे, सबको पढना सिखलाया।
अज्ञान के दुष्चक्कर से, हम सबको बहुत बचाया।।

– पण्डित राजेन्द्र कुमार जैन, जबलपुर

चतुर्थ अध्याय

डॉ. भारिल्ल के निबन्धों तथा लेखों का प्रवृत्तिगत परिचय

निबंध साहित्य की उस विधा को कहते हैं, जिसमें गद्य के माध्यम से युक्त झंकार उत्पन्न करने वाली भाषा द्वारा, छन्द बन्धन इतिवृत्त एवं बुद्धि तत्त्व का मोह त्याग कल्पना प्रधान भावना को अभिव्यक्त किया गया हो। यह अभिव्यक्ति तार्किकता और सामाजिकता के विकास में सहायक बनती है। पद्य की अपेक्षा निबंध बौद्धिकता और सामाजिकता के अधिक निकट होते हैं।[1]

साहित्य की कसौटी गद्य है, तो गद्य की कसौटी निबंध है। यह कथन गद्य साहित्य में निबंध विधा के महत्त्व को प्रतिपादित करता है। निबंध में गद्य का शुद्ध रूप ही मिल सकता है।[2]

निबंध : स्वरूप एवं विश्लेषण

निबंध धर्मशास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले तर्क–वितर्कात्मक लेख है। प्रमाणों को एकत्र करके उनका संग्रह करना और लिपिबद्ध करना ही निबंधन कहलाता था। गद्य की अन्य विधाओं की तरह निबंधों के नवीन रूप का विकास भी फ्रांसीसी और अंग्रेजी साहित्य में मिलता है। हिन्दी के निबंधों का आधार भी वही था। आधुनिक समय में हिन्दी निबंध अंग्रेजी के 'ऐसे' (Essay) के अर्थ में प्रयुक्त होता है। निबंधों में कल्पना, अनुभूति और व्यक्तित्व तीनों का सुन्दर समावेश है। निबंध किसी विषय, विषयांग पर लिखी गयी मर्यादित आकार की रचना है। निबंध मन की एक छूटी हुई तरंग है। 'निबंध उच्छिन्न चिंतन है।' निबंध अगूढ़ रचना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है– 'निबंध

---

1. सोनक्णे सीताराम – हिन्दी गद्य साहित्य, प्रका. ग्रन्थन, कानपुर, 1992, पृष्ठ 1
2. हिन्दी साहित्य कासमग्र इतिहास', पृष्ठ 292

पढ़ने के पश्चात् यह आवश्यक है कि उसकी गहन विचारधारा पाठकों को मानसिक श्रमसाध्य नूतन उपलब्धि के रूप में जान पड़े।' सभी पत्र, लेख या गद्य लेखन निबंध नहीं कहा जा सकता है।' दो व्यक्तियों का पारस्परिक भाषण भी निबंध नहीं हो सकता है। 'निबंध' कहलाने की एक विशेष कसौटी होती है।[1]

निबंध के तत्त्व[2]

बाह्य और आंतरिक ये दो तत्त्व निबंध के माने गए हैं। उसकी अनेक स्वरूपगत विशेषताएँ हैं। निबंध वर्णनात्मक या चिंतनपरक दोनों हो सकते हैं।

कसावट

'निबंध' का अर्थ है अच्छी तरह बँधा हुआ या कसा हुआ। भावों का विस्तार और विचारों का फैलाव नहीं बल्कि सुस्पष्टता होनी चाहिये।

व्यक्तित्व

'निबंध में निबंधकार के व्यक्तित्व का पूर्ण स्थान होता है। 'निबंध' साहित्य की एक विधा है। निबंधकार वस्तु का विश्लेषण ही नहीं करता; अपितु व्यक्ति, वस्तु अथवा दृश्य को उसकी समग्रता में देखता है और उसके समग्र प्रभाव को ही अपनी सहजता में व्यक्त करता है। अभिव्यक्ति के दौरान निबंधकार अपने आप को पूरी तरह खोलता है और निबंध के प्रत्येक अंश में वह अपने व्यक्तित्व की झलक दिखा देता है।

सहज रचना

पाश्चात्य विचारक निबंध को एक हल्की रचना मानते हैं, जबकि भारतीय निबंधकार गंभीर मानते हैं वैसी गंभीरता ग्राह्य नहीं। निबंध में भावना एवं अनुभूति के स्थान पर तटस्थ अन्वेषण हो तो ऐसे लेखों

---

1. हिन्दी साहित्य कासमग्र इतिहास', पृष्ठ 292–293
2. वही, पृष्ठ 293–294

को निबंध की श्रेणी में नहीं रखा जा सकेगा। 'प्रबंध' या 'ट्रीटाइज' कहलायेंगे।

स्वतःपूर्ण

निबंध अपने में पूर्ण रचना होती है। वह समग्र जीवन का एक मूल्यांकन है। निबंध में मन की तरंग, भावना, विचार और चिंतन का संगम होता है। भावावेग के साथ सहज चिंतन, दर्शन अथवा पांडित्य समाविष्ट हो तो किसी भी पाठक के लिये वह रचना पठनीय है।

सम्बद्धता

पाश्चात्य विचारधारा के अनुसार निबंध एक तरंग की तरह है और भारतीय विचारधारा के अनुसार निबंध सम्बद्ध और भावनाओं के तारतम्य से बंधे हुए विचार हैं।

विषय

प्रकृति, संस्कृति, विचार, भाषा, कल्पना, विज्ञान आदि पर है। निबंध विधा की विशेषता है कि एक ही विषय पर अनेक लेखक निबंध लिखते हैं पर सभी के विचार अलग और मौलिक होते हैं।

प्रवाह

निबंध की एक स्वतंत्र गति, भाषा में प्रवाह और विचारों में गतिशीलता है। निबंध की गति मंथर, गंभीर और समतल प्रदेश की तरह होती है।

उद्देश्य

'निबंध का उद्देश्य रस–सृष्टि के द्वारा हृदय की अनुभूतियों को व्यापक बनाना है।' पाठक की अनुभूतियों, विचारों और दृष्टिकोण को व्यापक बनाकर उसे गंभीरता का ज्ञान कराना निबंध का प्रमुख उद्देश्य होता है।

निबंध के प्रकार[1]

निबंध के बाह्य और अंतरंग दो प्रकार हैं। निबंध के विकास के तीन अंग माने गये हैं– भूमिका, मध्य व निष्कर्ष।

1. हिन्दी साहित्य कासमग्र इतिहास', पृष्ठ 295

भूमिका : भूमिका तब ज्यादा अच्छी होती है जो विषय पर लेखक का पूर्ण अधिकार हो। भूमिका के लिये कोई नियम नहीं है।

मध्य : जिसमें तथ्यों के संकलन, संगठन, परीक्षण तथा पक्ष–विपक्ष सम्बन्धी समस्त तर्कों का समावेश होता है।

निष्कर्ष – में निबंधकार अपने अभीष्ट प्रभाव को व्यक्त करता है।

कुछ आलोचक निबंध का विभाजन इसप्रकार करते हैं–

परिचयात्मक निबंध – किसी व्यक्ति अथवा वस्तु का विशेष परिचय देना जो कि उसके जीवन–चरित से समाविष्ट है।

इतिवृत्तात्मक निबंध – किसी वृत्तांत का ब्यौरा दिया जाता है, तथ्यात्मक बातों का समावेश होता है।

वर्णनात्मक निबंध – किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के अंश का वर्णन है।

काव्यात्मक निबंध – इसप्रकार के निबंधों की शैली कवित्वपूर्ण और लालित्यपूर्ण होती है।

विवेचनात्मक – किसी विषय अथवा वस्तु के सम्बन्ध में विश्लेषण किया जाता है।

हिन्दी निबन्ध साहित्य का उद्‌भव एवं विकास[1]

निबंध का उद्‌भव भारतेन्दु के काल से होता है। विकास की दृष्टि से इस विधा को निम्न आधारों पर विभाजित किया गया है– 1. भारतेन्दु युग, 2. द्विवेदी युग, 3. शुक्ल युग, 4. शुक्लोत्तर युग।

1. भारतेन्दु युग

'भारतेन्दु युग' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाम से अभिहित है। देश की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक परिस्थितियों के प्रति प्रत्येक लेखक सजग था। इस युग के प्रमुख निबंधकारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र आदि हैं। बालमुकुन्द गुप्त, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', बाबू तोताराम, ठाकुर जगमोहन सिंह, लाला

1. हिन्दी साहित्य कासमग्र इतिहास', पृष्ठ 298

श्रीनिवासदास, पं. केशव राय, पं. अम्बिकादत्त व्यास एवं पं. राधाचरण गोस्वामी इस युग के अन्य महत्त्वपूर्ण निबंधकार थे।[1]

2. द्विवेदी युग

महावीर प्रसाद द्विवेदी इस युग के प्रवर्तक थे। इस युग में पत्रकारिता की स्वतंत्रता पर अंकुश लगने लगा था। भारतेन्दु युग में भाषा का स्थिर स्वरूप नहीं था। जबकि द्विवेदी जी ने इस युग में भाषा का सुधार किया। इस युग के प्रमुख निबंधकारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, श्यामसुंदर दास आदि हैं। द्विवेदी युग के अन्य निबंधकारों में चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', गोपाल राम गहमरी, पद्मसिंह शर्मा ब्रजनंदन सहाय और गोविंद नारायण मिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं।[2]

3. शुक्ल युग

नवीन युग का सूत्रपात रामचन्द्र शुक्ल ने किया। रामचन्द्र शुक्ल के रूप में हिन्दी निबंध को एक महान् लेखक मिला। इस युग के निबंधकारों में प्रमुख आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय, पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, वियोगी हरि, माखनलाल चतुर्वेदी, राहुल सांकृत्यायन, बनारसीदास चतुर्वेदी, सम्पूर्णानंद, महाराज रघुवीर सिंह के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[3]

4. शुक्लोत्तर युग

शुक्लोत्तर युग में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक कला व वैज्ञानिक सभी प्रकार के निबंध लिखे गये हैं। इस युग के प्रमुख निबंधकारों में प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, डॉ. नगेन्द्र, गजानन्द माधव मुक्तिबोध आदि हैं। इसके पश्चात् विद्यानिवास मिश्र, हरिशंकर परसाई, कुबेरनाथ राय, डॉ. इन्द्रनाथ मदान, शिवदान सिंह चौहान आदि समकालीन निबंधकारों में महत्त्वपूर्ण हैं।[4]

---

1. हिन्दी साहित्य कासमग्र इतिहास', पृष्ठ 299–300
2. वही, पृष्ठ 300–301
3. वही, पृष्ठ 301–302
4. वही, पृष्ठ 302–306

डॉ. भारिल्ल के निबंध

साहित्य की दृष्टि से निबंध एक ऐसी कला है जो अनेक प्रकार की समस्याओं के मूल्य को सभी दृष्टियों से प्रस्तुत करती है। साहित्यकार उस प्रस्तुति में नैतिक, सामाजिक, पारिवारिक, राष्ट्रीय भावना आदि के साथ–साथ मन और आत्मा को केन्द्रित करने के लिए अनेक प्रकार के विचार रखते हैं। वे विचार भारतीय संस्कृति की परम्परा संयुक्त साहित्य की निधि भी होते हैं।

डॉ. भारिल्ल के निबंध में उक्त सभी प्रकार की दृष्टियाँ हैं उसमें भी सबसे अधिक विचारात्मक और भावात्मक दृष्टि है, जिसे आध्यात्मिक दृष्टि कह सकते हैं, क्योंकि उन्होंने आत्मानुभूति को विशेष महत्त्व दिया और प्रत्येक निबंध में उनके आत्मचिन्तन के स्वरूप को सर्वत्र देखा जा सकता है। अहिंसा महावीर की दृष्टि में भी अध्यात्म दृष्टि से कथन करते हैं। जहाँ रागादि भावों की उत्पत्ति नहीं होती वहाँ अहिंसा है।[1]

दशलक्षण महापर्व में उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य आदि दस धर्म तथा क्षमावाणी आदि विषय का विवेचन है। उत्तम क्षमा में क्षमा लक्षण, भेद–प्रभेद आदि के दृष्टान्त भी दिए गए हैं।

उत्तम क्षमा में क्रोध पर विजय, उत्तम मार्दव में मृदु/सरल परिणाम, उत्तम आर्जव में ऋजुता, उत्तम शौच में पवित्र भाव, उत्तम सत्य में आत्म सत्य, उत्तम संयम में उत्तम संयम की प्रवृत्ति, उत्तम तप में इच्छा का निरोध करना, उत्तम त्याग में उत्तम दान, उत्तम आकिंचन्य में तथा उत्तम ब्रह्मचर्य में निजशुद्धात्मा में कैसे रमना तथा जमना आदि का विवेचन है।[2]

शैली का वैज्ञानिक अध्ययन

डॉ. भारिल्ल के दसलक्षण महापर्व के विवेचन में अनेक प्रकार

1. अहिंसा महावीर की दृष्टि में, पृष्ठ 4
2. धर्म के दस लक्षण, पृष्ठ से 9 तक

की शैलियाँ हैं उसमें वर्णनात्मक, भावात्मक, परिभाषात्मक, विवेचनात्मक, तात्त्विक दृष्टान्त आदि कई प्रकार की शैलियाँ हैं। इनके विचारों में तात्त्विक चिन्तन की प्रमुखता है। इन्होंने क्षमा को ज्ञानानन्द स्वभावी कहा है यह आत्मा का अनुभव है।[1]

बारह भावना : एक अनुशीलन के विवेचन में अनित्य, अशरण आदि बारह प्रकार की भावनाओं का तात्त्विक, आध्यात्मिक एवं वैचारिक दृष्टि से अनुशीलन प्रस्तुत किया है। इसमें सर्वप्रथम भावना को अनुप्रेक्षा कहा और उसी के अनुसार उसकी परिभाषा दी– चिन्तन, बार–बार चिन्तन।[2] लोक प्रचलित दृष्टि से अनुप्रेक्षा को भावना कहा गया। इसे आध्यात्मिक एवं धार्मिक जनों का सर्वाधिक प्रिय मानसिक भोजन भी कहा है।[3] इसी चिन्तन को तत्त्वपरक चिन्तन के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रत्येक भावना में विचारक ने अनेक प्रकार की दृष्टियों को आधार बनाया उसमें मूलतः विकल्पों से मुक्त होने की विशेषता है। चिन्तन के बारह क्षेत्र होते हैं। संसार में आते ही उसे सर्वप्रथम नित्य और अनित्य का ज्ञान होता है। वैराग्य अवस्था में ज्ञानात्मक चिन्तन की प्रमुखता हो जाती है, जिसे अकलंक देव ने ज्ञान प्रवृत्ति कहा है।[4]

भावनाएँ और उनका विश्लेषण[5]

1. अनित्य, 2. अशरण, 3. संसार, 4. एकत्व, 5. अन्यत्व, 6. अशुचि, 7. आस्रव, 8. संवर, 9. निर्जरा, 10. लोक, 11. बोधिदुर्लभ और 12. धर्म।

अनित्य भावना और उसका विश्लेषण– इसमें विचारक ने सर्वप्रथम अनित्य को क्षणिक, सन्ध्या के सूर्य की तरह कहा है।[6] संयोग क्षण भंगुर है और आत्मा त्रैकालिक ध्रुवधाम है, पर्याय नाशवान है और आत्मा शाश्वत रहने वाला है।[7] डॉ. भारिल्ल ने इसमें प्रायः हिन्दी, संस्कृत और प्राकृत कवियों के द्वारा कथित चिन्तन को विशेष रूप से आधार बनाया।

1. धर्म के दस लक्षण, पृष्ठ 10–11
2. बारह भावना एक अनुशीलन, पृष्ठ 11
3. वही, पृष्ठ 10
4. वही, पृष्ठ 11
5. वही, पृष्ठ 13
6. वही, पृष्ठ 22
7. वही, पृष्ठ 23

हिन्दी के प्रसिद्ध प्राचीन कवियों भूधरदास, दौलतराम, दीपचन्द, जयचन्द, मंगतराम आदि के विचारों को आधार बनाया। इसमें संस्कृत के प्रसिद्ध तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, पद्मनन्दि पंचविंशती, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष तथा प्राकृत के प्रसिद्ध अनेक ग्रंथों के दृष्टान्तों के माध्यम से अलग–अलग भावना का विवेचन किया है। इसमें अध्यात्म की प्रधानता है, इसके साथ–साथ किसी–किसी भावना में लौकिक दृष्टान्त भी दिए गए हैं। अशरण भावना में असुर विद्याधर से मृग बलदेव वासुदेव आदि के सामान्य कथन दिए गए हैं।[1]

प्राकृत के प्रसिद्ध रचनाकार आचार्य कुन्द–कुन्द के समयसार वारस अणुवेक्खा के प्राकृत विचारों में आनन्द लेते हुए भावनाओं के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट किया है। परमार्थ तत्त्व की पहचान के लिए एकत्व भावना में कथन किया–

"एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चयमेदम्हि।
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं।।"[2]

अहिंसा महावीर की दृष्टि में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने अहिंसा का बेबाक स्वरूप प्रतिपादित किया है।

"वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में।"[3]

इस भाव के आधार पर महावीर के द्वारा प्रतिपादित अहिंसा का विवेचन किया गया है। आत्मा में रागादि भावों की उत्पत्ति हिंसा है और आत्मा में रागादि भावों की उत्पत्ति नहीं होना अहिंसा है। हिंसा को दो प्रकार से बताया गया है द्रव्यहिंसा और भावहिंसा।[4] हिंसा तीन प्रकार से होती है– मन से, वचन से और काया से।[5] क्रोधादि भावों रूपी हिंसा की उत्पत्ति पहले मन में, फिर वचन में और उसके बाद काया में होती है। भगवान महावीर ने कहा है कि यदि हिंसा मन में उत्पन्न नहीं होगी तो वाणी और काया में प्रस्फुटित होने का प्रश्न ही नहीं उठता।[6] डॉ. भारिल्ल ने अनेक उद्धरण के द्वारा अहिंसा के स्वरूप को व्यक्त किया है।

---

1. बारह भावना एक अनुशीलन, पृष्ठ 35
2. वही, पृष्ठ 70,
3. अहिंसा महावीर की दृष्टि में, पृष्ठ 2
4. वही, पृष्ठ 11
5. वही, पृष्ठ 12
6. वही, पृष्ठ 16

'मैं कौन हूँ' यह लघु निबंध है, जिसमें जीवतत्त्व का सुन्दर विवेचन किया गया है। यह अत्यन्त प्रेरक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक गद्य रचना है। डॉ. भारिल्ल ने इस सम्पूर्ण विषय को अलग–अलग भागों में व्यक्त किया है। इसमें एक ओर 'मैं कौन हूँ?' 'सुख क्या है?', 'आत्मानुभूति और तत्त्व–विचार' जैसे आध्यात्मिक निबंध, अहिंसा, 'अनेकान्त और स्याद्वाद' जैसे सैद्धान्तिक निबंध, तीर्थंकर भगवान महावीर जैसे जीवनी प्रधान निबन्ध, व्यावहारिक जीवन में महावीर के आदर्श जैसे विचारात्मक निबंध हैं।[1] इसमें सुखी होने का उपाय बताते हुए कहा गया है कि आत्मानुभूति ही सुखानुभूति है। बिना अनुभूति के आत्मा प्राप्त नहीं किया जा सकता और बिना आत्मानुभूति के सच्चा सुख भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। सुखी होने का एकमात्र उपाय आत्मानुभूति है।[2]

यहाँ 'मैं' शब्द का प्रयोग आत्मा से लिया गया है। 'मैं' शरीर, मन, वाणी और मोह–राग–द्वेष से भिन्न एक त्रैकालिक, शुद्ध, अनादि–अनन्त, चैतन्य, ज्ञानानन्द स्वभावी ध्रुवतत्त्व हूँ जो कि आत्मा है।[3]

डॉ. भारिल्ल के निबंधों में अनेक पक्षों का समावेश है। उनमें गतिशीलता, सम्बद्धता, विषय–विवेचन, उद्देश्य, इतिहास, समाजदर्शन, धर्मनीति आदि का यथास्थान वर्णन है। निबंध विधा के अनुसार उनका मूल्यांकन विषय की वास्तविकता को व्यक्त कर सकेगा।

परिचयात्मक निबंध

गोम्मटेश्वर बाहुबली, तीर्थंकर भगवान महावीर, रक्षाबंधन और दीपावली के अतिरिक्त वीतराग–विज्ञान, तत्त्वज्ञान आदि लघु पुस्तिकाओं में अनेक व्यक्तियों के परिचय दिए गए हैं।

बालबोध भाग–2 में भगवान महावीर के जन्म और उनके नामों को परिचय रूप में प्रस्तुत किया गया है– वीर, अतिवीर, सन्मति, वर्द्धमान और महावीर की सार्थकता का विवेचन है।[4]

1. मैं कौन हूँ,
2. वही, पृष्ठ 5
3. वही, पृष्ठ 7
4. बालबोध पाठमाला भाग–2, पृष्ठ 2

पं. दौलतराम के देव स्तुति विवेचन में मोह–राग–द्वेष, अज्ञान आदि विकारों से रहित प्रभु का स्मरण है।[1] सात तत्त्वों सम्बन्धी भूल के लेखक अध्यात्म प्रेमी **पं. दौलतराम** को 19वीं सदी के तत्त्वदर्शी विद्वानों में नवरत्न कहा है।[2] इन्हें हिन्दी गीत साहित्य का महारथी भी कहा है।[3]

मुनिराज योगीन्दु – के परिचय में उन्हें अपभ्रंश का महाकवि कहा है। वे परमात्मप्रकाश और योगसार के रचनाकार हैं। इन्होंने अध्यात्म के गूढ़ तत्त्वों को सहज और सरल लोकभाषा में जनता के समक्ष रखा है।[4] योगीन्दु अपने समय के अध्यात्म ज्ञाता थे।

आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी – इन्हें समग्र आचार्य परम्परा में प्रामाणिकता और सम्मान प्राप्त है। जो महत्त्व वैदिकों में गीता का, ईसाइयों में बाइबिल का और मुसलमानों में कुरान का माना जाता है, वही महत्त्व जैन परम्परा में गृद्धपिच्छ उमास्वामी के तत्त्वार्थसूत्र को प्राप्त है। इसका दूसरा नाम मोक्षशास्त्र भी है।[5] इसमें उनके व्यक्तित्व को अनुष्टुप छन्द में निम्न प्रकार से प्रतिपादित किया है–

'तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं गृद्धापिच्छोपलक्षितम्।
वन्दे गणीन्द्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरम्।।37

इसमें इन्हें आचार्य कुन्दकुन्द का पट्टशिष्य भी कहा है। इनका जन्म द्वितीय शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। तत्त्वार्थसूत्र संस्कृत भाषा का प्रथम जैन सूत्र ग्रंथ है।[6] इस पर समन्तभद्र ने गंधहस्ति महाभाष्य, अकलंक ने तत्त्वार्थ राजवार्तिक, विद्यानन्दि ने तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक, पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि टीका संस्कृत में लिखी है। सदा सुखदास जी की अर्थप्रकाशिका हिन्दी टीका भी प्रसिद्ध है।[7]

सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य – ये कोई साधारण विद्वान नहीं थे, इनके द्वारा रचित गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड,

---

1. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 1
2. वही, भाग–2, पृष्ठ 14
3. वही, भाग–3, पृष्ठ 13
4. वही, भाग–1, पृष्ठ 7
5. वही, पृष्ठ 10
6. वही, पृष्ठ 23
7. वही, भाग–3, पृष्ठ 8

त्रिलोकसार, लब्धिसार, क्षपणासार आदि उपलब्ध ग्रन्थों ने उनकी असाधारण विद्वत्ता और सिद्धान्त–चक्रवर्ती पदवी को सार्थक किया है। इन्होंने गोम्मटसार ग्रन्थ की रचना की है। जिसके जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड नामक दो अधिकार हैं।[1] तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–2 में सिद्धान्त–चक्रवर्ती जो राजा चामुण्डराय के समकालीन थे– 'गोम्मटसार ग्रन्थ का दूसरा नाम पंचसंग्रह भी है।[2]

कविवर पण्डित राजमल जी पाण्डे – ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। ये कवि, टीकाकार, विद्वान और वक्ता थे। इनकी कविता में काव्यत्व के साथ–साथ अध्यात्म के गंभीर तत्त्वों का विवेचन है। आपके द्वारा रचित ग्रंथों में जम्बूस्वामी चरित्र, तत्त्वार्थसूत्री टीका, छंदोविद्या, समयसारकलश बालबोध टीका, अध्यात्मकमल मार्तण्ड, पंचाध्यायी आदि प्रमुख हैं।[3]

पण्डित जयचंद जी छाबड़ा – जयपुर के प्रतिभाशाली आत्मार्थी विद्वानों में आपका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपकी रचनायें टीका ग्रंथ में है, जिसे वचनिका के नाम से कहा जाता है। आपके कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में तत्त्वार्थसूत्र वचनिका, सर्वार्थसिद्धि, प्रमेयरत्नमाला, द्रव्य संग्रह, समयसार, अष्टपाहुड़, ज्ञानार्णव, धन्यकुमार चरित्र, कार्तिकेयानुप्रेक्षा तथा पद–संग्रह आदि हैं।[4]

आचार्य समंतभद्र – आप जैन सिद्धान्त के अगाध मर्मज्ञ थे। साथ ही साथ तर्क, न्याय, व्याकरण, छन्द, अलंकार, काव्य और कोष के भी अद्वितीय पण्डित थे।[5] आपने आप्तमीमांसा, तत्त्वानुशासन, युक्त्यानुशासन, स्वयंभू स्तोत्र, जिनस्तुति शतक, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, प्राकृत व्याकरण, प्रमाण पदार्थ, कर्म प्राभृतटीका और गंधहस्ति महाभाष्य नामक ग्रंथों की रचना की है।[6]

पण्डित टोडरमल – आपने अपने जीवन में छोटी–बड़ी बारह रचनाएँ लिखीं जिनका परिमाण करीब एक लाख श्लोक प्रमाण है।

1. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–2, पृष्ठ 10
2. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 35
3. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–2, पृष्ठ 23
4. वही, पृष्ठ 16 5. वही, भाग–2, पृष्ठ 4 6. वही, पृष्ठ 10

आपके लोकप्रिय ग्रंथों की विशाल प्रामाणिक टीकाएँ और कुछ स्वतंत्र रचनाएँ हैं, जो कि गद्य व पद्य दो रूपों में पाई जाती है– 1. मोक्षमार्ग प्रकाशक (मौलिक), 2. रहस्यपूर्ण चिट्ठी (मौलिक), 3. गोम्मटसार पूजा (मौलिक), 4. गोम्मटसार जीवकाण्ड कर्मकांड भाषा टीका, 5. समोशरण रचना वर्णन, 6. लब्धिसार भाषा टीका, 7. पुरुषार्थ सिद्धपाय भाषा टीका, 8. क्षपणासार भाषा टीका, 9. आत्मानुशासन भाषा टीका, 10. त्रिलोकसार भाषा टीका आदि हैं।[1]

कविवर पण्डित बनारसीदास जी – अध्यात्म और काव्य दोनों क्षेत्रों में सर्वोच्च प्रतिष्ठित विद्वान थे। काव्य–प्रतिभा तो आपको जन्म से ही प्राप्त थी। 14 वर्ष की उम्र में आपने सर्वप्रथम कृति 'नवरस' लिखी। जिसमें अधिकांश शृंगार रस का वर्णन है।[2] आप एक आत्मानुभवी महापुरुष थे। आपने आध्यात्मिक रचनायें भी लिखीं जिसमें नाटक समयसार, बनारसी विलास, नाममाला और अर्द्धकथानक उल्लेखनीय हैं।[3]

आचार्य अमृतचन्द्र – आध्यात्मिक सन्तों में कुन्दकुन्दाचार्य के बाद आचार्य अमृतचन्द्र का नाम लिया जाता है। आपने गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में रचनाएं लिखीं। इनकी भाषा भावानुवर्त्तिनी एवं सहज बोधगम्य, माधुर्यगुण से युक्त है। आपकी रचनाएँ अध्यात्म–रस से ओतप्रोत हैं। आपके द्वारा लिखी टीका में समयसार टीका, प्रवचनसार टीका, पंचास्तिकाय टीका, तत्त्वार्थ सार, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय आदि हैं।[4]

लोक–प्रशंसा से दूर रहने वाले आचार्य अमृतचन्द्र ने अपूर्व ग्रंथों की रचनायें कीं जिसमें वे लिखते हैं– पदों से वाक्य और वाक्यों से यह पवित्र शास्त्र बन गया। यही आपके भाव हैं।[5]

कविवर पण्डित भूधरदास – हिन्दी और संस्कृत के अच्छे

1. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–2, पृष्ठ 18
2. वही, पृष्ठ 28–29
3. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 20
4. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–2, पृष्ठ 33
5. वही, भाग–3, पृष्ठ 24

विद्वान थे। आपकी तीन रचनाएँ जिनके नाम जैन शतक, पार्श्वपुराण एवं पद–संग्रह हैं। पार्श्वपुराण को हिन्दी के महाकाव्यों की कोटि में रखा जा सकता है। आपके आध्यात्मिक पद तो अपनी लोकप्रियता, सरलता और कोमलकान्त पदावली से आज भी उद्वेलित करते हैं।[1]

अभिनव धर्म भूषणयति – आपका समय 1358 से 1418 ई. तक माना जाता है। ये अपने समय के बड़े ही प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले महापुरुष थे। इनकी एकमात्र अमर रचना 'न्यायदीपिका' प्राप्त है। इसमें प्रमाण और नय का तर्कसंगत वर्णन है। इस ग्रन्थ की भाषा सरल एवं सुबोध संस्कृत है।[2]

आचार्य जिनसेन – आप महापुराण के कर्त्ता भगवज्जिनसेनाचार्य से भिन्न हैं। ये पुन्नाट संघ के आचार्य थे। जैन समाज में सबसे अधिक पढ़े जाने वाला प्राचीन ग्रंथ हरिवंशपुराण है जिसमें बाईसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ का चरित्र विशद रूप से वर्णित है तथा कृष्ण–बलभद्र, कौरव–पाण्डव आदि अनेक इतिहासप्रसिद्ध महापुरुषों के चरित्रों को चित्रित किया है। इस ग्रंथ के भाषा टीकाकार जयपुर के प्रसिद्ध विद्वान पण्डित दौलतराम जी कासलीवाल हैं।[3]

आचार्य कुन्दकुन्द – आपका समय विक्रम सम्वत् का आरम्भ काल है। श्रुतसागर सूरि ने 'षट्प्राभृत' की टीका–प्रशस्ति में इन्हें कलिकाल सर्वज्ञ कहा है। इन्हें कई ऋद्धियाँ भी प्राप्त थीं।[4]

कुन्दकुन्दाचार्यदेव के प्रमुख ग्रंथ निम्न हैं – समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड़, द्वादशानुप्रेक्षा और दशभक्ति। रयणसार और मूलाचार भी उनके ही ग्रंथ माने जाते हैं। उन्होंने चौरासी पाहुड़ लिखे हैं।[5]

इतिवृत्तात्मक निबंध

इतिवृत्तात्मक निबंध जिसमें मूलतः किसी वृतान्त का ब्यौरा दिया जाता है एवं जहाँ तथ्यात्मक बातों का समावेश होता है वे इतिवृत्तात्मक

---

1. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–2, पृष्ठ 42
2. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 13
3. वही, भाग–1, पृष्ठ 51
4. अष्टपाहुड़ भूमिका, प्रका. श्रुत प्रभावक मंडल सोलंकी
5. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–2, पृष्ठ 33

निबंध कहलाते हैं।[1] डॉ. भारिल्ल ने इतिहास के संदर्भ को स्थापित करते हुए अनेक निबंधों का लेखन किया है उनमें निम्न प्रमुख निबंध इसप्रकार हैं–

1. कुन्दकुन्द और उनके पंचपरमागम

इसमें कुन्दकुन्द की परम्परा का ऐतिहासिक विवेचन अनेक प्रकार के संदर्भों सहित किया है। कुन्दकुन्द को एलाचार्य, वक्रग्रीवाचार्य, गृद्धपिच्छाचार्य, पद्मनन्दी महामुनी आदि कहा गया है।[2]

पंच परमागम में समयसार, प्रवचनसार पंचास्तिकाय, नियमसार और अष्टपाहुड़ के प्रतिपाद्य विषय की समीक्षा की गई है।

2. तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव

इस इतिवृत्त में डॉ. भारिल्ल ने तीर्थंकर परम्परा की प्राचीनता को स्थापित करते हुए ऋषभदेव को इक्ष्वाकुवंशी राजकुमार कहा है। उन्होंने अनेक जनोपयोगी कार्यों को किया जिनमें असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प महत्त्वपूर्ण हैं।[3] इसमें ऋषभ के जन्म से लेकर दीक्षा पर्यन्त का विवेचन तथा केवलज्ञान प्राप्ति के इतिवृत्त को भी इसमें समाहित किया गया। भरत बाहुबली के युद्ध का भी संक्षिप्त इतिवृत्त दिया गया। इसमें चक्रवर्ती की सम्पदाओं का भी उल्लेख है।[4]

3. तीर्थंकर भगवान महावीर

इसके अन्तर्गत भगवान महावीर के जीवन और सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया गया है। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त जितने गूढ़, गंभीर व ग्राह्य हैं, उनका जीवन उतना ही सादा, सरल एवं सपाट है।[5]

4. वीतरागी व्यक्तित्व भगवान महावीर

यह लघु इतिवृत्त भगवान महावीर की समस्त घटनाओं को प्रस्तुत करने वाला है। जैसे वर्द्धमान, वीर, अतिवीर आदि नामों का

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 295
2. षट्प्राभृत टीका श्रुतसागर सूरि
3. तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव, पृष्ठ 5–8
4. वही, पृष्ठ 40
5. तीर्थंकर भगवान महावीर, पृष्ठ 5–6

संक्षिप्त विवेचन है। सन्मार्ग को दिखलाये इसीलिए 'सन्मति' कहलाए। नित बढ़ने के कारण से वर्द्धमान, वीरता के गुणों के कारण से वीर अधिक शक्तिशाली होने से अतिवीर और महावीर भी बनें। महावीर वैरागी राजकुमार थे न की विद्रोही।[1]

5. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ

इसमें दो खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में कालचक्र, ऋषभदेव, भरत–बाहुबली, अजित, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के इतिवृत्त को दिया है। इतिवृत्त में पूर्वभव, वर्तमान भव आदि का भी वर्णन है। इसमें सर्वोदय तीर्थ की स्थापना की परम्परा के साथ–साथ जीवन किस प्रकार से उपयोगी बन सकता है उसके लिए डॉ. साहब ने षट् द्रव्य, कर्म धर्म, सम्यग्दर्शन, तत्त्व, देव, शास्त्र, गुरु, भेद–विज्ञान, आत्मानुभूति, सम्यग्ज्ञान, अनेकान्त और स्याद्वाद, प्रमाण और नय एवं सम्यक्चरित्र जैसे विचारों का विवेचन है। अनेकान्त और स्याद्वाद में भारिल्ल साहब ने लिखा है अनेकान्त सापेक्ष नयों के समूह का नाम है जिसमें वस्तु के प्रत्येक पक्ष पर विचार किया जाता है।[2] स्याद्वाद सत्य विचारों का द्वार है। अनेकान्त और स्याद्वाद का सिद्धान्त सर्वतत्त्वप्रकाशक है जिसे केवलज्ञान के समान माना गया है।[3]

इस इतिवृत्त में जितने भी विवेचन हैं उनकी विवेचना के लिए 68 ग्रंथों के उद्धरण दिए हैं। उनमें भी प्राकृत, संस्कृत, वेद, पुराण, स्मृति एवं आधुनिक हिन्दी कवि मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' अध्यात्म पदावली आदि अनेक हिन्दी जगत् के प्रसिद्ध काव्यों का आधार बनाकर सर्वोदय तीर्थ की वास्तविकता पर प्रकाश डाला गया है। इसके अन्तिम परिशिष्ट में महावीर पूजन दी गई है जो डॉ. भारिल्ल द्वारा रचित है।

लघु इतिवृत्तात्मक निबंध

इसमें बा. बो. पाठ भाग–1 में भगवान आदिनाथ, बा.बो. भाग–2 में भगवान महावीर, बा. बो. पाठ भाग–3 में भगवान नेमिनाथ, वी. वि.

1. वीतरागी व्यक्तित्व भगवान महावीर, पृष्ठ 11
2. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ 168
3. वही, पृष्ठ 143

पाठ भाग–1 में, जम्बूस्वामी, वी.वि. पाठ भाग–2 में भगवान पार्श्वनाथ, वी.वि. पाठ भाग–3 में बलभद्र राम, तत्त्वज्ञान पाठ भाग–1 में पाँच पाण्डव, त. पाठ भाग–2 में तीर्थंकर भगवान महावीर आदि निबंध हैं।

वर्णनात्मक निबंध

डॉ. भारिल्ल की कथन शैली में व्यक्ति और वस्तु–विशेष के वर्णन भी हैं। प्रायः सभी निबंधों में किसी न किसी तरह का कथन अत्यन्त ही प्रभाविक है। आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंचपरमागम, अहिंसा महावीर की दृष्टि में, वीतरागी व्यक्तित्व भगवान महावीर, ध्यान का स्वरूप, मैं कौन हूँ, तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ णमोकार महामंत्र एक अनुशीलन, निमित्तोपादान अनेकान्त और स्याद्वाद, बालबोध, वीतराग विज्ञान एवं तत्त्वज्ञान आदि में भी प्रसंग के अनुसार वस्तु–विषय के वर्णन दिए गए हैं।

"आज से पचास वर्ष पूर्व तक शास्त्रसभा में शास्त्र बाँचने के पूर्व भगवान कुन्दकुन्द का नाममात्र तो लिया जाता था, किन्तु आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार आदि अध्यात्म की चर्चा करने वाले अत्यन्त विरले थे।"[1]

प्रमाण और प्रमेय व्यवस्था का प्रतिपादक यह ग्रंथराज आचार्य कुन्द–कुन्द की एक ऐसी प्रौढ़तम कृति है, जिसमें वे आध्यात्मिक संत के साथ–साथ गुरु–गम्भीर दार्शनिक के रूप में प्रस्फुटित हुए हैं, प्रतिष्ठित हुए हैं।[2] 'अस्तिकाय' शब्द अस्तित्व और कायत्व का द्योतक है। अस्तित्व + कायत्व = अस्तिकाय। इस प्रकार 'अस्तिकाय' शब्द अस्तित्व और कायत्व का द्योतक है। अस्तित्व को सत्ता अथवा सत् भी कहते हैं। यही सत् द्रव्य का लक्षण कहा गया है, जो कि उत्पाद, व्यय और ध्रुवत्व से युक्त होता है।[3]

परमपारिणामिक भावरूप निज शुद्धात्मतत्त्व ही एकमात्र आराध्य

1. आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंचपरमागम, पृष्ठ 29
2. वही, पृष्ठ 55
3. वही, पृष्ठ 77–78

है, उपास्य है, श्रद्धेय है, परमज्ञेय है। इसके श्रद्धान, ज्ञान एवं ध्यानरूप पावन परिणतियाँ ही साधन हैं, मार्ग हैं, रत्नत्रय हैं।

ध्यान यत्न साध्य नहीं सहज साध्य है।[2]

रामायण की लड़ाई दो व्यक्तियों की लड़ाई थी। राम और रावण दोनों व्यक्ति ही तो थे।[3]

यह विश्व पृथक् से और कुछ नहीं है, छह द्रव्यों के समुदाय को ही विश्व कहते हैं। वे छः द्रव्य हैं– जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जीव को छोड़कर बाकी पांचों द्रव्य अजीव हैं।[4]

समस्त पर – जीवद्रव्य, अजीवद्रव्य, आस्त्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष पर्याय–तत्त्वों से दृष्टि हटाकर इनसे भिन्न निजात्म ध्रुव तत्त्व में दृष्टि और ज्ञान को केन्द्रित करना ही स्वपर–भेद विज्ञान है।[5]

भक्ति और मुक्तिमार्ग में अरहन्त, सिद्ध और साधु पद तो आते हैं, पर आचार्य और उपाध्याय पद आना अनिवार्य नहीं है। आचार्य पद तो प्रशासन का पद है और उपाध्याय पद अध्यापन का पद हैं, दोनों में ही माथे पर भार रहता है।

चिन्तनात्मक निबंध

जिसमें मनन, अनुप्रेक्षा एवं विविध प्रकार के विचारों को महत्त्व दिया जाता है, वे चिन्तनात्मक निबंध हैं। डॉ. भारिल्ल के जितने भी प्रवचन, व्याख्याएँ या वस्तु–विषय के कथन हैं वे सभी चिन्तन प्रधान हैं। समयसार का सार आधुनिक एवं समसामयिक मूल्यों को व्यक्त करने वाले चिन्तनात्मक प्रयोग हैं। इसी तरह धर्म के दस लक्षण बारह भावनाएँ, णमोकार महामंत्र, तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, अनेकान्त और स्याद्वाद आदि के मूल में चिन्तन के विविध आयाम हैं।

---

1. आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंचपरमागम, पृष्ठ 98
2. ध्यान का स्वरूप, पृष्ठ 17
3. अहिंसा महावीर की दृष्टि में, पृष्ठ 8–9
4. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ 80
5. वही, पृष्ठ 118

समयसार का सार

यह पच्चीस प्रवचनों के अंश का विवेचन है। इसमें डॉ. भारिल्ल के द्वारा समयसार के विषय को लेकर अनेक प्रकार के चिन्तन दिए हैं। पहले प्रवचन में कुन्दकुन्द और उनके समय का चिन्तन है। इसी चिन्तन में उन्होंने कुन्दकुन्द को दिगम्बर जैनाचार्य के परम्परा के शिरोमणि आचार्य कहा है और उनके ग्रंथ समयसार को सम्पूर्ण जिनवाणी का शिरमौर कहा है।[1] इसमें समय के विविध अर्थ भी किए हैं, छह द्रव्य और आत्मा इसके अनन्तर इसी में द्रव्य कर्म, भाव कर्म और नौ कर्मों से रहित आत्मा के स्वरूप का विस्तार से वर्णन किया है। शुद्ध आत्मा से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की प्राप्ति होती है।[2] इसमें चिन्तन के विविध पक्ष हैं। समय के ससमय और पर समय के स्वरूप को बतलाने के लिए प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी कवियों के अनेक विचारों को भी आधार बनाकर समय की सार्थकता पर प्रकाश डाला है।

द्वितीय प्रवचन में भगवान आत्मा के स्वरूप का कथन किया है। तृतीय प्रवचन में एकत्त्व विभक्त भगवान आत्मा के विषय को समझाया है।

चतुर्थ प्रवचन में व्यवहारनय की दृष्टि को आधार बनाया। पंचम प्रवचन में भेद–विज्ञान की दृष्टि की गई। छठे प्रवचन में द्रव्यकर्म, भावकर्म और नौ कर्म की दृष्टि से समय की सार्थकता पर विचार किया गया है। सातवें प्रवचन में आत्म–ध्यान की प्रक्रिया है। आठवें प्रवचन में कर्त्तृत्व एवं भोक्तृत्व का उल्लेख है। इसके सम्पूर्ण विवेचन में कर्त्ता और कर्म के निषेध का भी वर्णन है जिसमें प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी एवं दार्शनिक ग्रंथों के अनेक उदाहरणों के आधार पर अपना चिन्तन प्रस्तुत किया। प्रत्येक जीव स्वयं का कर्ता है पर का नहीं।[3]

इसी तरह अन्य प्रवचनों में भी अनेक प्रकार के विवेचन हैं। इन विवेचनों में अन्य दर्शनों के दार्शनिक विवेचन को भी आधार बनाकर आत्म–स्वरूप का विश्लेषण किया गया है।

---

1. समयसार का सार, पृष्ठ 5
2. वही, पृष्ठ 6–7
3. वही, पृष्ठ 134

बौद्ध ऐसा मानते हैं कि ज्ञान निर्विकल्प है, किन्तु वह विकल्प का जनक है और जैन दर्शन यह मानता है कि ज्ञान विकल्प का जनक नहीं, अपितु वह विकल्पनात्मक ही है, विकल्प उसका स्वरूप है।

ज्ञान को सर्वथा निर्विकल्प मानने वाले जैन होते हुए भी प्रच्छन्न बौद्ध हैं, क्योंकि ज्ञान का स्वरूप ही विकल्पात्मक है, यह स्वभाव से ही विकल्पात्मक है, स्व–पर प्रकाशक है।[1]

विवेचन में सबसे बड़ी प्रमुखता यह है कि इन्होंने प्रत्येक अधिकार में गाथा के हिन्दी कवित्व भी दिए हैं।

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढ़ो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो।।
आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
आउं ण हरेसि तुमं कह ते मरणं कदं तेसिंह।।[2]

हिन्दी कवित्व–

मैं मारता हूँ अन्य को या मुझे मारे अन्यजन।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहे हे भव्यजन।
निज आयु क्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही।
तुम मार कैसे सकोगे जब आयु हर सकते नहीं।[3]

हिन्दी विवेचन में जितने भी कवित्व हैं, वे सभी अनेक प्रकार के छंदों में है उसमें हरिगीतिका टीका छन्द की प्रमुखता है।[4] कहीं–कहीं मध्य में सवैया, दोहा, रोला, कुण्डलिया, आडिल्ल, सोरठा।[5]

उपरोक्त विवेचन के अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के लौकिक, पारमार्थिक दृष्टान्तों के माध्यम से भी विषय को स्पष्ट किया है। उपयोग, संयोग, योग एवं प्रयोग इनके वास्तविक स्वरूप को इस तरह व्यक्त किया है।

कर्म के उदय के अनुसार संयोग हैं। जितने काल तक कर्म का उदय है, उतने काल तक वह संयोग है, उसके पश्चात् वह संयोग

1. समयसार का सार, पृष्ठ 242
2. वही, पृष्ठ 301
3. वही, पृष्ठ 301

चला जाता है। जो संयोग होगा, उसके साथ उपयोग का प्रयोग भी होगा।[1]

धर्म के दस लक्षण में क्षमादि दश गुणों को विस्तृत रूप से प्रतिपादित किया है, जिसमें उन्होंने कहा जिस आत्मा में आत्म–रुचि, आत्म–ज्ञान और आत्म–लीनतारूप पर्याय प्रकट होती है– उसमें धर्म के ये दश लक्षण सहज प्रकट हो जाते हैं। ये आत्माराधन के फलस्वरूप प्रकट होने वाले धर्म हैं, लक्षण हैं, चिन्ह हैं।[2]

क्षमा में उत्तम क्षमा का अभिप्राय व्यक्त करते हुए लिखा है–

उत्तम क्षमा तो एक अकषायभावरूप है, वीतरागभावस्वरूप है, शुद्धभावरूप है। वह कषायरूप नहीं, रागभावस्वरूप नहीं, शुभाशुभभावरूप नहीं, बल्कि इनके अभावरूप हैं।[3]

इनके सभी चिन्तन में समसामयिक दृष्टि है और यह भी चिन्तन है कि उत्तमक्षमादि धर्म सिद्धावस्था में भी रहते हैं।[4]

तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ चिन्तन के विविध पक्ष प्रस्तुत करता है। इसमें काल क्रम से लेकर सर्वोदय तीर्थ के संस्थापक तीर्थंकर महावीर के द्वारा प्रतिपादित द्रव्य व्यवस्था, कर्म स्वरूप तत्त्व, अनेकान्त स्याद्वाद, प्रमाण और नय आदि के कथन में कई प्रकार के चिन्तन हैं। धर्म के स्वरूप पर विचार करते हुए लिखा है कि वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान और आनन्द है। इस ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा के आश्रय से जो पर्याय प्रकट होती है, उसे धर्म कहा जाता है, वह सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र मय होता है। सम्यग्दर्शन–ज्ञान चरित्र की एकता ही मुक्ति का मार्ग है।[5]

षट् द्रव्य के चिन्तन में विश्व की सम्पूर्ण व्यवस्था पर चिन्तन किया गया है। डॉ. भारिल्ल छः द्रव्यों के समूह को विश्व कहते हैं।[6]

---

1. समयसार का सार, पृष्ठ 7–8
2. धर्म के दश लक्षण, पृष्ठ 7 3. वही, पृष्ठ 23 4. वही, पृष्ठ 74
5. तीर्थंकर भगवान महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ 37
6. वही, पृष्ठ 80

इसकी व्यवस्था में एक भी द्रव्य कम नहीं हो सकता है। यही नहीं अपितु द्रव्य एक–दूसरे को नहीं छोड़ सकते हैं। इसी चिन्तन में अनेक प्रकार के विचारों को महत्त्व दिया गया है और अपने चिन्तन के माध्यम से शुभोगपयोग, अशुभोगपयोग और शुद्धोपयोग के चिन्तन को पृथक–पृथक रूप में प्रतिपादित करके शुद्धोपयोग को उपादेय और शुभोपयोग को हेय भी कहा है।[1] बारह भावनाएँ के चिन्तन में मूलतः आध्यात्मिक जीवन के चिन्तन को विशेष महत्त्व दिया गया। उन्होंने अनुप्रेक्षा की दृष्टि को लेकर कहा– चिन्तन वैराग्योत्पादक एवं तत्त्वपरक होता है।[2] अनित्य आदि भावनाओं में सम्यक् चिन्तन को विशेष महत्त्व दिया गया है। इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर उनके अनुशीलन पर विचार करते हैं तब सच्चे उपाय पर दृष्टि जाती है। जगत की क्षणभंगुरता को पहचान कर स्वभाव सन्मुख होना अनित्य भावना है।[3] अशरण में भी आत्मा शरण है[4], बहिरात्मा नहीं। अशरण का अर्थ है असहाय। जिसे पर की सहायता की–शरण की आवश्यकता नहीं, वस्तुतः वही असहाय है, अशरण है। आचार्य पूज्यपाद ने इसी अर्थ में केवलज्ञान को असहाय ज्ञान कहा है। जिस ज्ञान को पदार्थों के जानने में इन्द्रिय, आलोक आदि किसी की भी सहायता की आवश्यकता नहीं होती, उसे असहाय ज्ञान या केवलज्ञान कहते हैं।[5] ऐसे ही चिन्तन संसार, एकत्त्व, अन्यत्व अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, बोधिदुर्लभ एवं धर्म भावना में भी हैं। आत्मा की साधना और आराधना भी धर्म है।[6] प्रत्येक भावना के चिन्तन में प्रायः हिन्दी कवियों के कवित्व हैं उनमें भी पंडित दौलतराम, भूधरदास, पं. भागचन्द, मंगतराम, पं. जयचंद, पण्डित दीपचन्द, पण्डित चैनसुखदास, भैया भगवतीदास, बुधजन, कविवर गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, बाबू जगमोहनदास, बनारसीदास आदि अनेक हिन्दी, जैन कवियों के कवित्व, प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश कवियों के संदर्भ आदि से भी अपने चिन्तन को नया रूप दिया है।

1. समयसार का सार, पृष्ठ 165–169 2. वही, पृष्ठ 13
3. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, बारह भावना एक अनुशीलन, पृष्ठ 31
4. वही, पृष्ठ 36 5. वही, पृष्ठ 37 6. वही, पृष्ठ 164

डॉ.भारिल्ल के निबंधों और लेखों की साहित्यिक विचारणा –

निबन्ध और लेख में प्रकृति, संस्कृति, आचार–विचार, भाषा, कल्पना, विचार, आध्यात्मिक कला, संस्कार आदि पर आधारित कोई भी विषय हो सकता है, यह निबंध विधा की विशेषता है। एक ही विषय पर अनेक निबंध लिखे जाते हैं पर सभी के विचार अलग–अलग एवं मौलिक होते हैं।[1] निबंध में बाह्य और अभ्यान्तर दोनों की दृष्टियाँ होती हैं, उसमें लेखक का पूर्ण अभिप्राय होता है विचारों का संकलन और तर्कों का भी समावेश होता है।

डॉ. भारिल्ल बहुभाषाविद् हैं। उन्होंने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी साहित्य के क्रियाशील लेखकों के आधार पर जो कुछ भी लिखा है, वह प्रायः आन्तरिक भावनाओं से युक्त हैं। उसमें भी लेखक ने तर्क और बुद्धि के आधार पर भावात्मक अनुभूति को प्रतिपादित किया है। आपने अपने लेखन में नैतिक मूल्यों की स्थापना को विशेष महत्त्व दिया है। यही नहीं अपितु अपनी शोधपरक समीक्षा से व्यावहारिक और सैद्धान्तिक पक्ष दोनों को ही मानवीय मूल्यों के साथ जोड़ने का कार्य किया है। उनके निबंधों एवं लेखों में समालोचना और आध्यात्मिक विचारों की सत्ता है। उन्होंने विश्व संस्कृति की नवीन व्यवस्था को भी बौद्धिकता के आधार पर व्यक्त किया है।

साहित्य की विचारणा

मूलतः किसी भी साहित्य का मूल्यांकन अनेक प्रकार के तथ्यों से किया जाता है। उनमें परिचय, वर्णन, विवेचन आदि की विशेषताएँ होती हैं। आलोचकों ने जिन्हें निम्न रूप में व्यक्त किया है– परिचयात्मक, इतिवृत्तात्मक, वर्णनात्मक, चिन्तनात्मक, काव्यात्मक, विवेचनात्मक, भावनात्मक आदि हैं।[2]

डॉ. भारिल्ल के उक्त विचारों की अपेक्षा निम्न साहित्यिक तथ्यों की दृष्टि से मूल्यांकन आवश्यक है जिसे साहित्य की विधा में शैली भी कहते हैं।[3] जो इसप्रकार हैं– तत्सम प्रधानता, भाषा की ओजस्विता,

1. हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास, पृष्ठ 294
2. वही, पृष्ठ 295
3. डॉ. माया जैन, आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं काव्य कला, पृष्ठ 178

तार्किकता, उद्धरण बहुलता, संदर्भगर्भिता, तुलनात्मकता, व्यंग्य--विनोद, भावुकता की अपेक्षा तर्काश्रित आग्रहपूर्वक प्रतिपादन सूक्तियाँ, यौगिकता, प्रतीकपरकता और व्यासगुण हैं।[1]

तत्सम प्रधान शैली[2]

प्राचीन लेखकों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की शैली में तद्भव की विशेषता है। प्रतापनारायण मिश्र ने भी इसी शैली को अपनाया। स्वामी दयानन्द सरस्वती एवं हिन्दी जगत के प्रसिद्ध लेखक जयशंकर प्रसाद, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि की तत्सम प्रधान शैली है।[3]

डॉ. भारिल्ल ने अपने अध्ययन में संस्कृतनिष्ठ शब्दों के प्रयोगों को विशेष महत्त्व दिया है जिसे हिन्दी साहित्य में तत्सम शब्द कहा जाता है। तत्सम का अर्थ समानता है।

धर्म के दशलक्षण में तत्सम शब्दों की बहुलता है जैसे क्षमा आत्मा का स्वभाव है।[4]

सम्यग्ज्ञान भी धर्म है। अज्ञान आत्मा का विभाव है।[5] ज्ञान का अभाव अज्ञान, क्षमा का अभाव अक्षमा।[6]

ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर।[7]

परम पवित्र ज्ञानान्दस्वभावी जिन शब्द।[8]

प्रायश्चित्तादि विनय, वैयावृत्त, त्याग और ध्यान।[9]

तद्भव शैली

तत्सम शब्द से विकृत हुआ शब्द तद्भव शब्द कहलाता है।

अपनी बात तो करते नहीं।[10] इसमें अपनी और बात दोनों ही तद्भव शब्द है। शौच सदा निरदोष[11] इसमें निरदोष तद्भव शब्द है क्योंकि यह निर्दोष का बना हुआ शब्द है। सोना लोहा हो जावे[12] दाँत मुँह में हैं, छूत हैं[13], ... हड्डियाँ भी जीवित हैं।

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 717
2. हिन्दी गद्य साहित्य, पृष्ठ 271
3. धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ 10
4. वही, पृष्ठ 11
5. वही, पृष्ठ 12
6. वही, पृष्ठ 28
7. वही, पृष्ठ 68
8. वही, पृष्ठ 101
9. वही, पृष्ठ 62
10. वही, पृष्ठ 63
11. वही, पृष्ठ 69
12. वही, पृष्ठ 68
13. वही, पृष्ठ 68

संयम रतन संभाल[1]

आँख के माध्यम से कुछ काला–पीला दिखने लगता है।[2] दोनों नेत्र उस चेहरे के छिद्र हैं, दोनों स्तन माँस से भरे हुए हैं, दोनों भुजाएँ हड्डियाँ हैं, उदर मलमूत्रादि का स्थान है, जंघा प्रदेश बहते हुए मल का घर है तथा पैर ठूंठ के समान है।[3] दीपक सकोरे का नाम नहीं है, तेल अथवा बाती का नाम नहीं है, वास्तविक दीपक तो लौ ही है।[4] सुवर्ण में जड़े हुए माणिक।[5]

इस तरह से अनेक तद्भव शब्दों का निबन्धों में प्रयोग हुआ है।

भाषा की ओजस्विता

डॉ. भारिल्ल आध्यात्मिक विचारक हैं। वे कुशल वक्ता हैं। उनके गद्य में समाज संरचना के अतिरिक्त प्राणीमात्र के रक्षण शैली का भी समावेश है। उन्होंने अपने गद्य में विविध प्रकार के प्रतीकों, दृष्टान्तों और कल्पना तत्त्व को भी रखा है।

तीव्रता और वेग क्रोध में देखने में आता है–उतना बैर में नहीं, तथापि क्रोध का काल बहुत कम है, चलता रहता है।[6] यदि कपड़े खोले बिना अन्दर पाँव भी रखा तो समझ लें कि जिन्दा जला दूंगी।[7] न जन्म अहिंसा है, न जीवन अहिंसा है और न मृत्यु हिंसा है। मृत्यु तो प्राणधारियों का सहज स्वभाव है।[8] ध्यान के स्वरूप में निम्न विचार अनुभूति को व्यक्त करते हैं। वही शुद्ध चारित्र है, वही परमपवित्र है, वही अंतः तत्त्व है, वही परमतत्त्व है, वही शुद्धात्म–द्रव्य है, वही परमज्योति है, वही शुद्ध आत्मा की अनुभूति है, वही आत्मा की प्रतीति है, वही आत्मा की सवित्ति है, वही स्वरूप की उपलब्धि है, वही नित्यपदार्थ की प्राप्ति है, वही परमसमाधि है, वही परमानन्द है, वही नित्यानन्द है, वही सहजानन्द है, वही सदानन्द है, वही परम स्वाध्याय है।[9]

1. धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ 84
2. वही, पृष्ठ 94
3. बारह भावना एक अनुशीलन, पृष्ठ 90–91
4. प्रवचन सार का सार, पृष्ठ 216
5. वही, पृष्ठ 217
6. धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ 16
7. अहिंसा महावीर की दृष्टि में, पृष्ठ 14
8. वही, पृष्ठ 30
9. ध्यान का स्वरूप, पृष्ठ 24

ओजस्वी वक्ता के वक्तृत्व से जो प्रसूत प्रबन्ध में जो प्रबन्धन है उसमें भाषा की ओजस्विता अध्यात्म के विषय को लिए हुए हैं। जैसे–जैसे मैं कहता हूँ कि भगवान वीतरागी हैं, सर्वज्ञ हैं और सम्पूर्ण लोकालोक को जानते हैं।[1] ज्ञान को दौड़ाओ, अकेले शास्त्रों से नहीं, शास्त्र ज्ञान के साथ–साथ चिन्तन भी हो।[2]

इस तरह अनेक निबन्धों में आध्यात्मिक शैली की भाषा की प्रत्येक प्रस्तुति में ओजस्विता है।

तार्किकता

डॉ. भारिल्ल के विचारों में नाटकीयता, प्रश्नोत्तर, कथोपकथन आदि का समावेश है।

एक निर्बन्ध परमाणु (मात्र परमाणु) जीव को बन्ध में निमित्त नहीं होता, अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु इकट्ठे होकर ही बन्ध में निमित्तरूप हो सकते हैं। कम से कम स्थिति–अनुभागवाला कर्म हो, उसमें भी अनन्तानंत पुद्गल ही होते हैं। ऐसे अनन्तानन्त पुद्गल और उनके आश्रय से होने वाले अनन्त प्रकार के विकारों की परम्परा को आगम रूप कर्मपद्धति कहते हैं।[3]

इसमें परमाणु की पद्धति पर विचार किया गया है।[4] और यह सिद्ध किया है कि पुद्गल अनन्तानंत होते हैं वे ही बंध को प्राप्त होते हैं।

हिंसा और अहिंसा के विषय को एक नये रूप में तार्किक दृष्टि से प्रस्तुत किया है– आत्मा में ही उत्पन्न न हो–यही विचार कर उन्होंने हिंसा–अहिंसा की परिभाषा[5] में यह कहा कि आत्मा में रागादिभावों की उत्पत्ति होना ही हिंसा है और आत्मा में रागादिभावों की उत्पत्ति नहीं होना ही अहिंसा है।[6(क)]

उद्धरण बहुलता

डॉ. भारिल्ल के गद्य साहित्य में वाक्यांगभूत उद्धरण, अर्थ सहित

1. प्रवचनसार का सार, पृष्ठ 73
2. वही, पृष्ठ 73
3. परमार्थ वचनीका प्रवचन, सन् 1983, पृष्ठ 50
4. वही, पृष्ठ 50
5. अहिंसा महावीर की दृष्टि में, पृष्ठ 17
6. (क) वही, पृष्ठ 17 (ख) वही, पृष्ठ 12

उद्धरण, अर्थ विश्लेषण एवं परिभाषायें आदि भी हैं। आपके गद्य में राम, सीता, हनुमान जैसे ऐतिहासिक एवं पौराणिक पात्रों के उदाहरण दिये गये हैं तथा कहीं आधुनिक व्यक्तियों के भी उदाहरण दिए गए हैं जिनमें टोडरमल तथा ज्ञानसागर आदि हैं।

धर्मात्मा के लिए एक उदाहरण दिया– काया की हिंसा को तो सरकार रोकती है। यदि कोई किसी को जान से मार दे तो पुलिस पकड़ लेगी, उस पर मुकदमा चलेगा और फाँसी की सजा होगी।[1]

संदर्भगर्भिता

डॉ. भारिल्ल के गद्य साहित्य में प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि ग्रंथों के संदर्भ पर्याप्त रूप से मिलते हैं।

प्राकृत – धवल का उदाहरण–

"कं पि दारं दठ्ठूण य पावजणं।[2]
पप्पा इट्ठे विसते कासेहिं समस्सिदे सहावेण।
परिणममाणो अप्पा सयमेव सुहाण हवदि देहो।।[3]
ते पुण उदिणतण्हा दुहिदा तण्हाहिं विसयसोक्खाणि।
इच्छांति अणुभंवति य आमरणं दुक्खसंतता।। ।।[4]

संस्कृत

"एष एवाशेषद्रव्यांतरभावेभ्यः भिन्नत्वेनोपास्यमा शुद्ध इत्यभिलप्यते यही आत्मा समस्त परद्रव्य के भावों से भिन्नपने सेवन किया गया शुद्ध–ऐसा कहा जाता है।[5]

'असिद्धपरिणमनत्वात् व्यवहारः।' निगोद से लेकर चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त सभी संसारी जीवों की अवस्था के प्रकार इन तीनों विभागों में समा जाते हैं।[6]

'सविद्या या विमुक्तये' आत्मा को मोक्ष का कारण न हो, ऐसी विद्या को विद्या कौन कहे ?

---

1. नयचक्र, पृष्ठ 247
2. समयसार का सार, पृष्ठ 105
3. वही, पृष्ठ 112
4. परमार्थ वचनिका, पृष्ठ 24
5. वही, पृष्ठ 27
6. वही, पृष्ठ 74

'गुणपर्ययवद् द्रव्यम्', उत्पाद–व्ययं–ध्रौव्ययुक्तं सत्' 'सद् द्रव्य–लक्षणम्'[1]

''अतः परं जीवादिनवाधिकारेषु जीवस्य कर्तृत्वभोक्तृत्वादिस्वरूपं यथास्थानं

निश्चय–व्यवहार विभागेन सामान्येन यत्पूर्वं सूचितं, तस्यैव विशेषविवरणार्थं कुणदि

विहणू इत्यादि गाथा मादिं कृत्वा पाठक्रमेण षडधिकनवतिगाथापर्यन्तं चूलिकाव्याख्यानं

करोति।[2]

गुजराती

'तू रूचतां जग तनी रुचि आलसे सौ'[3]

तुलनात्मकता

आपने अपने विषय को स्पष्ट करने के लिए तुलनात्मक शैली का भी उपयोग किया है।

तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के चरित्र को प्रतिपादित करने के लिए आपने वैदिक संस्कृति के प्राचीनतम ग्रंथ वेद, उपनिषद्, पुराण आदि को आधार बनाकर ऋषभ के जीवन की सार्थकता वर्द्धमान, पार्श्वनाथ, अरिष्टनेमि, आदिनाथ आदि का भी उल्लेख किया है। यजुर्वेद में ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीन तीर्थंकरों के नामों का निर्देश है। महाभारत में विष्णु के सहस्त्र नामों में श्रेयांस, अनंत, धर्म, शान्ति और संभव नाम आते हैं और शिव के नामों में ऋषभ, अजित, अनन्त और धर्म मिलते हैं। विष्णु और शिव दोनों का एक नाम सुव्रत दिया गया है। ये सब नाम तीर्थंकरों के हैं। लगता है कि महाभारत के समन्वयपूर्ण वातावरण में तीर्थंकरों को विष्णु और शिव के रूप में सिद्ध कर धार्मिक एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। इससे तीर्थंकरों की परम्परा प्राचीन सिद्ध होती है।[4]

---

1. प्रवचन का सार, पृष्ठ 150
2. समयसार अनुशीलन, भाग–4, पृष्ठ 4
3. परमार्थ वचनिका प्रवचन, पृष्ठ 70
4. वही, पृष्ठ 7–8

ध्यान के स्वरूप में प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग, इन चारों अनुयोगों के साथ–साथ इसमें जीव के गतित्व पर भी प्रकाश डाला है।

जो जीव सम्यग्दर्शन से शुद्ध है, वे यदि व्रत रहित हों, तब भी नरक और तिर्यंचगति में नहीं जाते, स्त्री व नपुंसक नहीं होते, दुष्कुल में पैदा नहीं होते, विकृत शरीर वाले नहीं होते, अल्पायु नहीं होते और दरिद्री भी नहीं होते।[1]

अहिंसा महावीर की दृष्टि में राग और विराग दोनों के विषय को इस तरह से प्रतिपादित किया है – युद्धों में होने वाली सर्वाधिक द्रव्य हिंसा के मूल में राग ही कार्य करता है। यही कारण है कि भगवान महावीर ने रागादि भावों की उत्पत्ति को हिंसा कहा है रागादिभावों की उत्पत्ति नहीं होना अहिंसा है।[2]

परमार्थ वचनिका प्रवचन में ज्ञानी और अज्ञानी की पद्धति को तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। जितनी शुद्ध परिणति हैं उतना शुद्ध व्यवहार है, वह अध्यात्म पद्धति है, उसके बिना मोक्षमार्ग होता नहीं। शुभराग की स्थूल क्रिया अज्ञानी को बाहर में दिखाई देती है, अतः उसकी बात शीघ्र समझ जाता है अर्थात् उसे ही मोक्षमार्ग मान लेता है।[3]

अज्ञानी जीव शुद्ध परिणति को नहीं जानता। इस पद्धति को समझाने के लिए डॉ. भारिल्ल ने प्रवचनसार आदि ग्रंथों के सूत्र को आधार बनाकर समझाया है– मोक्ष मार्ग तो अध्यात्म पद्धतिरूप है, आत्मा के आश्रय से होने वाली शुद्धचेतना परिणति ही मोक्षमार्ग है, उसके द्वारा ही मोक्ष सुगमता से मिल सकता है, अतः वही सरल मार्ग है–सच्चा मार्ग है। इसके अतिरिक्त अन्य मार्ग से मोक्ष प्राप्ति दुर्गम है–सच्चा मार्ग है। इसके अतिरिक्त अन्य मार्ग से मोक्ष प्राप्ति दुर्गम है, अशक्य है।[4]

क्रमबद्धपर्याय में वस्तुस्वरूप पर विचार करते हुए लिखा है

1. ध्यान का स्वरूप, पृष्ठ 10
2. अहिंसा महावीर की दृष्टि में, पृष्ठ 23
3. परमार्थ वचनिका प्रवचन, पृष्ठ 55
4. वही, पृष्ठ 56

स्त्री–पुत्रादि, मकान–जायदाद किसी के नहीं हैं, फिर भी लोक में इन्हें अपने कहने का व्यवहार प्रचलित है। मान्यता का सम्बन्ध सीधा वस्तुस्वरूप से है और वाणी का व्यवहार लौकिकजनों से होता है। अतः ज्ञानी की मान्यता तो वस्तुस्वरूप के अनुसार होती है और वचन–व्यवहार लोक–व्यवहार के अनुसार होता है।[1]

क्षमादि दस धर्मों के विवेचन में प्रायः तुलनात्मक दृष्टि का प्रयोग हुआ है। क्रोध का अभाव आत्मा के आश्रय से होता है। मिथ्यादृष्टि के आत्मा का आश्रय नहीं है अतः उसके क्रोध का अभाव नहीं हो सकता।[2]

व्यंग्य–विनोद

डॉ. भारिल्ल ने अपने निबंधों एवं लेखों में व्यंग्य–विनोद को लेकर अपनी बात स्पष्ट की है।

ये माताएँ–बहिने हैं न, बड़ी धर्मात्मा, इतनी धर्मात्मा कि प्रातःकाल उठेंगी तो स्वयं नहायेंगी, गाय को नहलायेंगी, बाल्टी को नहलायेंगी, उसमें निकला दूध पियेंगी। तब धर्मात्मा होंगी[3]

यदि मेरे पास चौके में आना हो तो कपड़े खोलकर आ, अन्यथा मेरा चौका अपवित्र हो जाएगा।[4] एक चिड़िया आती है, गेहूँ का एक दाना लेकर फुर्र करके उड़ जाती। चिड़िया आई, एक दाना लिया और फुर्र करके उड़ गई।[5] जो पैसे वाले होते हैं, लोग उन्हें सुखी कहते हैं। जैन समाज में आज सबसे ज्यादा सुखी आप ही दिखते हो फिर भी हमें तो आप भी दुःखी ही दिखते हैं क्योंकि आप हमसे सुख पूछ रहे हो।[6] रेल यात्रा करते समय एक यात्री के पेट में भयंकर दर्द हुआ तो पड़ौस में बैठे व्यक्ति ने एक पुड़िया दी परन्तु उस पर उसने ध्यान नहीं दिया। स्टेशन से उतरते ही पुनः पेट दर्द हुआ पुड़ियाँ उठाई और खा ली सचमुच पाँच मिनिट में दर्द ऐसा गायब हुआ कि जैसे गधे के सिर से सींग गायब हो गये।[7]

---

1. क्रमबद्ध पर्याय, पृष्ठ 29, सन् 1980
2. धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ 17
3. अहिंसा महावीर की दृष्टि में, पृष्ठ 4. वही, पृष्ठ 14
5. छहढाला का सार, पृष्ठ 6 6. वही, पृष्ठ 28 7. वही, पृष्ठ 64

सूक्तियाँ[1]

अच्छे वचनों को सूक्ति कहते हैं।
धर्म– व्यक्तिगत विश्वास है।
नारी – नारियां सहज श्रद्धामयी होती है।
मित्र – सच्चे साथी को मित्र कहते हैं।
भक्ति – गुणों के प्रति अनुराग।
मान – बड़प्पन का भाव मान है।
जीवन की सार्थकता – अखण्ड आत्मा की उपलब्धि।
आवेश – तत्काल बदला लेना।
सत्य – सत्य आत्मा का धर्म है।

प्रतीकपरकता

प्रतीकों के माध्यम से विषय को प्रतिपादित करना। जैसे नरकगति में सर्दी–गर्मी को प्रतीकों के माध्यम से बतलाया है। मेरू के समान लोहे का गोला भी छार–छार हो जाये, पिघल जाये, भूख प्यास इतनी कि तीन–लोक का अनाज खा जावे, समुद्रों का पानी पी जावे तब भी न मिटे, पर एक कण अनाज और एक बूँद पानी ना मिले।[2] चिन्तामणि एक प्रतीक है जो रत्नरूप में प्रसिद्ध है। जो कठिनता से प्राप्त होता है। उसी तरह से त्रस पर्याय प्राप्त होती है। जिसप्रकार किसी को चिन्तामणि रत्न मिल गया हो, उसीप्रकार से त्रस पर्याय प्राप्त हुई।[3]

देशज

डॉ. भारिल्ल के निबन्धों में देशी शब्दों का भी प्रयोग है।

जंघा[4], भरपेट[5], मझधार[6], उजड़ी[7], धूल–मिट्टी[8], छुट्टी[9], बछड़े, गाय, चाटती[10], भेष, स्वांग, अखाड़े[11], करोंत, कुल्हाड़ी, लकड़ी, दैवी, अकेला पेट भी हाथी नहीं।[12] पैर–खम्भे, पेट, दीवाल[13], कंगाल, काँच का टुकड़ा, टिक, देह[14], रोटियाँ।[15]

1. चिन्तन की गहराइयाँ, पृष्ठ 3–79
2. छहढाला का सार, पृष्ठ 11
3. वही, पृष्ठ 10
4. तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव, पृष्ठ 15
5. छहढाला का सार, पृष्ठ 117
6. तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव, पृष्ठ 19
7. वही, पृष्ठ 21
8. छहढाला का सार, पृष्ठ 117
9. ध्यान का स्वरूप, पृष्ठ 23
10. समयसार अनुशीलन–4, पृष्ठ 108
11. वही, पृष्ठ 109
13. वही, पृष्ठ 111
14. महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ 140

आपके निबन्धों में देशी शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है उसमें भी प्रायः बुन्देलखण्ड के शब्दों की प्रमुखता है। जैसे–

सूई में डोरा डालने का काम 'सुई पोवना' है नाम।[1]

सत्तू, मनमत्तू, कब घोले ? कब खाय

धान, चट्ट कूटी, पट्ट खाई।।[2]

हिन्दी निबन्ध कला में निबन्धकार के निबन्धों में कई प्रकार के प्रयोगों को इस तरह से समाहित किया कि सुनने या पढ़ने वाले के लिए रुचि का अनुभव होता है। क्योंकि लेखक उन शब्दों को इस तरह रख देता है कि उससे हिन्दी का स्वरूप नष्ट नहीं होता है। जैसे यदि ड्रेस से अप टू डेट मानें तब भी भगवान महावीर आउट ऑफ डेट नहीं हो सकते, क्योंकि वे विदाउट ड्रेस थे। मैं धोती–कुर्त्ता पहिनता हूँ और आप लोग सूट–पेंट, पर यह अन्तर तो मात्र ड्रेस का है, ड्रेस के भीतर विद्यमान शरीर तो सबका एक–सा ही है।[3] इसी तरह एक ही प्रयोग में संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, देशज शब्दों का प्रयोग भी दिखाई पड़ता है, सीजन चल रहा है, नौकरीपेशा नौकरी पर चला जाता है, कहता है आकस्मिक अवकाश (सी.एल.) बाकी नहीं है।[4]

विविध भाषाओं के प्रयोग

मूलतः यहाँ संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी एवं देशज शब्दों के प्रयोग भी इनके निबन्धों में मिलते हैं।

संस्कृत

'मरणं प्रकृति शरीरिणां'[5], अहिंसा परमो धर्मः[6], स्वयमेव परिणमन्ते[7]

डॉ. भारिल्ल संस्कृत के ज्ञाता हैं, उन्होंने प्राचीन, संस्कृत शिक्षा को प्राप्त किया इसलिए इनके सम्पूर्ण साहित्य में संस्कृत शब्दों की

1. नि. 3, पृष्ठ 47
2. वही, पृष्ठ 58
3. गागर में सागर, पृष्ठ 31
4. वही, पृष्ठ 36 5. वही, पृष्ठ 69
6. वही, पृष्ठ 67
7. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ 170
8. वही, पृष्ठ 178
9. निमित्तोपादान, पृष्ठ 21

बहुलता है। उनके सूक्त, विचार एवं श्लोक प्रत्येक निबन्ध में देखने को मिलते हैं।

प्राकृत

मरदु व जियदु जीवो[1], णाणं होदि पमाणं[2], अप्पा सो परमप्पा[3]

आप प्राकृत के अध्यात्म ग्रंथों के अनुशीलक हैं। इसलिए षट्खण्डागम्, कषायपाहुड, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, अष्टपाहुड़, द्रव्यसंग्रह, अनुप्रेक्षा आदि अनेक ग्रंथों के विचार प्राकृत में दिए गए।

हिन्दी

भारतीय धर्म एवं संस्कृति।[4]

डॉ. भारिल्ल हिन्दी शिल्पकला के उच्च विचारक हैं। उनकी हिन्दी प्रायः संस्कृतनिष्ठ है। जिन अध्यात्म–गगन के दैदीप्यमान नक्षत्र कविवर पण्डित बनारसीदास, हिन्दी–साहित्य–गगन के भी चमकते सितारे।[5] आपकी दृष्टि हिन्दी के प्राचीन लेखकों और आधुनिक विचारकों के मूल्यों से जुड़ी हुई है।

अंग्रेजी

प्रोफेसर कॉलेज[6], रेडियो स्टेशन[7], स्टेज[8], वार्ड ड्यूटी[9], इन्टरव्यू, इंजीनियरिंग, डॉक्टरों, सर्विस, गारन्टी।[10]

लेखक की लेखनी से जन प्रचलित अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग सर्वत्र हुआ है।

उर्दू

मौत, कीमत, ख्याल, ओझल[11], अनजानी, अबुज, जमे–रमे[12], लावारिस, मजदूरी, जिन्दगी, बसर, दुनिया, गमगीन, बुजुर्ग, मजाक[13], खुश, बेशकीमती, उदास।[14]

---

1. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ 183
2. वही, पृष्ठ 146
3. नि. उ., पृष्ठ 59
4. तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव, पृष्ठ 7
5. बिखरे मोती, पृष्ठ 12
6. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ 143
7. नि. उ., पृष्ठ 60
8. बिखरे मोती, पृष्ठ 73
9. वही, पृष्ठ 75
10. वही, पृष्ठ 115
11. तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव, पृष्ठ 17
12. समयसार अनुशीलन–4, पृष्ठ 111
13. नि. उ., पृष्ठ 60–61
14. बिखरे मोती, पृष्ठ 79

हिन्दी एवं जन सामान्य में प्रचलित अनेक उर्दू शब्द भी समाहित हो गए।

व्यासगुण

व्याख्यात्मक विवेचन को व्यास शैली कहते हैं।

ध्यान स्वरूप में इस तरह की शैली है जिसमें एक ही विषय को अनेक रूपों में व्यक्त किया गया। वही शुद्धात्म स्वरूप है, वही परमात्मस्वरूप है, वही एकदेश–प्रगटतारूप विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चयनय से स्वशुद्धात्म के संवेदन से उत्पन्न सुखामृतरूपी जल के सरोवर में रागादिमल रहित होने के कारण परमहंसस्वरूप है।[1]

इसी तरह समयसार अनुशीलन, प्रवचनसार, नयचक्र, धर्म के दस लक्षण, छहढ़ाला का सार आदि में व्यासगुण की प्रधानता है। समयसार अनुशीलन में प्रायः एक गाथा के विषय को विस्तृत रूप से अनेक प्रमाणों सहित द्रष्टान्तों के माध्यम से उस विषय को समझाया है। बंध के कारण में बाह्य और अभ्यान्तर दोनों दृष्टियां दी हैं। इसके विषय की सूक्ष्मता के लिए अष्टसहस्री के आधार पर उपादान आदि शक्तियों को विस्तार से प्रतिपादित किया है। परिणाम क्षणिक उपादान है और गुण (शक्ति) शाश्वत–ध्रुव उपादान है। ध्रुव को द्रव्य की शक्ति को उपादान कहकर तो व्यवहार सिद्ध किया है। प्रगट पर्याय में जो निर्मलदशा प्रकट होती है, वह क्षणिक उपादान है, वही यथार्थ निश्चय है। वह वर्तमान पर्याय निमित्त के आधार से तो होती ही नहीं है, वरन् द्रव्य के त्रिकाली ध्रुव उपादान के आधार से भी नहीं होती।[2]

धार्मिक अवधारणा

धर्म को पालने वाले धार्मिक होते हैं। जो धर्म के विविध पक्षों को धारण करते हैं वे धार्मिक कहलाते हैं। आचार्य समन्तभद्र ने धर्म के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि जो प्राणियों को संसार के दुःख से उठाकर वीतराग सुख की ओर ले जाता है वह धर्म कहलाता है।[3] जो इष्ट स्थान की ओर ले जाता है उसे भी धर्म कहते

1. ध्यान का स्वरूप, पृष्ठ 23–24 2. प्रवचन रत्नाकर, भाग–8, पृष्ठ 133
3. रत्नकरण्ड श्रावकाचार भाग–2

हैं। संसार में पड़े हुए जीवों की चतुर्गति के दुःखों से रक्षा करने वाला एकमात्र इष्ट स्थान धर्म है। इसलिए इष्ट स्थान की ओर अग्रसर होने वाले धार्मिक कहलाते हैं।

डॉ. भारिल्ल के निबन्धों में प्रायः धार्मिक भावनाओं का ही समावेश है। क्योंकि उन्होंने जो कुछ भी चिन्तन किया वह आचार्य परम्परा के समस्त साहित्य के विधिवत् अध्ययन के आधार पर किया। शास्त्रीय पद्धति के साथ–साथ सिद्धान्त और अध्यात्म दोनों ही प्रकार के विचारों को अपनी लेखनी के माध्यम से अनेक प्रकार की विधाओं को स्पर्श किया और निबन्धों के माध्यम से सम्पूर्ण धार्मिकता के चिन्तन को प्रस्तुत किया। उनकी प्रस्तुति में श्रमण धर्म के श्रमणाचार्य की सम्पूर्ण पद्धति और श्रावकों के श्रावकाचार के अनेक पक्ष प्रत्येक निबन्ध में समाहित हैं।

श्रमणाचार

श्रमण/अनगार/यति/मुनि श्रमण कहलाते हैं।[1] श्रमण को साधु भी कहते हैं। वे पंच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, बाईस परीषह, दस धर्म एवं छह आवश्यक गुणों का पालन करते हैं।

प्रवचनसार, मूलाचार आदि में श्रमणों के अर्थात् साधुओं के गुणों का विस्तार से विवेचन किया है और कहा है श्रमण 28 मूलगुणों को धारण करने वाले होते हैं। उनमें महाव्रत, समिति, इन्द्रिय निरोध, केशलोंच, षड् आवश्यक अचेलकत्व, अस्नान भूमि शयन, अदंत च्चोवन, खड़े–खड़े भोजन और एक बार आहार को ग्रहण करते हैं वे पंच आचार परायण भी होते हैं। अर्थात् ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चरित्राचार, वीर्याचार और तपाचार के पालन करने वाले होते हैं।[2]

महाव्रत : स्वरूप एवं विश्लेषण

सब प्रकार से निवृत्त होना महाव्रत है। अर्थात् हिंसादि पाँचों पापों का मन, वचन और काय से पूर्ण त्याग करना महाव्रत है।[3]

---

1. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग–4, पृष्ठ 46
2. मूलाचार, गाथा 213
3. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक–72

अनागार धर्म का पालन करने वाला सर्वदेश का त्यागी होता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने चारित्र पाहुड़ में कथन किया कि हिंसा से विरति अहिंसा है। असत्य से विरति सत्य है। अदत्त से विरति, अचौर्य, अब्रह्म से विरति ब्रह्मचर्य और परिग्रह से पूर्ण विरति होने पर महाव्रती होता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने समस्त संग से विरति को विशेष महत्त्व दिया।[1]

मूलाचार में उक्त दृष्टि को महत्त्व दिया गया; जिसमें विरति, परिवर्जन और विमुक्ति शब्द के आधार पर पूर्णत्याग की विशेषता को दर्शाया है।[2]

अहिंसा महाव्रत : मन–वचन–काय एवं कृत–कारित अनुमोदना से समस्त त्रस–स्थावर जीवों की विराधना का त्याग करना अहिंसा महाव्रत है। मुनिराज जब स्वरूप में लीन होते हैं तो उनकी समस्त मन–वचन–कार्य प्रवृत्ति रुक जाती है जिससे उनके द्वारा किसी जीव की विराधना नहीं होती है। यह निश्चय से अहिंसा महाव्रत है।

सत्य महाव्रत : मन–वचन–काय एवं कृत–कारित अनुमोदना से जीवों की विराधना करने वाले समस्त वचनों का त्याग करना सत्य महाव्रत है। जिन वचनों के बोलने से किसी जीव को कष्ट पहुँचे वे वचन चाहे सत्य हों या असत्य हों, असत्य की श्रेणी में ही आते हैं। अथवा मुनिराज जब अपने स्वयं में लीन होते हैं तो सम्पूर्ण वचन व्यापार रुक जाता है यह निश्चय से सत्य महाव्रत है।

अचौर्य महाव्रत : मन–वचन–काय एवं कृत–कारित अनुमोदना से किसी भी परवस्तु को ग्रहण करने का त्याग करना अचौर्य महाव्रत है। मुनिराज को अपने स्वरूप का ज्ञान एवं श्रद्धान होने से परद्रव्य मात्र को ग्रहण करने का भाव ही नहीं होता यह निश्चय से अचौर्य महाव्रत है।

ब्रह्मचर्य महाव्रत : मन–वचन–काम एवं कृत–कारित अनुमोदना से स्त्री मात्र में कुशील भाव का त्याग करना ब्रह्मचर्य महाव्रत है। मुनिराज जब अपने स्वरूप में लीन होते हैं तब उनके स्त्रीमात्र ही

1. चारित्र पाहुड, गाथा–30
2. मूलाचार, गाथा–4

नहीं समस्त परद्रव्यों से विरक्ति हो जाती है यही निश्चय से ब्रह्मचर्य महाव्रत है। निश्चय से परद्रव्यों में जो रति/राग रूप परिणाम ही कुशील या अब्रह्म है। ब्रह्म कहिये आत्मा उसमें चर्या या लीनता करना ब्रह्मचर्य है। इसके अठारह हजार भेद होते हैं।

अपरिग्रह महाव्रत : मन–वचन–काय एवं कृत–कारित–अनुमोदना से समस्त परद्रव्यों में ममत्व के त्याग पूर्वक सभी पर द्रव्यों से पूर्ण विरक्त होकर उन्हें त्याग देना परिग्रह त्याग–महाव्रत है। मुनिराज समस्त घर–परिवार, धन–दौलत महल–मकान, जमीन जायदाद, स्त्री–पुत्रादि एवं वस्त्रादि समस्त चेतन तथा अचेतन परिग्रहों का त्याग करके मात्र पीछी कमंडलु जो संयम एवं शौच के उपकरण ही जिनके पास हैं। जन्मजात बालक की भाँति तथा अंतरंग राग–द्वेषादि विकारों से रहित अपरिग्रही मुनिराज होते हैं।

समिति : स्वरूप एवं विश्लेषण

सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति का नाम समिति है। रत्नत्रय मार्ग पर चलने वाले धार्मिक जन आत्मा के प्रति सम्यग् इति (गति) अर्थात् परिणति करते हैं वे निज परम तत्त्व में लीन सहस परम ज्ञानादिक परम् धर्मों की संयति करते हैं। वे रागादि भावों से दूर चिन्तन को विशेष महत्त्व देते हैं उनकी गमन आदि क्रिया भी विचार पूर्वक होती है। इसलिए यह कहा जाता है कि जहाँ सर्व प्रवृत्ति सम्यक् होती है वहाँ समिति होती है।[1] चारित्र पाहुण में समितियों के पाँच भेद किए गए हैं। ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण और प्रतिष्ठापन ये पांच समितियाँ कही गई हैं। यथा–

ईर्या समिति : प्रासुक मार्ग से दिन में चार हाथ प्रमाण देखकर अपने कार्य के लिए प्राणियों को पीड़ा नहीं देते हुए संयमी का जो गमन है वह ईर्या–समिति है।[2]

भाषा समिति : झूठा दोष लगाने रूप पैशुन्य, व्यर्थ हँसना, कठोर वचन, परनिंदा, अपनी प्रशंसा और विकथा इत्यादि वचनों को छोड़कर स्व–पर हितकारक वचन बोलना भाषा समिति है।[3]

---

1. आचार्य अंकलक, राजवार्तिक 9/5/5/2/593/34
2. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग–4, पृ. 339 3. वही, पृष्ठ 340

एषणा समिति : उद्गमादि 46 दोषों से रहित भूख आदि मेंटना व धर्म साधन आदि कर युक्त कृत–कारित आदि नौ विकल्पों कर विशुद्ध ठंडा–गरम आदि भोजन में राग–द्वेष रहित समभाव कर भोजन करना, ऐसे आचरण करने वाले के एषणासमिति है।[1]

आदान–निक्षेपण समिति : ज्ञान के उपकरण, संयम के उपकरण तथा शौच के उपकरण आदि के निमित्त उपकरण, इनका यत्नपूर्वक उठाना, रखना व आदान निक्षेपण समिति है।[2]

प्रतिष्ठापन समिति : एकान्तस्थान, अचित्तस्थान, दूर छिपा हुआ, बिल तथा छेदरहित चौड़ा और जिसकी निन्दा व विरोध न करे ऐसे स्थान में मूत्र, विष्ठा आदि देह के मल का क्षेपण करना प्रतिष्ठापना समिति है।[3]

दशलक्षण धर्म : स्वरूप एवं विश्लेषण

श्रमणों के धर्म में पूर्ण परिपालन होता है इसलिए प्रत्येक आगम सिद्धान्त सूत्र ग्रंथ आदि में धर्म अर्थात् दस धर्म के प्रत्येक शब्द के साथ उत्तम शब्द का प्रयोग किया गया। डॉ. भारिल्ल के धर्म के दशलक्षण में इसी दृष्टि को विशेष महत्त्व दिया गया और प्रत्येक धर्म में अध्यात्म को सर्वोपरि रखा।

उत्तमक्षमा : क्षमा आत्मा का स्वभाव है। क्षमास्वभावी आत्मा के आश्रय से आत्मा में जो क्रोध के अभावरूप शान्ति–स्वरूप पर्याय प्रकट होती है, उसे क्षमा कहते हैं।[4]

उत्तममार्दव : मार्दवस्वभावी आत्मा के आश्रय से आत्मा में जो मान के अभावरूप शान्ति–स्वरूप पर्याय प्रकट होती है, उसे मार्दव कहते हैं।[5]

उत्तमआर्जव : आर्जवस्वभावी आत्मा के आश्रय से आत्मा में छल–कपट मायाचार के अभावरूप शान्ति–स्वरूप जो पर्याय प्रकट होती है, उसे आर्जव कहते हैं।[6]

1. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग –4, पृष्ठ 341
2. वही, पृष्ठ 341
3. वही, पृष्ठ 341
4. धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ 10
5. वही, पृष्ठ 24
6. वही, पृष्ठ 40

उत्तमशौच : सम्यग्दर्शन के साथ होने वाली वीतरागी पवित्रता ही उत्तम शौचधर्म है।[1]

उत्तमसत्य : उत्तम सत्य अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यज्ञान सहित वीतरागभाव का नाम सत्य है। अतः वीतराग परिणति उत्तम सत्य धर्म है।[2]

उत्तमसंयम : संयमन को संयम कहते हैं। संयमन अर्थात् उपयोग को परपदार्थ से समेट कर आत्मसन्मुख करना, अपने में सीमित करना, अपने में लगाना। उपयोग की स्वसन्मुखता, स्वलीनता ही निश्चय संयम है अथवा पाँच व्रतों का धारण करना, पाँच समितियों का पालन करना, क्रोधादि कषायों का निग्रह करना, मन–वचन–कायरूप तीन दण्डों का त्याग करना और पाँच इन्द्रियों के विषयों को जीतना संयम है।[3]

इस उत्तम संयम धर्म के प्राणीसंयम और इन्द्रिय संयम ये दो भेद किए हैं।[4]

उत्तमतप : समस्तरागादि पर भाववेच्छत्यागेन स्वरूपे प्रतपनं विजयनं तपः।

समस्त रागादि परभावों की इच्छा के त्याग द्वारा स्वस्वरूप में प्रतपन करना विजयन करना तप है। समस्त रागादि भावों के त्यागपूर्वक आत्मस्वरूप में लीन होना तप है।[5] इच्छा निरोध भी तप है।[6]

"सम्मत्तविरहियाणं सुट्ठु वि उग्गं तवं चरंताणं।
ण लहंति बाहिलाहं अवि वास सहस्सकोडीहिं।।[7]

जीव सम्यकत्व के बिना करोड़ों वर्षों तक उग्र तप भी करे तो भी वह बोधिलाभ प्राप्त नहीं कर सकता।

"कोटि जन्म तप तपैं ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन माँहि, त्रिगुप्ति तैं सहज तरैं ते।।[8]

---

1. धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ 53
2. वही, पृष्ठ 75
3. धवला पुस्तक 1/1/1/4/144
4. धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ 85
5. वही, पृष्ठ 96
6. धवला पुस्तक 13/5/4/26/54
7. दर्शनपाहुड, गाथा–5
8. छहढाला, चतुर्थ ढाल, छन्द 5

उत्तमत्याग : "निजशुद्धात्मपरिग्रहं कृत्वा बाह्याभ्यानरपरिग्रह निवृत्तिस्त्याग।

निज शुद्धातम के ग्रहणपूर्वक बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह से निवृत्ति त्याग है।[1]

"णि व्वेगतियं भावइ मोहं चइऊण सव्व दव्वेसु।
जो तस्स हवेच्चागो इदि भणिदं जिणवरिंदेहिं।।

जो जीव सम्पूर्ण परद्रव्यों से मोह छोड़कर संसार, देह और भोगों से उदासीनरूप परिणाम रखता है, उसके त्यागधर्म होता है।[2]

उत्तम आकिंचन्य : ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा को छोड़कर किंचित्मात्र भी परपदार्थ तथा पर के लक्ष्य से आत्मा में उत्पन्न होने वाले मोह–राग–द्वेष के भाव आत्मा के नहीं हैं–ऐसा जानना, मानना और ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा के आश्रय से उनसे विरत होना, उन्हें छोड़ना ही उत्तम अकिंचन्य धर्म है।[3]

उत्तम ब्रह्मचर्य : ब्रह्म अर्थात् निजशुद्धात्मा में चरना, रमना ही ब्रह्मचर्य है।

"या ब्रह्मणि स्वात्मनि शुद्धबुदे चर्या परद्रव्यमुच प्रवृत्तिः।
तद् ब्रह्मचर्यं व्रतसार्वभौम येपान्ति ये यान्ति परं प्रमोदम्।।

पर द्रव्यों से रहित शुद्ध–बुद्ध अपने आत्मा में जो चर्या अर्थात् लीनता होती है, उसे ही ब्रह्मचर्य कहते हैं।[4]

परीषह : स्वरूप एवं विश्लेषण

मार्ग से च्युत ना होने के लिए और कर्मों की निर्जरा के लिए जो सहन किया जाता है वह परीषह जय है। क्षुधा–तृष्णा आदि 22 परिषह आदि की वेदना को मुनि जन शान्त भाव से सहन करते हैं वे समभाव में स्थित सामायिक से युक्त परमात्म चिन्तन में समाहित विकार रहित नित्यानन्द के सुखामृत का पान करने वाले परिषहजयी होते हैं।[5]

---

1. धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ 116
2. वही, पृष्ठ 117
3. वही, पृष्ठ 135
4. वही, पृष्ठ 154
5. राजवार्तिक, 9/2

अनुप्रेक्षा : स्वरूप एवं विश्लेषण

बारह प्रकार से कहे गए तत्त्व का पुनः–पुनः चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। जो कर्मों की निर्जरा के लिए चिन्तन किया जाता है। उस चिन्तन में स्वभाव की प्रमुखता होती है।[1] जाने हुए अर्थ का मन में अभ्यास करना भी अनुप्रेक्षा है।[2] अनुप्रेक्षा को भावना भी कहते हैं वे अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व आदि के भेद से बारह हैं।

डॉ. भारिल्ल ने बारह भावना एक अनुशीलन में जिनके स्वरूप का आध्यात्मिक दृष्टि से विवेचन किया है। मुनि धर्म को पालन करने वाले साधक प्रतिक्षण इनका चिन्तन करते हैं; क्योंकि उनका एक ही लक्ष्य होता है, ज्ञायक स्वरूप आत्मा की पहचान करना। आत्मा से परमात्मा की ओर अग्रसर होना तथा अभेद रत्नत्रय की भावना से स्थिर रहना उनका लक्ष्य होता है।

वैरोग्योत्पत्तिकाल में बारह भावनाओं का चिंतन करने वाले ज्ञानी आत्मा इसप्रकार विचार करते हैं[3] –

अनित्य – अनित्यभावना में संयोगी पर्यायांश के सम्बन्ध में ही चिन्तन किया जाता है। पर्यायों की अस्थिरता, क्षणभंगुरता को वैराग्यपरक चिन्तन ही अनित्यभावना है।

अशरण – अशरणभावना में अनेक युक्तियों और उदाहरणों के माध्यम से यह स्पष्ट किया जाता है कि यथासमय स्वयं विघटित होने वाले संयोगों एवं पर्यायों की सुरक्षा सम्भव नहीं है, उनका विघटन अनिवार्य है; क्योंकि उनकी यह सहज परिणति ही है।

संसार – पर–पदार्थों के प्रति मोह–राग–द्वेष भाव संसार है।

एकत्व – जीवन–मरण, सुख–दुःख आदि प्रत्येक स्थिति को जीव अकेला ही भोगता है, किसी भी स्थिति में किसी का साथ सम्भव नहीं है। वस्तु की इसी स्थिति का चिन्तन एकत्वभावना में गहराई से किया जाता है।

अन्यत्व – आत्मा शरीरादि सर्व संयोगों से अत्यन्त भिन्न ही है।

---

1. आचार्य पूज्यपाद– सर्वार्थसिद्धि 9/2
2. राजवार्तिक 9/25
3. वीतराग–विज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 21–30

अशुचि – देह अत्यन्त निकटवर्ती संयोगी पदार्थ होने से देह सम्बन्धी विकल्पतरंगें उठा ही करती हैं।

आस्रव – शरीरादि संयोगी पदार्थों में एकत्व–ममत्व एवं इन्हीं शरीरादि के लक्ष्य से आत्मा में उत्पन्न होनेवाली राग–द्वेषरूप विकल्पतरंगें भावास्रव हैं तथा इन्हीं भावास्रवों के निमित्त से कार्माण वर्गणाओं का कर्मरूप परिणमित होना द्रव्यास्रव है।

शरीरादि संयोगों के समान ये आस्रवभाव भी अनित्य हैं, अशरण हैं, अशुचि हैं, आत्मस्वभाव से अन्य हैं, चतुर्गति में संसरण (परिभ्रमण) के हेतु हैं, दुःखरूप हैं, दुःख के हेतु हैं, जड़ हैं। इनसे भिन्न ज्ञानादि अनन्त गुणों का अखण्डपिण्ड भगवान आत्मा नित्य है, परमशरणभूत है, संसारपरिभ्रमण से रहित, परमपवित्र, आनन्द का कन्द है और अतीन्द्रियानन्द की प्राप्ति का हेतु भी है – इसप्रकार का चिन्तन ही आस्रवभावना है।

संवर – सुखस्वभावी आत्मा के आश्रय से मोह–राग–द्वेष का अभाव होकर जो अनाकुल आनन्द उत्पन्न होता है, वही संवर है; अतः संवर सुखरूप है तथा मोह–राग–द्वेष के अभावरूप सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप परिणमन ही संवर है। यह दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप परिणमन मोक्षमार्ग होने से सुख का कारण भी है।

निर्जरा – भेदविज्ञान और आत्मानुभूतिपूर्वक निश्चयरत्नत्रयरूप शुद्धि की उत्पत्ति व स्थिति भावसंवर है और आत्मध्यानरूप शुद्धोपयोग से उक्त शुद्धि की वृद्धि होते जाना–शुद्धि का निरन्तर बढते जाना भावनिर्जरा है और उसके निमित्त से पूर्वबद्ध कर्मों का समय से पूर्व ही खिरते जाना द्रव्यनिर्जरा है।

लोक – लोक का आकार, स्वरूप, स्थान स्थिति, स्वाधीनता, अकृत्रिमता, अनादि–अनन्तता आदि। साथ ही इस लोक में जीव के परिभ्रमण का कारणरूप कर्त्ताबुद्धि।

बोधिदुर्लभ – अपने को जानना, पहिचानना एवं अपने में लीन हो जाना ही बोधि है – दर्शन–ज्ञान–चारित्र है। यह दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप बोधि ही इस जगत में दुर्लभ है, महादुर्लभ है और इस

बोधि की दुर्लभता का विचार, चिन्तन, बार–बार चिन्तन ही बोधिदुर्लभ भावना है।

धर्म – रत्नत्रयरूप बोधि ही वास्तविक धर्म है; अतः इस धर्मभावना में निज भगवान आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होनेवाले सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप धर्म का ही विचार किया जाता है, चिन्तन किया जाता है, धर्म की ही बारंबार भावना भाई जाती है।

आवश्यक स्वरूप एवं विश्लेषण

श्रावक व साधु को अपने उपयोग की रक्षा के लिए नित्य ही छह क्रिया करनी आवश्यक होती है। उन्हीं को श्रावक या साधु के षट् आवश्यक कहते हैं।[1]

जो कषाय राग–द्वेष आदि के वशीभूत न हो वह अवश है, उस अवशका जो आचरण वह आवश्यक है।[2]

'आवासयन्ति रत्नत्रयमपि इति आवश्यकाः' ऐसी भी निरूक्ति कहते हैं, अर्थात् जो आत्मा में रत्नत्रय का निवास कराते हैं उनको आवासक कहते हैं।[3]

साधु के षट् आवश्यकों में सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वेदना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग ये छह आवश्यक सदा करने चाहिए।[4]

श्रावकाचार : स्वरूप एवं विश्लेषण

श्रावक के करने योग्य जितने भी कार्य होते हैं वे श्रावकाचार में आते हैं। जो एकदेश व्रत का पालन करते हैं, वे श्रावक होते हैं।

जो अनन्तानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय के अभाव में अपने में देशचारित्र स्वरूप आत्मशुद्धि प्रकट करता है, तब वह व्रती श्रावक कहलाता है।[5]

बारह व्रतों को पालन करने वाले श्रावक होते हैं वे पाँच अणुव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों का पालन करते हैं।

---

1. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग 4, पृष्ठ 271
2. वही, पृष्ठ 279 3. वही, पृष्ठ 280 4. वही, पृष्ठ 280
5. वीतराग विज्ञान पाठमाला, भाग–3, पृष्ठ 19

पाँच अणुव्रत

1. अहिंसाणुव्रत – हिंसा भाव के स्थूल रूप में त्याग को अहिंसाणुव्रत कहते हैं।

'आत्मा में रागादि दोषों का उत्पन्न होना ही हिंसा है तथा उनका उत्पन्न न होना ही अहिंसा है।'[1]

2. सत्याणुव्रत – प्रमाद के योग से असत् वचन बोलना असत्य है, इसका एकदेश त्याग होने से यह व्रत सत्याणुव्रत कहलाता है।[2]

3. अचौर्याणुव्रत – वस्तु में लेने–देने का व्यवहार अचौर्याणुव्रत चोरी का त्याग अचौर्यव्रत है।[3]

4. ब्रह्मचर्याणुव्रत – स्त्री–सेवन का त्याग ब्रह्मचर्यव्रत है।[4]

5. परिग्रहपरिमाणव्रत – अपने से भिन्न पर–पदार्थों में ममत्व–बुद्धि ही परिग्रह है। ये अन्तरंग और बहिरंग के भेद से दो प्रकार का होता है। मिथ्यात्व क्रोध, मान, माया, लोभ तथा हास्यादि नव नौ कषाय ये अंतरंग परिग्रह के भेद हैं।[5]

जमीन–मकान, सोना–चाँदी, धन–धान्य, नौकर–नौकरानी, बर्तन आदि अन्य वस्तुएं बाह्य परिग्रह हैं।

गुणव्रत[6]

1. दिगव्रत – आवागमन की सीमा निश्चित कर लेना।

2. देशव्रत – दिग्व्रत की मर्यादा में और भी सीमित कर लेना देशव्रत है।

3. अनर्थदण्डव्रत – बिना प्रयोजन प्रवृत्ति करने के त्याग को अनर्थदण्डव्रत कहते हैं।

शिक्षाव्रत[7]

1. सामायिक व्रत – समता भाव का अवलम्बन करके आत्मभाव की प्राप्ति करना सामायिक है।

---

1. वीतराग विज्ञान पाठमाला, भाग–3, पृष्ठ 19
2. वही, पृष्ठ 20
3. वही, पृष्ठ 21
3. वही, पृष्ठ 21
5. वही, पृष्ठ 19–21
6. वही, पृष्ठ 22
7. वही, पृष्ठ 22–23

2. प्रोषधोपवासव्रत – प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशी को सर्वारम्भ के त्यागपूर्वक उपवास करना प्रोषधोपवास है।

3. भोगोपभोगपरिमाणव्रत – भोग और उपभोग का परिमाण घटाना भोगोपभोगपरिमाणव्रत है।

4. अतिथिसंविभागव्रत – पात्रों को विधिपूर्वक दान देना अतिथि–संविभागव्रत है।

श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं : स्वरूप एवं विश्लेषण[1]

विवेकवान विरक्तिभावयुक्त अणुव्रती गृहस्थ को श्रावक कहते हैं। ये तीन प्रकार के हैं– पाक्षिक, व्रतधारी, नैष्ठिक। निज धर्म का पक्ष मात्र करने वाला पाक्षिक है और व्रतों को धारण करने वाला व्रतधारी श्रावक है और उत्कृष्ट श्रावक नैष्ठिक श्रावक है। इसमें वैराग्य की प्रकर्षता उत्तरोत्तर 11 श्रेणियां हैं जिन्हें 11 प्रतिमाएँ कहते हैं।[2]

1. दर्शन प्रतिमा – शुद्ध परिणतिपूर्वक कषायमंदता से अष्ट मूलगुण धारण एवं सप्त व्यसन त्यागरूप भावों का सहज होना ही दर्शन प्रतिमा है। निरतिचार सम्यग्दर्शन का होना दर्शन गुण की निर्मलता है।

2. व्रत प्रतिमा – प्रतिमा में प्राप्त वीतरागता एवं शुद्धि व बारह देशव्रत के कषायमंदतारूप भाव व्रत प्रतिमा है।

3. सामायिक प्रतिमा – अपने ज्ञायकस्वभाव के आश्रयपूर्वक ममता को त्याग कर समता धारण करे, शत्रु और मित्र दोनों को समान विचारे, आर्त–रौद्र ध्यान का अभाव करे तथा अपने परिणामों को आत्मा में संयमन करे, वह सामायिक प्रतिमाधारी श्रावक है। ज्ञायक स्वभाव की रुचि एवं लीनतापूर्वक साम्यभाव का अभ्यास करना सच्ची सामायिक है।

4. प्रोषधोपवास प्रतिमा – संसार, शरीर और भागों से आसक्ति हटाना, आहार आदि का त्याग करना, उपवास करना और उपवास

1. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 23–26
2. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग–4, पृष्ठ 46

की प्रतिज्ञा लेना, प्रोषध प्रतिमाधारी श्रावक है। कषाय, विषय, आहार तीनों का त्याग हो वह उपवास है, शेष सब लंघन है।

5. सचित्तत्याग प्रतिमा :

जो सचित्त भोजन तजै, पीवै प्रासुक नीर।
सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंच प्रतिज्ञा गीर।।

मंद कषायरूप शुभ भाव तथा सचित्त भोजन–पान का त्याग सचित्त त्याग है।[1]

6. रात्रि भोजन त्याग या दिवामैथुनत्याग प्रतिमा :

रात्रिभोजन त्यागी यह प्रतिमाधारी श्रावक नव वाड़ सहित हमेशा दिवस के समय एवं अष्टमी, चतुर्दशी आदि तिथि पर्व के दिन रात में भी ब्रह्मचर्य व्रत को पालता है।[2]

7. ब्रह्मचर्य प्रतिमा : यह प्रतिमाधारी श्रावक पूर्ण रूप से नव वाड़ सहित ब्रह्मचर्य व्रत पालता है। ऐसे श्रावक को शील शिरोमणि कहा जाता है।[3]

8. आरम्भत्याग प्रतिमा : यह श्रावक स्वरूपस्थिरतारूप धर्माचरण में विशेष सावधानी रखता है तथा असि, मसि, कृषि, वाणिज्य आदि पापारंभ करने के विकल्पों का त्याग करता है, वह आरम्भत्याग है।[4]

9. परिग्रहत्याग प्रतिमा : इस प्रतिमाधारी का जीवन वैराग्यमय, संतोषी एवं साम्यभावधारी हो जाता है।[5]

10. अनुमतित्याग प्रतिमा : राग की मंदता के कारण कुटुम्बीजनों एवं हितैषियों को किसी प्रकार के आरम्भ के सम्बन्ध में सलाह, मशविरा, अनुमति आदि नहीं देना अनुमति त्याग है।[6]

11. उद्दिष्टत्याग प्रतिमा : यह प्रतिमा श्रावक का सर्वोत्कृष्ट अंतिम दर्जा है। ये श्रावक दो प्रकार के होते हैं– क्षुल्लक तथा ऐलक। प्रतिमा की उत्कृष्ट दशा ऐलक तथा आगे मुनिदशा होती है।[7]

---

1. नाटक समयसार, चतुर्दश गुणस्थानाधिकार, छन्द 64
2. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 27
3. वही, पृष्ठ 27
4. वही, पृष्ठ 27
5. वही, पृष्ठ 28
6. वही, पृष्ठ 28
7. वही, पृष्ठ 28

सप्तव्यसन और त्याग[1]

जुआ आमिष मदिरा दारी, आखेटक चोरी परनारी।
एही सात व्यसन दुखदाई, दुरित मूल दुर्गति के भाई।।

जुआ खेलना, माँस खाना, मदिरापान करना, वेश्या गमन करना, शिकार खेलना, चोरी करना, परस्त्री–सेवन करना– ये सात व्यसन हैं।

1. जुआ – धन से खेल–खेलना, शर्त लगाना या दाव लगाना द्रव्य–जुआ है। शुभ में जीत तथा अशुभ में हार भाव जुआ है।

2. माँस खाना – जीवों का कलेवर भक्षण करना द्रव्य–मांस खाना व्यसन है। देह में हित या अहित मानना भाव–मांस व्यसन है।

3. मदिरापान – नशीली वस्तुओं का सेवन करना द्रव्य–मदिरापान है। आत्मस्वरूप से अनजान रहना, भाव मदिरापान है।

4. वेश्यागमन करना – वेश्या से रमना द्रव्य रूप वेश्यागमन है। खोटी बुद्धि में रमने का भाव वेश्यागमन है।

5. शिकार खेलना – पंचेन्द्रिय जानवरों को तथा छोटे–छोटे पक्षियों को निर्दय होकर मारना तथा आनन्दित होना द्रव्य रूप से शिकार खेलना है। तीव्र रागवश भावों द्वारा अपने चैतन्य प्राणों का घात करना, भावरूप से शिकार खेलना है।

6. परस्त्रीरमण करना – अपनी पत्नी को छोड़कर अन्य स्त्रियों के साथ रमण करना, द्रव्य परस्त्रीरमण व्यसन है। दूसरों की बुद्धि की परख में ही ज्ञान का सदुपयोग मानना भाव परस्त्रीरमण है।

7. चोरी करना – प्रमाद के बिना दी हुई किसी वस्तु को ग्रहण करना द्रव्य चोरी है।

डॉ. भारिल्ल के निबंधों में दार्शनिक चिन्तन

दर्शन का नाम चिन्तन, मनन, विशेष विचार या अभिव्यक्ति है। यहाँ पर जीव जगत तत्त्व, द्रव्य, योग, अनुयोग प्रमाण नय आदि के विषय पर चिन्तन किया गया। उन चिन्तनशील व्यक्तियों के विचार को दार्शनिक चिन्तन कहते हैं।

1. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–2, पृष्ठ 30–32

अध्यात्म के प्रखर विचारक की लेखनी ने अनेक दार्शनिक विचारों को प्रतिपादित किया है । क्योंकि उनका चिन्तन प्राचीन दार्शनिकों के चिन्तनों से जुड़ा हुआ है और उसी के आधार पर उन्होंने प्रमाण, नय, निक्षेप, तत्त्वचिन्तन, ज्ञानमीमांसा, स्यादवाद अनेकान्तवाद आदि विचारों को अति सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया है।

प्रमाण और नय

'धवला' में कहा है–

"णत्थि णएहिं विहूणं सुत्तं अत्थो व्व जिनवरमदम्हि।
तो णयवादे णिउण्णा मुणिणो सिद्धंति या होंति।।

नयवाद के बिना सूत्र और अर्थ कुछ भी नहीं कहा गया है। जो मुनि नयवाद में निपुण होते हैं, वे सच्चे सिद्धान्त के ज्ञाता होते हैं।[1]

द्रव्यस्वाभावप्रकाशक नयचक्र–

"जे णयदिट्ठिविहीणा ताण ण वत्थूसहावउवलद्धि।
वत्थुसहावविहीणा सम्मादिट्ठी कहं हुंति।।

नय दृष्टि से विहीन वस्तुस्वरूप का सही ज्ञान नहीं कर पाते हैं। आत्मानुभवन आत्मपरिज्ञान अनन्त–धर्मात्मक आत्मा का सम्यक्ज्ञान नयों के द्वारा होता है। अनेकान्त नयमूलक हैं।

'आलापपद्धति' में कहा है– **"प्रमाणेन वस्तुसंगृहीतार्थैकांशो नयः श्रुतविकल्पों वा ज्ञातुराभिप्रायो वा नयः। नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्य एकस्मिन् स्वभावे वस्तु नयति प्रापयतीति वा नयः।"**

प्रमाण के द्वारा गृहीत वस्तु के एक अंश को ग्रहण करने का नाम नय है अथवा श्रुतज्ञान का विकल्प नय है अथवा ज्ञाता का अभिप्राय नय है अथवा नाना स्वभावों से वस्तु को पृथक् करके जो एकस्वभाव में वस्तु को स्थापित करता है, वह नय है।" अनन्तधर्मात्मक होने से वस्तु बड़ी जटिल है। उसको जाना जा सकता है।[2] पर कहना कठिन है। सम्यग्ज्ञान को प्रमाण और ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहा

1. धवला पुस्तक 1, खण्ड–1, भाग–1, गाथा 68
2. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ 23

जाता है।[1] कहीं–कहीं वक्ता के अभिप्राय को भी नय कहा गया है।[2]

नय ज्ञानात्मक भी होते हैं और वचनात्मक भी। ज्ञानात्मक नय ज्ञाता के अभिप्राय को कहते हैं।[3]

''पमाणादो णयाणमुप्पत्ती, अणवगयाट्ठे गुणप्पहाण भावाहिप्पायाणुप्पत्तीदो। प्रमाण से नयों की उत्पत्ति होती है, क्योंकि वस्तु के अज्ञात होने पर गौणता और मुख्यता का अभिप्राय नहीं बनता।'' प्रमाण से गृहीत वस्तु के एकदेश में वस्तु का निश्चय युक्ति प्रमाण से ग्रहण होता है।[4]

नय और उसकी प्रामाणिकता

''नाप्रमाणं प्रमाणं वा नयो ज्ञानात्मको मतः।
स्यात्प्रमाणैकदेशस्तु सर्वथाप्यविरोधतः।।[5]

नय न तो अप्रमाण है और न प्रमाण है, किन्तु ज्ञानात्मक है, अतः प्रमाण का एकदेश है– इसमें किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

स्व और अर्थ निश्चयरूप प्रमाण है।[6]

प्रमाण : स्वरूप और विश्लेषण

सम्यगेकान्त नय है और सम्यगनेकान्त प्रमाण। प्रमाण सर्वनय–रूप होता है।[7] अस्तित्वादि जितने भी वस्तु के निज स्वाभाव है, उन सबको अथवा विरोधी धर्मों को युगपत् ग्रहण करने वाला प्रमाण है।[8]

नय : भेद और उनका विश्लेषण

''जावदिया वयणवहा तावदिया चेवं होंति नयवादा।[9]

जितने वचन–विकल्प हैं, उतने ही नयवाद हैं अर्थात् नय के

1. परमभाव प्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ 23
2. स्याद्वादमंजरी, श्लोक 28 की टीका
3. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ 24
4. वही, पृष्ठ 25–27
5. तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक : नयविवरण, श्लोक 10
6. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ 30
7. स्याद्वादमंजरी, श्लोक 28, पृष्ठ 321
8. वृहन्नयचक्र (देवसेन–कृत) गाथा 71
9. गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा 894

भेद हैं। 'सर्वार्थसिद्धि' में नय अनन्त है, ऐसा कहा है।[1] प्रवचनसार में भी अनन्त नयों की चर्चा है।[2]

"णिच्छयववहारणया मूलिमभेया णयाण सव्वाणं।
णिच्छयसाहणहेऊ पज्जयदव्वत्थियं मुणह।।[3]

सर्वनयों के मूल निश्चय और व्यवहार–ये दो नय हैं। द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक– ये दोनों निश्चय–व्यवहार के हेतु हैं।"

नय युगल

(क) निश्चय और व्यवहार।[4]

(ख) द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक

"सच्चे निरूपण को निश्चय कहते हैं और उपचरित निरूपण को व्यवहार।" व्यवहार अभूतार्थ (असत्यार्थ) है, क्योंकि वह सत्य स्वरूप का निरूपण नहीं करता है। निश्चय भूतार्थ (सत्यार्थ) है, क्योंकि वह वस्तुस्वरूप का सच्चा निरूपण करता है।[5] "एक ही द्रव्य के भाव को उस स्वरूप में ही वर्णन करना निश्चय नय है और उपचार से उस द्रव्य के भाव को अन्य द्रव्य के भावस्वरूप वर्णन करना व्यवहार है।" जैसे– मिट्टी के घड़े को मिट्टी का कहना निश्चय और घी का संयोग देखकर उपचार से उसे घी का संयोग देखकर उपचार से उसे घी का घड़ा कहना व्यवहार है।

स्याद्वाद

'स्यात्' शब्द निपात है। वाक्यों में प्रयुक्त यह शब्द अनेकान्त का द्योतक वस्तु स्वरूप का विश्लेषक है। शायद, संशय और सम्भावना में एक अनिश्चय है। अनिश्चय अज्ञान का सूचक है। स्याद्वाद में कहीं भी अज्ञान की झलक नहीं है। स्याद्वाद सापेक्ष शैली है। अनेकान्तमयी वस्तु का कथन करने की पद्धति स्याद्वाद है।[6]

---

1. सर्वार्थसिद्ध, अध्याय 1, सूत्र 33 की टीका, पृष्ठ 102
2. प्रवचनसार परिशिष्ट
3. द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र, गाथा 182
4. वीतराग–विज्ञान पाठमाला, भाग–3, पृष्ठ 30
5. वही, पृष्ठ 33
6. अनेकान्त और स्याद्वाद, पृष्ठ 6–7

सम्यगेकान्त नय है और सम्यगनेकान्त प्रमाण।[1]

अनेकान्तवाद सर्वनयात्मक है।

अनेकान्त

अनन्तगुणात्मक वस्तु अनेकान्त है, जहाँ अनेक का अर्थ दो लिया जायेगा, वहाँ अन्त का अर्थ धर्म होगा। तब यह अर्थ होगा– परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाले दो धर्मों का एक ही वस्तु में होना अनेकान्त है। वे एक समय में एक ही धर्म को कह सकते हैं। अतः अनन्त धर्मों में एक विवक्षित धर्म मुख्य होता है, जिसका कि प्रतिपादन किया जाता है, बाकी अन्य सभी धर्म गौण होते हैं।[2]

"अनेकान्तो प्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तो र्पितान्नयात्।।[3]

प्रमाण और नय हैं साधन जिसके, ऐसा अनेकान्त भी अनेकान्त स्वरूप है, क्योंकि सर्वांशग्राही प्रमाण की अपेक्षा वस्तु अनेकान्त स्वरूप एवं अंशग्राही नय की अपेक्षा वस्तु एकान्तरूप सिद्ध है–

"जं वृत्थु अणेयन्तं, एयेतं ते पि होदि सविपेक्खं।
सुयणाणेण णएहि य, णि खेक्ख दीसदे णेव।।[4]

जो वस्तु अनेकान्त रूप है, वही सापेक्ष दृष्टि से एकान्तरूप भी है। श्रुत ज्ञान की अपेक्षा अनेकान्तरूप है और नयों की अपेक्षा एकान्तरूप है। बिना अपेक्षा के वस्तु का रूप नहीं देखा जा सकता है।

तात्त्विक विचार

जीवादि सात तत्त्वों[5] को सही रूप में स्पष्ट करना।

जीव और अजीव तत्त्व सम्बन्धी विचार : जीव का स्वभाव तो जानने–देखने रूप ज्ञान–दर्शनमय है। शरीरादि की परिणति को आत्मा की परिणति मान लेता है। जीव को अजीव मानना जीव तत्त्व

---

1. राजवार्तिक अ. 1, सूत्र–6 की टीका
2. अनेकान्त और स्याद्वाद, पृष्ठ 5–7
3. स्वयंभू स्तोत्र, श्लोक 103
4. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा 261
5. वीतराग–विज्ञान पाठमाला भाग–2, पृष्ठ 15–16

सम्बन्धी भूल है और अजीव को जीव मानना अजीव तत्त्व सम्बन्धी भूल है।

आस्रव तत्त्व सम्बन्धी विचार : राग–द्वेष–मोह आदि विकारी भाव प्रकट में दुःख को देने वाले हैं, पर यह जीव इन्हीं का सेवन करता हुआ अपने को सुखी मानता है।

बन्ध तत्त्व सम्बन्धी विचार : शुभ कर्मों के फल में राग करता है और अशुभ कर्मों के फल में द्वेष करता है। शुभ और अशुभ दोनों ही कर्म वास्तव में संसार का कारण है।

संवरतत्त्व सम्बन्धी विचार : आत्मज्ञान और आत्मज्ञान सहित वैराग्य संवर है।

निर्जरातत्त्व सम्बन्धी विचार : आत्मज्ञानपूर्वक इच्छाओं का अभाव निर्जरा है।

मोक्षतत्त्व सम्बन्धी विचार : मुक्ति पूर्ण निराकुलता का नाम है।

आत्मतत्त्व : एक अनुशीलन

डॉ. भारिल्ल के सम्पूर्ण निबंधों में आत्म तत्त्व की प्रमुखता है। वे अपने प्रत्येक चिन्तन को आध्यात्मिक दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। उसमें जितने भी विचार हैं, वे सभी आत्मा के मूल आधार से जुड़े हुए हैं। तत्त्वज्ञान पाठमाला में पाँच भावों के विवेचन में आत्म दृष्टि है। डॉ. भारिल्ल ने जिसे प्रत्येक भाव के कारणों में दिया हुआ है। आत्मा के स्वसन्मुख पुरुषार्थरूप शुद्ध परिणाम से जीव के श्रद्धा तथा चारित्र सम्बन्धी भावमल दब जाने रूप उपशामक भाव होता है। धर्मी जीव को स्वसन्मुख पुरुषार्थ से श्रद्धा और चारित्र की आंशिक शुद्ध अवस्था होती है, उसको जीव के श्रद्धा और चारित्र की अपेक्षा से क्षायोपशमिक भाव कहने में आता है। कर्मों के उदयकाल में आत्मा में विभाव परिणमन का होना औदयिकभाव है। सहज स्वभाव, उत्पाद–व्यय निरपेक्ष, ध्रुव, एकरूप रहने वाला भाव पारिणामिक भाव है।[1]

वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–2 में अहिंसा के प्रतिपादन में भी इसी तरह की दृष्टि है–

1. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 38–39

आत्मपरिणामहिंसनहेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत्।
अनृतवचनादिकेवलमुदाहृतं शिष्यबोधाय।।[1]

आत्मा के शुद्ध परिणामों के घात होने से झूठ, चोरी आदि हिंसा ही है।

धर्म के दशलक्षण के प्रत्येक विचार में क्षमा आत्मा का विचार है।[2]

संयम वही है जो सम्यक्त्व का अविनाभावी हो।[3]

स्वाध्याय को परम तप कहा है।[4]

उत्तम त्याग में मोह, राग और द्वेष के त्याग को महत्त्व दिया है।[5]

ब्रह्मचर्य में आत्मलीनता पर बल दिया गया।[6]

इसके अतिरिक्त समयसार, प्रवचनसार आदि का समग्र निरूपण अध्यात्म शैली में है। आत्मा ज्ञाता द्रष्टा स्वरूप है अनंत शक्तियों का पिण्ड है।[7] चैतन्य स्व–पर प्रकाशक है। इसे ज्ञान स्वभाव कहा गया।[8]

समयसार अनुशीलन भाग–4 में आत्मा के स्वरूप पर विचार करते हुए लिखा है भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य रत्न है।[9] सर्वज्ञेयों को जानने का आत्मा का स्वभाव है वह ज्ञान है।[10]

इसी तरह तत्त्व दृष्टि पर विचार करते हुए लिखा है कि आचाराँग आदि शास्त्र ज्ञान है, जीवादि तत्त्व–दर्शन है और छः जीवनिकाय चारित्र है।[11] ऐसा व्यवहार कहता है निश्चय से मेरा आत्मा ही ज्ञान है, मेरा आत्मा ही दर्शन है, मेरा आत्मा ही चारित्र है। मेरा आत्मा ही प्रत्याख्यान है और मेरा आत्मा ही संवर और योग है।[12]

मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव

संकल्प विकल्प युक्त परिणाम तथा अनेक प्रकार के विचार

---

1. वीतराग–विज्ञान पाठमाला भाग–2, पृष्ठ 34
2. धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ 10
3. वही, पृष्ठ 83
4. वही, पृष्ठ 110
5. वही, पृष्ठ 122
6. वही, पृष्ठ 156
7. प्रवचनसार अनुशीलन, भाग–2, पृष्ठ 110
8. वही, पृष्ठ 115
9. समयसार अनुशीलन भाग–4, पृष्ठ 44
10. वही, पृष्ठ 45, श्लोक 4511. वही, पृष्ठ 45
12. वही, पृष्ठ 63

चिन्तन के रूप में जब चित्त के विषय बनते हैं तब मन के विविध पक्ष सामने आ जाते हैं। आचार्यों ने नाना प्रकार के विकल्पों के जाल को मन कहा है। वह मन दो प्रकार का है– द्रव्य मन और भाव मन। नेमीचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती ने लिखा है कि जो हृदय स्थान में आठ पखुड़ियों के कमल के आकार वाला है तथा अंगोपांग नाम कर्म के उदय से मनोवर्गणा के स्कंध से उत्पन्न हुआ है, उसे द्रव्य मन कहते हैं। वह अत्यन्त सूक्ष्म और इन्द्रियों से अगोचर है।[1] द्रव्य संग्रह में इसे नाना विकल्पों से युक्त कहा है।[2] सर्वार्थ सिद्धि में द्रव्यकर्म और भावकर्म की व्याख्या करते हुए लिखा है कि द्रव्यमन मनोवर्गणा के स्कंध से उत्पन्ने है और भाव मन वर्यान्तराय और नौ इन्द्रिय आवरण कर्म के क्षयोपक्षम की अपेक्षा रखने वाला है। भावमन ज्ञान स्वरूप है और ज्ञान जीव का गुण होने से उसका आत्मा में अन्तर भाव होता है। यह लब्धि और उपयोग वाला भी है।[3]

मन के विषय का जहाँ विश्लेषण होता है उसे मनोविश्लेषण कहते हैं, मनोयोग, मनोवर आदि भी कहते हैं। जैन दर्शन में मनोयोग और मनोवर का विशेष महत्त्व है।

डॉ. भारिल्ल के निबंधों में मनोविश्लेषण के अनेक रूप हैं। उन्होंने संकल्प–विकल्प के आधार पर लिखा है–

किसी व्यक्ति या वस्तु के वियोग में दुखी होना या फिर किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थिति के संयोग में संकल्प–विकल्प करना, दुःखी होना, शारीरिक वेदना से व्याकुल होना और भविष्य में अनुकूल संयोगों की वांछा करना ऐसे पाप हैं, ध्यान हैं, जो हमें निगोद में भी पहुँचा सकते हैं।

परिणामों की अपेक्षा ध्यान स्वरूप में आर्त्त और रौद्र दोनों ही के मनोविश्लेषण को तिर्यंच और नरकगति का कारण कहा है। ये आर्तध्यान और रौद्रध्यान भी ध्यान हैं तथा ये ध्यान तिर्यंच और नरकगति के बंध के कारण हैं। इसी मनोस्थिति को मनुष्य और नरक गति के जीव को प्रतिपादित किया है। आपका यह रोना–धोना आर्तध

1. गोमटसार जीवकाण्ड गाथा 443
2. द्रव्यसंग्रह, गाथा 12 3. राजवार्तिक 5/3/3/442

यान है, जो आपको न केवल पशुगति में ले जा सकता है, निगोद का कारण भी बन सकता है। अज्ञानियों के आर्त–रौद्रध्यान क्रमशः तिर्यंच व नरकगति के कारण हैं, ज्ञानियों के नहीं। यह तो जिनागम में स्पष्ट ही है कि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव नरक व तिर्यंच गति में नहीं जाते।[1]

इसी ध्यान स्वरूप में धर्म ध्यान के विषय को समझाते हुए उनके चार मनोविकल्पों को निम्नप्रकार से व्यक्त किया है–[2]

1. आज्ञाविचय – आगम की आज्ञा के अनुसार श्रद्धापूर्वक गहन विचार करना आज्ञाविचय नामक धर्म ध्यान है।

2. अपायविचय – मिथ्यादर्शन ज्ञान–चारित्र संसार के कारण होने से मुक्तिमार्ग के विरोधी हैं, अज्ञानी जीव इस अपाय से कैसे बचें– इसी बात का प्रबल चिन्तन अपायविचय नामक धर्मध्यान है।

3. विपाकविचय – कर्मों के विपाक के संदर्भ में विचार करना विपाक विचय नामक धर्म ध्यान है। कौन से कर्म का विपाक या उदय कब होता है, उसका क्या फल है आदि कर्मविषयक गहरा चिन्तन इस विपाकविचय नामक धर्मध्यान में आता है।

4. संस्थानविचय – ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक की रचना आदि जैनधर्म संबंधी भूगोल का विचार संस्थानविचय नामक धर्मध्यान है। निश्चय धर्मध्यान तो देशनालब्धि पूर्वक जाने हुए निज भगवान आत्मा का अवलोकन करना, जानना और उसी में उपयोग को एकाग्र करना है।

सम्यक्दर्शन की प्राप्ति में शुक्ल ध्यान की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है इसी महत्त्व को समझाने के लिए द्रव्य संग्रह की वस्तु स्थिति को ध्यान में रखकर कथन किया है–

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह किं वि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं।।[3]

हे भव्यजीवो! कुछ भी चेष्टा मत करो, कुछ भी मत बोलो, कुछ भी चिन्तवन मत करो, जिससे आत्मा निजात्मा में तल्लीनरूप से स्थिर हो जावे, क्योंकि यही परमध्यान है।

---

1. ध्यान का स्वरूप, पृष्ठ 9 से 11
2. वही, पृष्ठ 295
3. वृहद्द्रव्यसंग्रह, गाथा 56

मन में ऐसा सोचो, वाणी से ऐसा उच्चारण करो और काया से भी कुछ न कुछ करने को ही कहा जाता है।[1]

इसी तरह वीतराग धर्म के विश्लेषण में कहा है हमारा धर्म वीतरागी धर्म है, आत्मज्ञान और आत्मध्यान का धर्म है। आत्मध्यान के लिए एकान्त स्थान ही सर्वाधिक उपयोगी होता है। जैसा एकान्त इन पर्वत की चोटियों पर उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र कहीं भी नहीं। देह को सुखाने को कर्म नहीं कहते, कर्मों का नाश तो आत्माराधना से होता है, आत्म साधना से होता है। आत्माराधना और आत्मसाधना आत्मज्ञान और आत्मध्यान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।[2]

महावीर की दृष्टि में अहिंसा के मनोविश्लेषण में यह सत्य प्रतिपादित किया है कि जिस अहिंसा को महावीर ने अपने समय में अपनाया था वह अहिंसा आधुनिक युग में भी विश्व को बन्धुत्व की भावना दर्शाने वाला है।

कोई व्यक्ति ड्रेस से महान नहीं होता है, अपितु अपने विचारों से महान होता है। भगवान महावीर ने अहिंसा का जो उपदेश आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व दिया, उसकी जितनी आवश्यकता आज है, उतनी महावीर के जमाने में भी नहीं थी, क्योंकि आज हिंसा ने भयंकर रूप धारण कर लिया है।[3]

एक अन्य प्रसंग में राष्ट्रीयकरण को आधार बनाकर कहा है–

विनाश की इस प्रलयंकारी बाढ़ को रोकने में यदि कोई समर्थ है तो वह एकमात्र भगवान महावीर की अहिंसा ही है, अतः मैं कहता हूँ कि भगवान महावीर की अहिंसा की जितनी आवश्यकता आज है, उतनी भगवान महावीर के जमाने में भी नहीं थी, इसलिए कहा जा सकता है कि भगवान महावीर आज भी अप टू डेट हैं।[4]

महाभारत के कारणों को आधार बनाकर कहा है कि महाभारत की लड़ाई जमीन के प्रति राग के कारण हुई थी। जिसे मनो अभिव्यक्ति के नाम से कहा है–

---

1. ध्यान का स्वरूप, पृष्ठ 22
2. वही, पृष्ठ 28
3. अहिंसा महावीर की दृष्टि में, पृष्ठ 6
4. वही, पृष्ठ 9

युद्धों में होने वाली सर्वाधिक द्रव्यहिंसा के मूल में राग ही कार्य करता है। यही कारण है कि भगवान महावीर ने रागादि भावों की उत्पत्ति को हिंसा कहा है और रागादिभावों की उत्पत्ति नहीं होने को अहिंसा घोषित किया है।[1]

आप कुछ भी कहो दस कथाओं में भी अलग–अलग मन की अवस्था को आधार बनाकर प्रत्येक कथानक में जो कथन है वह मन की पर्तों को हिला देने वाला है।

माँ, तेरे भरत का राग चाहे उसके वश की बात न हो, पर उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान–विवेक धोखा नहीं खा सकता। भले ही भरत इस चक्रवर्तित्व को छोड़ न सके, पर इसमें रहकर गर्व अनुभव नहीं कर सकता, इसमें रम नहीं सकता।[2]

परिवर्तन नामक कहानी में परम्परा की विषय स्थिति को प्रतिपादित किया है–

पशु की अपेक्षा यदि इस मनुष्य को कुछ सुविधाएँ प्राप्त हैं, तो असुविधाएँ भी कम नहीं। यदि पशु को पैतृक सम्पत्ति प्राप्त करने की सुविधा नहीं है तो साथ ही वह परम्पराओं की गुलामी से भी मुक्त है, पर इस सभ्य कहलाने वाले मानव जगत को यदि उत्तराधिकार में सम्पत्ति मिलती है तो साथ में परम्परागत रुढ़ियों की गुलामी भी विरासत में प्राप्त होती है।[3]

गाँठ खोल देखी नहीं में सुख–दुःख को सहन करने वाली नारियों की शक्ति को पुरुषों की अपेक्षा अधिक बलशाली कहा है–

बिना डींग हाँके दुर्भाग्य से लड़ने की जितनी क्षमता नारियों में सहज देखी जा सकती है, पुरुषों में उसके दर्शन असम्भव नहीं, तो दुर्लभ तो हैं ही।[4]

आत्मा ही है शरण यह शीर्षक अपने आप में पूर्ण मनोस्थिति को व्यक्त करने वाला है। इसमें आठ निबंध हैं। आठों में ही तनावग्रस्त व्यक्ति के जीवन को तनावमुक्त होने की जीवन रक्षक दवाओं में

1. अहिंसा महावीर की दृष्टि, पृष्ठ 3
2. आप कुछ भी कहो, पृष्ठ 5 3. वही, पृष्ठ 36 4. वही, पृष्ठ 56

आत्म विज्ञान की दवा को अधिक उपयोगी कहा है। उन्होंने लिखा है– आज धर्म के बिना विज्ञान का यही हाल हो रहा है। धर्म विज्ञान का विरोधी नहीं, किन्तु मार्गदर्शक है। धर्म के मार्गदर्शन में चलने वाले विज्ञान का विकास विनाश नहीं, निर्माण करेगा। घोड़ा और घुड़सवार एक–दूसरे के प्रतिद्वन्दी नहीं, पूरक हैं, घुड़दौड़ में दौड़ेगा तो घोड़ा ही जीतेगा , पर घुड़सवार के मार्गदर्शन बिना घोड़े का जीतना संभव नहीं।[1]

आत्मा ही परमात्मा है, में व्यक्ति के ध्येय को विशेष महत्त्व दिया गया है।

आत्मध्यान करने के पूर्व उस आत्मा का स्वरूप समझना अत्यन्त आवश्यक है, जिसका ध्यान करना है, जो ध्येय है। रंग, राग और भेद से भिन्न ज्ञानानन्द स्वभावी निज भगवान आत्मा ही एकमात्र ध्येय है, ध्यान करने योग्य है।[2]

जीवन मरण और सुख–दुःख में व्यक्ति को ही दोषी माना है। इसी भाव को दर्शाता हुआ विश्लेषण ज्ञानी और अज्ञानी की स्थिति को व्यक्त करता है।

जो यह मानते हैं कि मैं दूसरों को मारता हूँ या उनकी रक्षा करता हूँ अथवा दूसरे मुझे मारते हैं या वे मेरी रक्षा करते हैं, वे मूढ़ हैं, अज्ञानी हैं, और ज्ञानी इससे विपरीत है, क्योंकि ज्ञानी ऐसा नहीं मानता वह तो यह स्वीकार करता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने–अपने सुख–दुःख और जीवन–मरण का पूर्ण उत्तरदायी स्वयं ही है, कोई किसी के जीवन–मरण और सुख–दुःख का हर्त्ता–धर्त्ता नहीं है।[3]

समयसार अनुशीलन एवं अनेक अनुशीलनात्मक ग्रंथों के विचारों में आध्यात्मिक पुरुष को अध्यात्म की ओर ले जाने के लिए अनेकानेक दृष्टान्त, उदाहरण, प्रसंग, विचार एवं आचार्यों, संतों, साधकों, लेखकों आदि की दृष्टि को आधार बनाकर जो विश्लेषण किया है वह मन को प्रभावित करने वाला है।

---

1. आत्मा ही है शरण, पृष्ठ 26
2. वही, पृष्ठ 67–68
3. वही, पृष्ठ 110

निष्कर्ष

डॉ. भारिल्ल के निबन्ध साहित्य की प्रस्तुति इस अध्याय का मूल अभिप्रेत रहा है। निबन्ध के स्वरूप–स्वभाव का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत कर उनके निबन्धों पर समालोचनात्मक दृष्टि से विचार करना इसकी विशेषता रही है। निबन्धों में उनका आत्मचिन्तन सर्वत्र द्रष्टव्य है। गंभीर से गंभीर विषय को भी संप्रेषणीय बनाने में इनका अद्‌भुत कौशल देखते ही बनता है। चीजों को तर्क–संगत बनाना उनकी प्रकृति है। कहीं–कहीं उदाहरणों भी अपनी बात को स्पष्ट करते उन्हें देखा जा सकता है। अहिंसा–हिंसा को तार्किकता के साथ प्रस्तुत करते वह कहते हैं– "आत्मा में रागादिभावों की उत्पत्ति होना ही हिंसा है।" जैसे सूत्र वाक्य उनकी पहचान बन जाते हैं। उन्होंने अपने निबन्धों को यथावश्यकता मनोवैज्ञानिक आधार भी प्रदान किया है। अपने प्रतिपाद्य को प्रासंगिक दृष्टांतों के साथ बोधगम्य बनाना उनकी अपनी एक ऐसी विशेषता है जिससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जा सकता।

सूरज–सा व्यक्तित्व तुम्हारा, जिनवाणी की गंगा डूबे।
भीतर ही उपयोग सम्भाला, जंग भावों से सहसा डूबे।।
वर्तमान के 'टोडरमल' तुम, जिनवाणी के लाल अनोखे।
जग का हो कल्याण सदा ही, ऐसे मन्त्र अनोखे फूँके।।
सौ–सौ कलमें कर न सकीं जो, ऐसी शाश्वत कलम चलाई।
अन्तर–मन्थन करके अपना, आगम पथ की राह दिलाई।।
ऐसी श्रद्धा अन्तर बैठी, जिनवाणी प्राणों से प्यारी।
उपादान निश्चय निमित्त की, तुमने पावन ज्योति जलाई।।
सीधी और सरल–सी काया, माया का व्यामोह नहीं है।
धर्म–तत्त्व में समझौता नहीं, किंचित मन में द्रोह नहीं है।।
घर–घर में सन्देश फूँकने तुमने आगम अलख जगाई।
समता क्षमता के आराधक, शान्तिदूत विद्रोह नहीं है।
संज्ञा पाकर हुकमचन्द की, महावीर को तुमने गाया।
बन नींव के 'करमठ' टोडरमल स्मारक स्वर्ग बनाया।।
जब तक सूरज चाँद धरा पर, भारिल्लजी का नाम रहेगा।
पर सेवा उपकारी जीवन, मोक्षमार्ग का लक्ष्य सधेगा।।
हर बोल तुम्हारा सागर है, रोम–रोम बन रहा दिवाकर।
मुट्ठी भर माटी काया में है, बँधा ज्ञान का रत्नाकर।।
क्षमता–समता के कूलों से, बहती वीतराग की धारा।
जन–जन के सन्देश सुनाते, महावीर यश तुम गा गाकर।।

– पण्डित गोकुलचन्द 'सरोज'

पंचम अध्याय

डॉ. भारिल्ल का पद्य साहित्य : समरसता का सौन्दर्य : भाव पक्ष

शब्द और अर्थ के द्वारा आत्मा की जो अभिव्यक्ति होती है, वह काव्य में आनन्द की अनुभूति कराती है। जिस काव्य में आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, वह काव्य उचित काव्य कहा जाता है एवं जिस काव्य में विश्लेषण विकल्प या विज्ञान से नहीं है वह काव्य भी जीवन एवं प्रकृति के अन्तर्दर्शन कराने वाला होता है। काव्य की अनुभूति कोई भावुकता जन्य स्फूर्ति स्फूरित नहीं है और ना कोई आध्यात्मिक कल्पना है। अपितु अखण्ड मानव–जीवन के व्यक्तित्व की अनुभूति है।[1]

इस दृष्टि से डॉ. भारिल्ल के काव्य पर जब हम विचार करते हैं तो उनके द्वारा प्रतिपादित विषय अनुभूति में शुद्धात्म स्वरूप की स्पष्ट झलक मिलती है। उन्होंने शान्त के निर्वेद भाव को प्राचीन जैन संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के कवियों के कवित्व से जो अनुभूति प्राप्त की है उसे उन्होंने शब्दार्थ के मूल में प्रवेश करके अनेक पद्य लिखे हैं। वे आनन्द को प्रदान करने वाले हैं तथा सद्गुणों के साधक सत् आनन्द को उत्पन्न करने वाले हैं। महावीर वन्दना में महावीर के विविध गुणों पर विचार करते हुए जो जनकल्याण की दृष्टि दी है वह सर्वोदय है–

"आतम बने परमातमा, हो शान्ति सारे देश में।
है देशना सर्वोदयी, महावीर के सन्देश में।।"[2]

---

1. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास, पृष्ठ 303
2. महावीर वन्दना, पृष्ठ 1

काव्य : स्वरूप और विश्लेषण

कवि का कर्म ही काव्य है। कवि अतीत, अनागत, व्यवहृत, विप्रकृष्ट, सूक्ष्म और अतीन्द्रिय वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान रखने वाला होता है।[1] काव्य गुण सहित, दोष रहित इष्ट अर्थ का बोध कराने वाला होता है। इसमें शब्द और अर्थ की प्रमुखता होती है।[2] काव्य का रस वैसा होता है जिसप्रकार अत्यन्त सुन्दर नायिका का मुख बिना अलंकारों के शोभित नहीं होता, उसीप्रकार काव्य भी रस अलंकार आदि के अभाव में शोभाहीन हो जाते हैं, इसलिए काव्यों में गुण शोभा के कारण है और अलंकार शोभा के वर्धक माने गये हैं।[3]

काव्य का प्रयोजन

काव्य जीवन प्रकृति का अन्तदर्शन है, उसकी अनुभूति है। यह अनुभूति कोई भावुकताजन्य स्फूर्ति नहीं है और न कोई आध्यात्मिक कल्पना है, अपितु अखण्ड मानव जीवन के व्यक्तित्व की अनुभूति है।[4] काव्य शास्त्रियों ने काव्य प्रयोजनों की विस्तार से चर्चा की है। आचार्य **मम्मट** ने काव्य प्रयोजन पर जो विचार व्यक्त किये हैं, वे सभी दृष्टियों का निर्देश करते हैं–

"काव्य यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।[5]

काव्य के प्रकार

प्रबन्ध की दृष्टि से काव्य के अनेक प्रकार हैं। उनमें गद्य और पद्य दोनों ही प्रकार के काव्य होते हैं। कवि का कर्म विषय विस्तार के लिए जिस विधा को अपनाता है वह विधा उसके काव्य का वर्गीकरण कहलाने लगती है।

जैसे काव्य के दो भेद हैं 1. प्रबंध 2. मुक्तक ।

काव्य में छन्दों की बंध रचना की प्रमुखता होती है इसीलिए उसे

1. शब्दतोम महाविधि : पृष्ठ 113
2. (क) अग्निपुराण 337/6 (ख) काव्यालंकार 1/6
3. काव्यालंकार 3/1/2
4. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ 330
5. काव्य प्रकाश, पृष्ठ 112

प्रबन्ध कहा जाता है वर्ण संख्या, गति, लय आदि के आधार पर जो प्रस्तुतीकरण किया जाता है वह पद्य कहा जाता है। पद्य को छन्द कहते हैं जिसमें प्रबन्ध के नियम के अनुसार प्रस्तुतिकरण होता है। छन्द में वर्णों की प्रमुखता से वर्णिक, मात्राओं की अपेक्षा से मात्रिक और लय की प्रमुखता से लयात्मक कहलाते हैं। वर्णों में संख्या की प्रधानता होती है। मात्रा में मात्राओं की समानता और लय में तुकबन्दी की विशेषताएँ होती हैं। कुछ छन्द उभय दृष्टिकोण को लिए हुए हैं कुछ मुक्त छन्द भी होते हैं सम, अर्द्धसम और विषम भी कहे गए हैं।[1]

रस

"रस्यते आस्वाद्यते इति रसः।"[2]

अर्थात् जिससे रस आता हो, रस का आस्वादन किया जाता है उसे रस कहते हैं। रस आनन्द की अनुभूति का नाम है इसलिए काव्यकारों ने शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर माना है और रस को आत्मा। विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों से अभिव्यक्त स्थायी भाव रस है।[3]

अध्यात्म प्रधान काव्यों का अंगीरस शान्त रस होता है क्योंकि धर्म, अर्थ और काम ये तीन पुरुषार्थ संसर्ग विषय को बढ़ाने वाले हैं और चतुर्थ मोक्ष पुरुषार्थ भोगों के प्रति विरक्त जनों को साधना की उच्च पराकाष्ठा पर ले जाते हैं।[4]

(1) शृंगार रस : शृंगार का स्थायी भाव रति है। इसमें नायिका की वेशभूषा, चेष्टा के अतिरिक्त ऋतु, चंद्रिका, चित्र मादक–वाद्य आदि आते हैं। शृंगार के दो पक्ष हैं– (1) संयोग पक्ष और (2) वियोग पक्ष।[5]

नरपती सुरपति असुरपति इन्द्रियविषय दवदाह से
पीड़ित रहें सह सके ना रमणीक विषयों में रमें।।[6]

(2) करुण रस : इसका स्थायी भाव करुणा, संवेदना, शोक

1. छन्द, रस, अलंकार दर्शन
2. ध्वन्यालोक पृष्ठ 75
3. काव्य प्रकाश 4/28
4. समयसार नाटक, पृष्ठ 97
5. आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ 197
6. प्रवचनसार पद्यानुवाद, पृष्ठ 14

है। इसके आलम्बन बन्धु विनाश, पराभव आदि हैं।[1]

शुभ भाव से उत्पन्न विध–विध पुण्य यदि विद्यमान हैं।
तो वे सभी सुरलोक में विषैषणा पैदा करें।।[2]

(3) हास्य रस : इसका स्थायीभाव हास्य है। जीवन में कभी–कभी प्राप्त होने वाली असंगति या विषमता से मानव की चेष्टा, बोली तथा व्यवहार आदि से हास्य की अनुभूति होती है।[3]

"धू धू जलती दुख की ज्वाला, प्रभु त्रस्त निखिल जगतीतल है।
बेचेत पड़े सब देही है, चलता फिर राग प्रभंजन है।।
यह धूम घूमरी खा–खाकर, उड़ रहा गगन की गलियों में।।
अज्ञान तमावृत चेतन ज्यों चौरासी की रंग–रलियों में।
संदेश धूप का तात्विक प्रभु, तुम हुए ऊर्ध्वगामी जग से।
प्रगटे दशांग प्रभुवर! तुम को, अन्तःदशांग की सौरभ से।।[4]

(4) रौद्र रस : इस रस का मेरूदण्ड क्रोध है। आलम्बन दुष्ट या प्रतिपक्षी व्यक्ति है। क्रूर दृश्य, कुटिल भूभंगिमा आदि अनुभाव हैं।[5]

जिनलिंग धरकर बाहुमुनि निज अंतरंग कषाय से।
दण्डकनगर को भस्मकर कौरव नरक में जा पड़े।।[6]

(5) वीर रस : उत्साह इस रस का स्थायी भाव है। साहसिक कार्य, ऐश्वर्य, यश आदि इसके आलम्बन हैं।[7]

(6) भयानक रस : इस रस का स्थायी भाव भय है। भयदायक वस्तुएं इसमें आलम्बन होती हैं।[8]

भीषण नरक तिर्यंच नर अर देवगति में भ्रमण कर।
पाये अनन्ते दुःख अब भावो जिनेश्वर भावना।।[9]

---

1. आचार्य विद्यासागर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 198
2. प्रवचनसार (पद्यानुवाद) पृष्ठ 17
3. साहित्य दर्पण : तृतीय परिच्छेद, श्लोक 214
4. अर्चना, पृष्ठ 21
5. आचार्य विद्यासागर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 200
6. अष्टपाहुड : पद्यानुवाद, पृष्ठ 49
7. आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 202
8. वही, पृष्ठ 203
9. अष्टपाहुड : पद्यानुवाद, पृष्ठ 45, श्लोक 8

7. वीभत्स रस : इस रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है। हृदयाकुंचन को जुगुप्सा कहा गया है।[1]

व्याधी बुढ़ापा श्वेदमल आहार अर नीहार से।
थूक से दुर्गन्ध से मल–मूत्र से वे रहित हैं।।[2]
कृमिकलित मज्जा–मांस–मज्जित मलिन महिला उदर में।
नवमास तक कई बार आतम तू रहा है आज तक।।[3]

8. अद्भुत रस : अभूतपूर्व या असाधारण वस्तु को देखने से अद्भुत रस उत्पन्न होता है। इसका स्थायी भाव विस्मय है।[4]

भीषण नरक तिर्यंच नर अर देवगति में भ्रमण कर।
पाये अनन्ते दुःख अब भावो जिनेश्वर भावना।।[5]

9. वात्सल्य रस : इस रस का स्थायी भाव पुत्र विषयक रति है। इसके आलम्बन पुत्र और पुत्री दोनों होते हैं। बाल चेष्टाएं एवं चपलताएं इसके उद्दीपन हैं।[6]

10. शान्त रस : शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद है, यह तत्त्वज्ञान और वैराग्य से उत्पन्न होता है। संसार की असारता या परमात्मा का चिन्तन आलम्बन है।[7]

सुख शान्तरस से लबालब यह ज्ञानसागर आतमा।
विभरम की चादर हटा सर्वांग परगट आतमा।।[8]

गुण विवेचन

"गुणयति उत्कृष्टो भवति अनेन इति गुणः।"[9]

आचार्य मम्मट ने साहित्य दर्पण में 'माधुर्य, ओज और प्रसाद इन तीन गुणों में ही दस गुणों का समावेश करके इनकी विशेषताओं का

1. आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 203
2. अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद श्लोक–37, पृष्ठ 38
3. वही, पृष्ठ 51, श्लोक 39
4. आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 204
5. अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद, पृष्ठ 45
6. आचार्य विद्यासागर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 205
7. वही, पृष्ठ 206
8. समयसार कलश पद्यानुवाद, पृष्ठ 21
9. रसगगाधर भूमिका, पृष्ठ 43

उल्लेख किया है।[1]

(1) माधुर्य गुण : माधुर्य गुण आल्हादक होता है तथा क्रमश: करुण, विप्रलंभ एवं शान्त रस में इसकी अत्यन्त वृद्धि हो जाती है।[2]

(2) ओज गुण : चित्त का विस्तार रूप दीप्तत्व ओज माना जाता है। यह वीर, वीभत्स और रौद्र रस में बढ़ता है। इसमें लम्बे–लम्बे समास वाले वाक्य भी प्रयुक्त होते हैं।[3]

शून्यघर तरुमूल वन उद्यान और मसान में
वसतिका में रहे या गिरिशिखर पर गिरि–गुफा में।।[4]

(3) प्रसाद गुण : प्रसाद एक ऐसा गुण है जो सहृदयों की चित्त वृत्ति में व्याप्त हो जाता है। प्रसाद का अर्थ प्रसन्नता है।[5]

डोरा सहित सुई नहीं खोती गिरे चाहे वन–भवन।
संसार–सागर पार हो जिनसूत्र के ज्ञायक श्रमण।।[6]

रीति निरूपण

रीति का शाब्दिक अर्थ शैली या कहने का ढंग है। रीति के प्रसिद्ध आचार्य वामन ने रीति को काव्य की आत्मा माना है और उन्होंने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है– "विशिष्ट पद रचना का नाम रीति है।[7] **विशेषवती पदानां रचना रीतिः**" विशेष पदों की रचना का नाम रीति है।

(1) वैदर्भी रीति : वैदर्भी रीति समग्र गुणों से युक्त होती है। वामन ने इसे सर्वोत्कृष्ट रीति माना है।[8] वैदर्भी रीति में समास का अभाव हो तो वह सबसे अच्छी मानी जाती है।

---

1. रामचरितमानस का काव्य शास्त्रीय अनुशीलन, पृष्ठ 365
2. आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 210
3. साहित्य दर्पण 8/4, 8/5
4. अष्टपाहुड़ (पद्यानुवाद) पृष्ठ 39
5. आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 212
6. अष्टपाहुड (पद्यानुवाद), पृष्ठ 15
7. काव्यालंकार, 1/217
8. अलंकार सूत्र 1/2/11

जिन अजित जीता क्रोध रिपु निज आतमा को जानकर।
निज आतमा पहिचान कर निज आतमा का ध्यान धर।।
उत्तम क्षमा की प्राप्ति की बस एक ही है साधना।
आनन्दमय ध्रुवधाम निज भगवान की आराधना।।[1]

(2) गौणी रीति : गौणी रीति समास और अनुप्रास बहुल होने से बुद्धि पक्ष को अधिक प्रभावित करती है इसमें ओज प्रकाशक वर्णों के द्वारा प्रबन्ध को बाँधा जाता है।[2]

जगमग–जगमग जली ज्ञान–ज्योति जब,
अति गंभीर चित् शक्तियों के भार से।।
अद्भुत अनुपम अचल अभेद ज्योति,
व्यक्त धीर–वीर निर्मल आर–पार से।।[3]

अलंकार

"अलङ्.करोति भूषयति या काव्यं सोऽलङ्.कारः।" जिसके द्वारा अलंकृत किया जाता है, सुशोभित किया जाता है या जो काव्य की शोभा को बढ़ाता है, वह अलंकार है।[4] शोभावर्धक धर्म के कारण अलंकारों को दो भागों में विभक्त किया गया – शब्दालंकार और अर्थालंकार।

शब्दों द्वारा जिस कविता का सौन्दर्य बढ़े उसे शब्दालंकार कहते हैं अनुप्रास, यमक, श्लेष, वीप्सा, वक्रोक्ति एवं चित्रालंकार का संयोजन इसके अंतर्गत किया जाता है।[5]

अर्थालंकार में शब्दों की अपेक्षा अर्थ को महत्त्व दिया जाता है। अर्थाश्रित अलंकारों की परिसीमा में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, संदेह, स्मरण, विभावना, परिसंख्या आदि अलंकारों की परिगणना की जाती है।[6]

---

1. जिनेन्द्र वन्दना एवं बारह भावना, पृष्ठ 2
2. साहित्य दर्पण, 9/3
3. समयसार कलश पद्यानुवाद, पृष्ठ 51
4. आचार्य विद्यासागर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 217
5. वही, पृष्ठ 217
6. वही, पृष्ठ 218

(1) अनुप्रास अलंकार : जहाँ शब्दों की पुनरावृत्ति होती है वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है।

सुर असुर इन्द्र नरेन्द्र वंदित कर्ममल निर्मल करन।
वृषतीर्थ के करतार श्रीवर्द्धमान जिन शत–शत नमन।।[1]
चारित्र ही बस धर्म है वह धर्म समताभाव है।
दृगमोह क्षोभविहीन निज परिणाम समताभाव है।।[2]

(2) यमक अलंकार : भिन्न अर्थ वाले पाद, पद और वर्ण की संयुक्त या असंयुक्त रूप से आवृत्ति को यमक कहते हैं।[3]

एक कहे ना रक्त दूसरा कहे रक्त है,
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।
पक्षपात से रहित तत्वेदी जो जन है,
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।[4]

(3) श्लेष अलंकार : जहाँ उसी पद से या भिन्न पद से एक ही शब्द अनेक अर्थों को व्यक्त करता है। वहाँ श्लेष अलंकार होता है।[5]

असुरेन्द्र और सुरेन्द्र को जो इष्ट सर्व वरिष्ठ हैं।[6]
उन सिद्ध के श्रद्धालुओं के सर्व कष्ट विनष्ट हों।।

वरिष्ठ के दो अर्थ हैं यहाँ प्रथम और उत्तम दोनों रूप में हैं। वरिष्ठ का अर्थ प्रमुख, प्रधान, बड़ा प्रथम होता है।

(4) वक्रोक्ति अलंकार : जहाँ किसी उक्ति से वक्ता के अभिप्रेत आशय से भिन्न अर्थ की कल्पना की जाये वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है।[7]

नियत है जो स्वयं के एकत्व में नय शुद्ध से।
वह ज्ञान का धनपिण्ड पूरण पृथक् है परद्रव्य से।।
नवतत्त्व की संतति तज बस एक यह अपनाइये।

---

1. प्रवचनसार (पद्यानुवाद) पृष्ठ 1
2. वही, पृष्ठ 3
3. वाग्भटालङ्कार 4/22
4. समयसार कलाश (पद्यानुवाद), पृष्ठ 39,
5. वाग्भटालङ्कार 4/127
6. प्रवचनसार (पद्यानुवाद), पृष्ठ 5
7. वाग्भटालङ्कार 4/14

इस आतमा का दर्श दर्शन आतमा ही चाहिए।।[1]

(5) उपमा अलंकार : जहाँ अप्रस्तुत (उपमान) के साथ प्रस्तुत (उपमेय) में सादृश्य दिखलाया जाता है, वहाँ उपमा अलंकार होता है।[2]

जैसे भी हो स्वतः अन्य के उपदेशों से।
भेदज्ञानमूलक अविचल अनुभूति हुई हो।।
ज्ञेयों के अगणित प्रतिबिम्बों से वे ज्ञानी।
अरे निरन्तर दर्पणवत् रहते अविकारी।।[3]

(6) रूपक अलंकार : जहाँ उपमेय पर उपमान का आरोप किया जाता है वहाँ रूपक अलंकार होता है। अर्थालंकारों की श्रेणी में सबसे अधिक उपयोग इस अलंकार का किया जाता है।[4]

प्राकार से कवलित किया जिस नगर ने आकाश को।
अर गोल गहरी खाई से है पी लिया पाताल को।।
सब भूमितल को ग्रस लिया उपवनों के सौन्दर्य से।
अद्भुत अनुपम अलग ही है वह नगर संसार से।।[5]

(7) उत्प्रेक्षा अलंकार : उपमेय की उपमान के साथ संभावना को उत्प्रेक्षा अलंकार कहते हैं।[6]

समझे मीठी घास नाज को न पहिचाने।
त्यों अज्ञानी जीव निजातम स्वाद न जाने।।
पुण्य–पाप में धार एकता शून्य हिया है।
अरे शिखरणी पी मानो गो दूध पिया है।।[7]

(8) दृष्टान्त अलंकार : जिस अलंकार में प्रस्तुत और अप्रस्तुत का क्रिया, गुण चेष्टादि सम्बन्ध से यथातथ्य वर्णन किया जाता है

1. समयसार कलश (पद्यानुवाद) पृष्ठ 9
2. आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं काव्यकला, पृष्ठ 224
3. समयसार कलश (पद्यानुवाद) पृष्ठ 26
4. आचार्य विद्यासागर : व्यक्तित्व एवं काव्यकला, पृष्ठ 225
5. समयसार कलश (पद्यानुनवाद) पृष्ठ 18
6. काव्य प्रकाश, 10/92
7. समयसार कलश (पद्यानुवाद), पृष्ठ 33

उसे 'दृष्टान्त' अलंकार कहते हैं।[1]

रूप को ज्यों चक्षु जाने परस्पर अप्रविष्ट रह।
त्यों आत्म ज्ञानस्वभाव अन्य पदार्थ उसके ज्ञेय हैं।।[2]
तिमिरहर हो दृष्टि जिसकी उसे दीपक क्या करें।
जब जिय स्वयं सुखरूप हो इन्द्रिय विषय तब क्या करें।।[3]
खारेपन से भरी हुई ज्यों नमक डली है।
ज्ञानभाव से भरा हुआ त्यों निज आतम है।।
अन्दर–बाहर प्रगट तेजमय सहज अनाकुल।
जो अखण्ड चिन्मय चिद्घन वह हमें प्राप्त हो।।[4]
दूध जल में भेद जाने ज्ञान से बस हंस ज्यों।
सद्ज्ञान से अपना–पराया भेद जाने जीव त्यों।।
जानता तो है सभी करता नहीं कुछ आतमा।
चैतन्य में आरूढ़ नित ही यह अचल परमातमा।।[5]

(9) **अतिशयोक्ति अलंकार** : जहाँ किसी की प्रशंसा के लिए कोई बात बहुत बढ़ा चढ़ाकर लोक सीमा का उल्लंघन करके कही जाती है वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है।[6]

वे अर्थ ना हों ज्ञान में जो ज्ञान न हो सर्वगत।
ज्ञान है यदि सर्वगत तो क्यों न हों वे ज्ञानगत।।[7]

(10) **अर्थान्तरन्यास अलंकार** : किसी उक्ति को सिद्ध करने के लिए जहाँ युक्तिपूर्वक किसी अन्य अर्थ को प्रस्तुत किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है।[8]

अज्ञान से ही भागते मृग रेत को जल मानकर।
अज्ञान से ही डरें तम में रस्सी विषधर मानकर।।
ज्ञानमय है जीव पर अज्ञान के कारण अहो।

1. वाग्भटालङ्कार 4/81
2. प्रवचनसार (पद्यानुवाद) पृष्ठ 7
3. वही, पृष्ठ 15
4. समयसार कलश (पद्यानुवाद) पृष्ठ 13
5. वही, पृष्ठ 34
6. आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं काव्यकला, पृष्ठ 228
7. प्रवचनसार (पद्यानुवाद), पृष्ठ 9
8. आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं काव्यकला, पृष्ठ 229

वातोद्वेलित उदधिवत कर्ता बने आकुलित हो।।[1]

छन्दशास्त्र के पारिभाषिक शब्द[2]

यति : यति का मतलब होता है विराम।

गति : छन्द की लय को गति कहते हैं।

चरण : छन्द की पंक्ति को उसका चरण कहते हैं।

सम : जिन छन्दों के चारों चरणों में बराबर–बराबर मात्राएं अथवा वर्ण हों,उन्हें सम छन्द कहते हैं।

अर्धसम : जिनके पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरण में बराबर–बराबर मात्रा या वर्ण होते हैं उन्हें अर्धसम छन्द कहते हैं।

विषम : जिनके चारों चरण एक से न हों अथवा जिनमें चार से अधिक चरण हों, उन्हें विषम छन्द कहते हैं।

गण : वर्णिक छन्दों में अक्षरों की गिनती की सुविधा के लिए तीन–तीन अक्षरों के समूह लिए जाते हैं। उसे गण कहते हैं।

मगण इसमें तीनों अक्षर गुरु होते हैं।
नगण इसमें तीनों अक्षर लघु होते हैं।
भगण इसमें पहला गुरु और शेष दो लघु हैं।
जगण पहला व अंतिम वर्ण लघु और बीच का गुरु ।
यगण पहला लघु शेष दोनों वर्ण गुरु ।
रगण पहला एवं अन्तिम गुरु, मध्य लघु।
तगण प्रथम दोनों वर्ण गुरु, अन्तिम लघु

सूत्र : यमाताराजभानसलगम्

छन्द विचार

'**छन्दयति आह्लादयति** जो आनन्द करते हैं वे छन्द हैं।[3] छन्द के तीन भेद हैं– वर्णिक, मात्रिक और लयात्मक।[4]

(1) दोहा छन्द : इसमें 48 मात्रायें होती हैं। इसके प्रथम एवं

1. समयसार कलश (पद्यानुवाद) पृष्ठ 33
2. रस छन्द अलंकार दर्शन, पृष्ठ 43–44
3. चतुर्वेदी सीताराम, समीक्षा शास्त्र 766

तृतीय चरण में तेरह–तेरह मात्रायें और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में ग्यारह–ग्यारह मात्राएं होती हैं।[1]

चौबीसों परिग्रह रहित, चौबीसों जिनराज।
वीतराग सर्वज्ञ जिन, हितकर सर्वसमाज।।[2]
समयसार जिनदेव हैं, जिन–प्रवचन जिनवाणी।
नियमसार निर्ग्रन्थ गुरु, करें कर्म की हानि।।[3]

(2) बसन्ततिलका : इसके प्रत्येक चरण में 14 वर्ण होते हैं। इसमें आठवें वर्ण पर यति होती है।[4]

रे ज्ञानमात्र निज भाव अकंपभूमि।
को प्राप्त करते जो अपनीतमोही।।
साधकपने को पावें सिद्ध होते
अरअज्ञ इसके बिना परिभ्रमण करते।।[5]

(4) हरिगीतिका : 16 और 12 के विश्राम से 28 मात्राएं होती हैं। 5वीं, 12वीं, 19वीं और 26वीं मात्रा होती है और अन्त में क्रमशः लघु गुरु वर्ण होता है।[6]

श्री आदिनाथ अनादि मिथ्या मोह का मर्दन किया।
आनन्दमय ध्रुवधाम निज भगवान का दर्शन किया।।[7]
कर नमन जिनवर वृषभ एवं वीर श्री वर्द्धमान को।
संक्षिप्त दिग्दर्शन यथाक्रम करूँ दर्शनमार्ग का।।[8]

(5) वीर छन्द : इस छन्द के प्रत्येक चरण में 16, 15 की यति से 31 मात्राएँ होती हैं।[9]

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुमको न अब तक पहिचाना।

---

1. आचार्य विद्यासागर : व्यक्तित्व एवं काव्यकला, पृष्ठ 233
2. जिनेन्द्र वन्दना एवं बारह भावना, पृष्ठ 1
3. अर्चना, पृष्ठ 6
4. आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं काव्यकला, पृष्ठ 233
5. समयसार कलश (पद्यानुवाद), पृष्ठ 130
6. शर्मा सिद्धनाथ, रस छन्द अलंकार दर्शन, पृष्ठ 48
7. जिनेन्द्र वन्दना एवं बारह भावना, पृष्ठ 1
8. अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद, पृष्ठ 7
9. रस छन्द अलंकार दर्शन, पृष्ठ 50

अतएव पड़ रहे हैं प्रभुवर, चौरासी के चक्कर खाना।।[1]

(6) सोरठा छन्द : सोरठा के विषम (पहले, तीसरे) चरणों में ग्यारह और सम (दूसरे, चौथे) चरणों में 13, इस प्रकार प्रत्येक दल में 24 मात्राएँ होती हैं। यह छन्द दोहा का ठीक उल्टा होता है।[2]

जो निवसे निज माहि छोड़ सभी नय पक्ष को।
करे सुधारस पान निर्विकल्प चित शान्त हो।।[3]

(7) पद्धरि छन्द : हे मोह–महादलदलन वीर, दुद्धर–तप संयम धरण–धीर।

तुम हो अनन्त आनन्दकन्द, तुम रहित सर्व जग दंद–फंद।।[4]

(8) रोला छन्द : रोला के प्रत्येक चरण में 11 और 13 के विराम से 24 मात्राएँ होती हैं। कुछ लोग इसके अन्त में दो गुरु वर्णों का होना आवश्यक मानते हैं। परन्तु ऐसा अनिवार्य नहीं है।[5]

एक कहे ना बंधा दूसरा कहे बंधा है
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।
पक्षपात से रहित तत्त्ववेदी जो जन हैं
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।[6]

(9) कुण्डलिया छन्द : इस छन्द के आदि में एक दोहा और उसके पश्चात् एक रोला छन्द होता है। दोहा का अंतिम चरण रोला का प्रथम चरणार्द्ध होता है और प्रायः रोला के अन्तिम अक्षर वहीं होते हैं जो दोहा के आदि में होते हैं। इसप्रकार प्रत्येक चरण में 24 मात्राएं होने से इसमें कुल 144 मात्राएं होती हैं।[7]

नाज सम्मिलित घास को, ज्यों खावे गजराज।
भिन्न स्वाद जाने नहीं, समझे मीठी घास।।
समझे मीठी घास नाज को न पहिचाने।

1. अर्चना, पृष्ठ 6
2. रस छन्द अलंकार दर्शन, पृष्ठ 45
3. समयसार कलश (पद्यानुवाद), पृष्ठ 38
4. महावीर पूजन अर्चना, पृष्ठ 31
5. रस छन्द अलंकार दर्शन, पृष्ठ 46
6. समयसार कलश (पद्यानुवाद), पृष्ठ 38
7. रस छन्द अलंकार दर्शन, पृष्ठ 48–49

त्यों अज्ञानी जीव निजातम स्वाद न जाने।।
पुण्य–पाप में धार एकता शून्य हिया है।
अरे शिखरणी पी माने गो दूध पिया है।।57।।[1]

(10) आडिल्ल छन्द :

उष्णोदक में उष्णता है अग्नि की।
और शीतलता सहज ही नीर की।।
व्यंजनों में है नमक का क्षारपन।
ज्ञान ही यह जानता है विज्ञजन।।[2]

(11) कवित्त या मनहरण छन्द : प्रत्येक चरण में 16 और 15 के विराम से 31 अक्षर होते हैं। अन्तिम अक्षर गुरु होता है।[3]

जिसने किये हैं निर्मूल घातिकर्म सब।
अनंत सुख वीर्य दर्श ज्ञान धारी आतमा।।
भूत भावी वर्तमान पर्याय युक्त सब।
द्रव्य जाने एक ही समय में शुद्धातमा।।
मोह का अभाव पररूप परिणमे नहीं।
सभी ज्ञेय पीके बैठा ज्ञानमूर्ति आतमा।।
पृथक्–पृथक् सब जानते हुए भी ये।
सदा मुक्त रहें अरिहंत परमातमा।।[4]

(12) सवैया इकतीसा : जिसमें 31 वर्ण होते हैं उसे इकतीसा सवैया कहते हैं।

जीव और अजीव के विवेक से है पुष्ट जो,
ऐसी दृष्टि द्वारा इस नाटक को देखता।
अन्य जो सभासद हैं उन्हें भी दिखाता और,
दुष्ट अष्ट कर्मों के बंधन को तोड़ता।।
जाने लोकाकाश को पै निज में मगन रहे,

---

1. समयसार कलश पद्यानुवाद, पृष्ठ 32
2. समयसार कलश, पृष्ठ 34
3. रस छन्द अलंकार दर्शन, पृष्ठ 53
4. प्रवचनसार (पद्यानुवाद), पृष्ठ 66

विकसित शुद्ध नित्य निज अवलोकता।
ऐसो ज्ञानवीर धीर मंग भरे मन में,
स्वयं ही उदात्त और अनाकुल सुशोभता।।33।।[1]

डॉ. भारिल्ल ने सिद्धान्त, धर्म, दर्शन आदि के विविध विषयों से सम्बन्धित जो काव्य लिखे हैं उनमें रस, अलंकार, रीति, गुण एवं अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। आपके चिन्तन में अनेक प्रकार के छन्द ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक हैं। आपने प्रायः प्रारम्भिक चरण में दोहा छन्द का प्रयोग किया है। पद्यानुवाद में हिन्दी के प्रसिद्ध रोला, हरिगीत, जैसे छन्द प्रायः दिए गए हैं। आपने सवैया छन्द में भी इकतीसा सवैया का प्रयोग किया है। कहीं–कहीं पर कुण्डलिया, अडिल्ल जैसे छन्दों का भी प्रयोग किया है। इन छन्दों के प्रयोग में रस की अनुभूति भी है विधि अलंकारों का प्रयोग भी स्वाभाविक रूप से हो गया है। आपके प्रयोगों में काव्य की गम्भीरता है भावों की गम्भीरता है और अध्यात्म का चरम उत्कर्ष भी है।

मौलिक ग्रन्थ : परिचय एवं प्रकृति

डॉ. भारिल्ल ने गद्य एवं पद्य दोनों ही विधाओं में अध्यात्म के अमूल्य एवं अनुपम विचारों को लिखा है, जिससे उनके साहित्य के मूल्यों का ज्ञान भी होता है। उन्होंने मानवीय विचारों में भी अध्यात्म के जिस स्वरूप को प्रतिपादित किया है वह पढ़ने एवं सुनने वाले के लिए चिन्तन के विषय को व्यक्त कर जाता है। क्योंकि उन्होंने मानव की मूल चेतना के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहा। अपितु भौतिक जगत के लिए आध्यात्मिक संदेश से व्यक्ति के पुरुषार्थ को जगाने का कार्य किया है उन्होंने मानवीय विश्वास को आध्यात्मिकता के साथ जोड़ा है, जिसमें समत्व की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है। उन्होंने मानवोपरि दिव्य सत्ता को आचार्यों के चिन्तन में जिस रूप में देखा है वह उन्हें चेतना के नये आयाम देने में समर्थ हुआ है और उसी के आधार पर धार्मिक, आध्यात्मिक एवं आचारपरक जीवन–दर्शन को हिन्दी के विविध छन्दों के माध्यम से जो आदर्श दिया वह अत्यन्त क्रांतिकारी कहा जा

1. समयसार कलश (पद्यानुवाद), पृष्ठ 22

सकता है। उन्होंने आध्यात्मिक यथार्थवादी दृष्टि से मानवता के लिए जो संदेश दिया है वह उनके काव्यों में सर्वत्र झलकता है।

उनकी मौलिक रचनाओं में भक्ति पूजन, वंदना, भावना आदि रचनाएँ हैं जिनमें अनेक प्रकार के दृष्टिकोण को प्रतिपादित किया गया है। स्वयं के द्वारा रचित, सृजित काव्यात्मक रचनाएँ विविध रसों से परिपूर्ण है।

- मेरा धाम — बालबोध भाग–1
- भगवान बनेंगे — बालबोध भाग–2
- वंदना — बालबोध भाग–2
- मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूं — बालबोध भाग–2
- देवशास्त्र गुरु पूजन — अर्चना
- सीमंधर पूजन — अर्चना
- सिद्ध पूजन — अर्चना
- महावीर पूजन — अर्चना

मेरा धाम : इसमें कुल पांच पद्य हैं, जिन्हें दो भागों में व्यक्त किया गया है। प्रथम अंश में ग्यारह चरण हैं और द्वितीय अंश में सात चरण हैं।

'भगवान बनेंगे : इसमें कुल आठ पद्य हैं। यह संगीतमय विचारों से युक्त रचना है। इसमें सम्यक्दर्शन स्व पर भेद विज्ञान, निजानन्द पान, पंच प्रभु (पंच परमेष्ठी) का ध्यान, गुरूजनों का सम्मान, जिनवाणी का श्रवण, निजस्वभाव आदि की विशेषताओं का वर्णन है।

वंदना : निज परमात्म तत्त्व के सम्यक् श्रद्धान अवबोध आचरण एवं शुद्ध रत्नत्रय परिणामों का भाव होना वंदना है।[1] वंदना को भक्ति अरहंत गुणों के प्रति बहुमान, गुण स्तवन, नित्य निरंजन शुद्ध एवं तीनों लोकों में पूजनीय ज्ञान दर्शन और चारित्र में श्रेष्ठ उत्तम भाव की शुद्धता वाले का चिन्तन वेदना है।[2] नमन, परिणमन, स्तुति, स्तवन, नवधा भक्ति आदि सभी वंदना कहलाते हैं। राजवार्तिक में

1. नि. सा. त. व. , पृष्ठ 134
2. भावना पाहुड़, 163

तीर्थंकरों के गुणों के कीर्तन एवं स्तवन को वंदना कहा है।[1]

डॉ. भारिल्ल ने तीर्थंकरों के गुणों को आधार बनाकर चौबीसों जिनराज को वीतराग सर्वज्ञ जिन[2] आदि कहकर उनकी वंदना को विविध भागों को प्रस्तुत किया है।

मुक्तक के मुक्त कवित्व में रचित चौबीस तीर्थंकरों की वंदनाएँ मानवीय मूल्यों को दर्शाती हैं। उन्होंने सर्वप्रथम वन्दना में दोहा छन्द का प्रयोग किया है और इसके अन्त में सोरठा छन्द के माध्यम से उनकी महिमा को व्यक्त किया है। इसमें महावीर वंदना से सम्बन्धित चार छन्दों में उनके गुणों का गुणानुवाद है। इनके अनन्तर पाँचवें पद्य में महावीर के सर्वोदय मार्ग के सन्देश को व्यक्त किया गया है और यह भावना व्यक्त की गई कि इस संसार में जितनी भी आत्माएँ हैं, वे परमात्मा बने और सम्पूर्ण देश में शान्ति का संदेश फैले।

आतम बने परमातमा, हो शान्ति सारे देश में।
है देशना सर्वोदयी, महावीर के सन्देश में।।[3]

मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ। यही आत्मानुभूति है। रचना का उद्देश्य या प्रवृत्ति आत्म तत्त्व की प्रतीति कराना है जिसे निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है–

मैं शुद्ध, बुद्ध, अविरूद्ध एक, पर–परिणति से अप्रभावी हूँ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व, मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ।।[4]

डॉ. भारिल्ल ने देव–शास्त्र, गुरु–पूजन, सिद्ध–पूजन, सीमन्धर पूजन और महावीर पूजन नामक पूजाएँ लिखी हैं। **देव–शास्त्र–गुरु पूजन** में सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु इन तीनों के गुणों का विशेष रूप से वर्णन किया है। जयमाला में दोहा छन्द के माध्यम से इन तीनों का गुणानुवाद किया है और यह भी व्यक्त किया है कि वे सभी कर्मों की निर्जरा करने वाले होते हैं।

समयसार जिनदेव हैं, जिन–प्रवचन जिनवाणी।

---

1. रा.वा. 6/24/11/530
2. जिनेन्द्र वन्दना एवं बारह भावना, पृष्ठ 1
3. वही, पृष्ठ 116
4. बालबोध पाठमाला, भाग–3, पृष्ठ 32

नियमसार निर्ग्रन्थ गुरु करें कर्म की हानि।।[1]

सिद्ध–पूजन में ज्ञाता–दृष्टा, चिदानन्द स्वभावी लोक के अग्रभाग में स्थित, अष्टकर्मों से रहित परमात्मप्रकाश को देने वाले सिद्ध के गुणों को स्मरण किया गया है। सिद्ध पूजन की स्थापना में सिद्ध का स्वरूप निम्न प्रकार से दिया है।

चिदानन्द स्वातमरसी, सत् शिव सुन्दर जान।
ज्ञाता–दृष्टालोक के, परम सिद्ध भगवान।।[2]

इस स्थापना के पश्चात् जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप धूप और फल इनके विवेचन में अष्टकर्म को नाश करने वाले सिद्ध परमेष्ठी के गुणों का चिन्तन किया गया है।

सीमन्धर जिन पूजन में विदेह क्षेत्र में स्थित सीमन्धर जिन प्रतिमा को विद्यमान 20 तीर्थंकरों के नाम में उन्हें स्मरण किया गया है, वे विमल चैतन्य विहारी आनन्द दर्शन, ज्ञान दर्शन, चरित्र, तप और अनन्त सुख में स्थित अभय को प्रदान करने वाले हैं। जयमाला के प्रारंभिक गीत में (दोहा छन्द में) लिखा है–

वैदेही हो देह में, अतः विदेही नाथ।
सीमंधर निज सीम में, शाश्वत करो निवास।।
श्री जिन पूर्व विदेह में, विद्यमान अरहंत।
वीतराग सर्वज्ञ श्री, सीमंधर भगवंत।।[3]

इस पूजन के पश्चात् **महावीर पूजन** में तीर्थंकर महावीर के गुणों का स्तवन किया गया है। इसमें उनके गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान और निर्वाण कल्याणक के पश्चात् उन्हें अनेक गुणों का निधान माना है वे महावीर हैं, परन्तु युद्ध नहीं किया और न उन्होंने किसी प्रकार के अस्त्र–शस्त्र रखे। अपितु उन्होंने परम अहिंसक आचरण किया इसीलिए वे महावीर कहलाये।

यद्यपि युद्ध नहीं कियो, नाहिं रखे असि–तीर।

1. अर्चना, पृष्ठ 6
2. वही, पृष्ठ 9
3. वही, पृष्ठ 23

परम अहिंसक आचरण, तदपि बने महावीर।।[1]

रचनावस्तु का विश्लेषण

कवि हृदय, अध्यात्म प्रेमी, भेद विज्ञान की दृष्टि एवं सामान्य के भावों को महत्त्व देने वाले डॉ. भारिल्ल ने मेरा धाम नामक काव्य में मुक्तिपुरी को धाम कहा है, इसी के परिचय में जब भी कथन किया जाता है तब सबसे पहले उसके स्थान का धाम होता है। इसके अनन्तर उसका नाम कार्य, कर्त्तव्य आदि के प्रयोजन पर प्रकाश डाला जाता है। कवि ने मानवीय दृष्टिकोण की अपेक्षा आध्यात्मिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर परिचय दिया है–

शुद्धातम है मेरा नाम, मात्र जानना मेरा काम।
मुक्ति पूरी है मेरा धाम, मिलता जहाँ विश्राम।।[2]

मेरा नाम क्या है? इस प्रश्न का समाधान करते हुए लिखा है शुद्धातम मेरा नाम है। काम– मात्र जानना मेरा काम। यहाँ जानना आत्मा का स्वभाव है आत्मा को ज्ञान और ज्ञान को आत्मा कहा गया है। आचार्य कुन्दकुन्द ने इसकी व्यापकता पर प्रकाश डालते हुए कथन किया है कि आत्मा ज्ञान है और ध्यान आत्मा है।[3]

रे आत्मा के बिना जग में ज्ञान हो सकता नहीं।
है ज्ञान आतम किन्तु आतम ज्ञान भी है अन्य भी।।[4]

ज्ञान आत्मा है–ऐसा जिनवरदेव का मत है। आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी द्रव्य में ज्ञान नहीं होता, इसलिए ज्ञान आत्मा है। ज्ञान तो आत्मा है, परन्तु आत्मा मात्र ज्ञान नहीं है, अपितु ज्ञानगुण द्वारा ज्ञान है और सुखादि अन्य गुणों द्वारा अन्य भी है।

धाम–मुक्तिपुरी है मेरा धाम। मुक्तिपुरी का अर्थ है मोक्ष। मोक्ष अर्थात् जहाँ न जन्म होता है और ना मरण होता है। अपितु वह स्थान पूर्ण विश्राम वाला होता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रवचनसार में आत्म परिणाम को आधार बनाकर कथन किया है कि ज्ञान दर्शन प्रधान चारित्र से जीव को निर्वाण प्राप्त होता है, जिन्हें आश्रम कहा है।

1. अर्चना, पृष्ठ 31
2. बालबोध पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 24
3. प्रवचनसार, पृष्ठ 27
4. प्रवचनसार , पृष्ठ 39

आश्रम तीन हैं– विशुद्ध दर्शन, विशुद्ध ज्ञान और विशुद्ध चारित्र। इसी से निर्वाण प्राप्त होता है। डॉ. भारिल्ल ने प्रवचनसार की तत्त्व प्रदीपिका के आधार पर कथन किया है कि दर्शन ज्ञान प्रधान चारित्र से वीतराग चारित्र प्राप्त होता है। जिसे मोक्ष कहा गया है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और उसके साथ रहने वाली वीतरागता तो नियम से मुक्ति का ही कारण है।[1]

यह एक ऐसी अवस्था है जिसमें भूख प्यास, खाँसी, जुकाम आदि व्याधि किसी का भी स्थान नहीं है। जो व्यक्ति भेद–विज्ञान वाले होते हैं वे स्व और पर दोनों की समीक्षा करते हैं, समयसार गाथा–2 में स्व और पर दोनों की दृष्टि को महत्त्व दिया गया है। डॉ. भारिल्ल ने हरिगीत छन्द के माध्यम से निम्न भाव व्यक्त किये–

सद्ज्ञानदर्शन–चरित परिणत जीव ही है स्वसमय।
जो कर्म पुद्गल के प्रदेशों में रहे वे–परसमय।।[2]

स्वभाव में स्थित जीव स्वसमय है और परभाव में स्थित जीव परसमय है। स्वसमय और परसमय दोनों अवस्थाओं में व्यापक प्रत्यगात्मा समय है। 'समय' शब्द 'सम' उपसर्गपूर्वक 'अय' धातु से बना है। 'अय' का अर्थ गमन भी होता है और ज्ञान भी होता है। 'सम्' का अर्थ 'एकसाथ' होता है। इसप्रकार जिस वस्तु में एक ही काल में जानना और परिणमन करना–ये दोनों क्रियायें पाई जावें, वह ही समय है। चूंकि जीव प्रतिसमय जानता भी है और परिणमन भी करता है, अतः जीव नामक पदार्थ ही समय है।

इसी तरह निज आत्मा का ध्यान, राग–द्वेष का त्याग, चिदानन्द रस पान आदि को भेद–विज्ञान की दृष्टि से देखने का कथन किया है। जहाँ मुक्ति पूरी को धाम कहा वहीं पर अन्त में यह कहा कि सभी प्रकार के सुख को प्रदान करने वाला मेरा धाम है।

सब सुखदाता मेरा धाम।[3]

1. प्रवचनसार, पृष्ठ 9–10
2. समयसार अनुशीलन 1, पृष्ठ 28
3. बालबोध पाठमाला भाग–1, पृष्ठ 24

भगवान बनेंगे : यह शब्द ही अपने आप में बालकों को भगवान बनने की प्रेरणा देता है। जैन दर्शन में 'भगवान आत्मा' यह शब्द कहते ही आत्मा के विशुद्ध स्वरूप की प्रतीति करा देता है। प्रायः यह भी कथन किया जाता है कि आत्मा आत्मा एक है उसमें किसी तरह का भेद नहीं होता। वस्तु तथ्य की दृष्टि से आत्मा वस्तु है, उसमें चेतन धर्म है। यह चेतन तत्त्व अपने अनेक धर्मों में व्यापक है इसीलिए उसे आत्मा का तथ्य कहा है।[1]

डॉ. भारिल्ल ने अमृतचंद्र देव की आत्मख्याति टीका को आधार बनाकर कथन किया है कि मैं तो शुद्ध चिन्मात्र मूर्ति भगवान आत्मा हूँ।[2] मुझमें कुछ विकृति है ही नहीं। फिर भी मोह के उदय से मलिनता है। मैं सदा शुद्ध चैतन्य मूर्ति हूँ। फिर भी संयोगजन्य पर परिणति के कारण जड़ता स्फुरायमान हुई है।[3] इस तरह के विचार भक्त से भगवान बनाने वाले होते हैं। भगवान वे ही व्यक्ति बन सकते हैं जो सात भयों से रहित सात तत्त्वों का ज्ञान करते हैं।

सप्त भयों से नहीं डरेंगे।
सप्त तत्त्व का ज्ञान करेंगे।[4]

यही दृष्टि निज स्वभाव को प्राप्त कराती है। निज स्वभाव की प्रतीति होने पर मोह का नाश होता है और राग द्वेष के परित्याग से न केवल भक्त बनेंगे अपितु भगवान बनेंगे। भगवान बनने में भय मुक्त होना, तत्त्व ज्ञान करना, स्व–परभेद विज्ञान की दृष्टि रखना, पंच–प्रभु का स्मरण, गुरुजन का सम्मान (लौकिक गुरु और सच्चे गुरु लोक में दोनों ही होते हैं, उनमें जो सच्चे गुरु होते हैं, उनकी विनय, उनका ध्यान भगवान बनाता है।)

वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–2 में कहा है कि विद्या गुरु का भी आदर करना चाहिए; परन्तु जिनकी पूजा की जाती है वे सच्चे गुरु मुनिराज होते हैं।[5]

1. समयसार अनुशीलन–1, पृष्ठ 12
2. वही, पृष्ठ 15
3. वही, पृष्ठ 17
4. बालबोध पाठमाला भाग–2, पृष्ठ 1
5. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग–2, पृष्ठ 12

जिनेन्द्र वन्दना : चौबीस जिन राज की वन्दना में आदिनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभनाथ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभनाथ, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्यनाथ, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर वंदना इन सभी से संबंधित रचनाओं में काव्य के सभी अंगों का समावेश है। उनके मुक्तक रूप में जो भी तीर्थंकर जिस रूप में विख्यात थे वह तथ्य तो है ही परन्तु इसके विश्लेषण में अलग–अलग मूल्यों का विवेचन भी है। आदिनाथ वंदना में आदि प्रभु ऋषभदेव में सर्वप्रथम अनादि काल से व्याप्त मिथ्यात्व मोह का मर्दन किया। उसी से वे अपने निज भगवान का दर्शन कर पाए अर्थात् उन्होंने अपने को जानकर अपने आत्म स्वरूप की पहचान की और उसको ही प्राप्त कर लिया।

श्री आदिनाथ अनादि मिथ्या मोह का मर्दन किया।
आनन्दमय ध्रुवधाम जिन भगवान का दर्शन किया।।
निज आतमा को जानकर निज आतमा अपना लिया।
निज आतमा में लीन हो निज आतमा को पा लिया।।[1]

ऐसे ही सभी तीर्थंकरों का वर्णन रहस्यपूर्ण अलंकृत शैली में किया गया है। अजितनाथ की वंदना में आत्मा की पहिचान एवं निज भगवान की आत्मा की आराधना को महत्त्व दिया गया।

सम्भवनाथ की वंदना में मान के मर्दन रूप मार्दव धर्मयुक्त आत्मा को शुद्ध आत्मा कहा है। इसमें भावना और साधना दोनों की विशेषताएँ हैं।

अभिनंदननाथ की वंदना में वैराग्य रूपी जननी को नन्दनी कहा है, वही अभिनन्दनीय है।

वैराग्य जननी नन्दनी अभिनन्दनी है सरलता।
है साधकों की संगिनी आनन्द जननी सरलता।।[2]

1. जिनेन्द्र वन्दना एवं बारह भावना, पृष्ठ 1
2. वही, पृष्ठ 3

इस तरह सुमति, पद्म, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभु आदि चौबीस तीर्थंकरों के वंदन में उनके गुणों का ही स्मरण है। मूलतः गुणानुवाद में गुणों की प्रमुखता होती है। इसी उद्देश्य को लेकर डॉ. भारिल्ल ने प्रत्येक तीर्थंकर के विषय को गुण की सत्ता में रखकर विवेचन किया है। स्तुति–वंदना आदि से संबंधित जितनी भी रचनाएँ होती हैं, उनमें प्रायः कवि उनके जीवन परिचय को महत्त्व देता है, इसके अनन्तर ही उनके गुणों का कथन करता है। डॉ. भारिल्ल ने स्वयं महावीर वंदना में उनके नामों का उल्लेख किया है और महावीर पूजन में जन्म से लेकर केवलज्ञान प्राप्ति के समय आदि को प्रस्तुत किया है।

परन्तु जिनेन्द्र वंदना के चौबीस मुक्तकों में कवि ने अध्यात्म के मूल भाव को ध्यान में रखकर उनके गुणों का इस तरह से विवेचन किया है कि पढ़ने और सुनने वाले, दोनों ही अपने आत्म स्वरूप की ओर दृष्टि किये बिना नहीं रहेंगे।

महावीर वंदना में महावीर के तीर्थंकर स्वरूप का वर्णन करने के पश्चात् उनके विविध नामों का उल्लेख भी किया है, उनमें वर्धमान, सन्मति ये दो ही प्रमुख हैं। सन्मति के विवेचन में उन्होंने कथन किया है कि सर्वदर्शी सन्मति, वीतराग विज्ञान की उत्तम बुद्धि को प्रदान करने वाले हैं।

बस वीतराग–विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मती को, वन्दना शतबार है।।[1]

"मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ" इस रचना में रूपी और अरूपी दोनों ही गुणों को प्रस्तुत करने के बाद कवि ने यह स्पष्ट किया है कि रूप, रस, गन्ध, वर्ण ये सभी पुद्गल के हैं। इनसे पृथक् आत्मा अखण्ड चैतन्य पिण्ड हैं। यही रूपी और अरूपी का गुण है। रूपी पुद्गल है और अरूपी आत्मा है। आत्मा शुद्ध, बुद्ध और अविरूद्ध है वही ज्ञानानन्द स्वभावी है।

पूजन में गुणों की अर्चना की जाती है इनके पूजन के पद्य में

1. जिनेन्द्र वन्दना एवं बारह भावना, पृष्ठ 15

अर्चन के भाव है और शुद्धातम के दर्शन भी है। **देव शास्त्र–गुरु पूजन** में एक साथ देव–शास्त्र और गुरु इन तीनों को अर्चन का विषय बनाया। इन तीनों के विश्लेषण को एक ही दोहे में देख सकते हैं।

दर्शन दाता देव हैं, आगम सम्यग्ज्ञान।
गुरु चारित्र की रवानि है, मैं वंदौं धरिध्यान।।[1]

इसमें देव को दर्शन दाता, शास्त्र को आगम तथा सम्यग्ज्ञान कहा है, गुरु को चारित्र का आगार कहा है। चारित्र में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य इन पाँचों का समावेश होता है।

सिद्ध पूजन के सिद्ध में परम सिद्ध भगवान को शिव कल्याण का साधन माना है और उसी के आधार पर पूजन करने वाले के लिए प्रत्येक जल–चन्दन आदि के चरण में यह भावना भाते हुए दर्शाया है कि मैं इस संसार में आशा तृष्णा से निराश होकर सिद्ध शरण में आया हूँ।

होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।[2]

सीमन्धर पूजन में विद्यमान अरंहत के असीम आनन्द को अपनी सीमा में सीमित करते हुए अत्यन्त ही अलंकृत शैली में उन्हें त्रैलोक्य का भूपति कहा है–

हे ज्ञानस्वभावी सीमंधर! तुम हो असीम आनंद रूप।
अपनी सीमा में सीमित हो, फिर भी हो तुम त्रैलोक्यभूप।।[3]

महावीर के महासंदेश में उन्हें गुणों को बढ़ने वाला वर्द्धमान कहा है और उसी चरण को ध्यान में लाने की बात कही है।

वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में।[4]

इस तरह देव–शास्त्र गुरु, सिद्ध, सीमन्धर और महावीर के पूजन की रचनावस्तु में डॉ. भारिल्ल ने जो हिन्दी पद्य में गीति तत्त्व के आधार पर विवेचन किया है, वह पूजन करने वाले के आत्मा को शुद्धात्म तत्त्व की दृष्टि देने में भी समर्थ होता है।

---

1. अर्चना, पृष्ठ 8
2. वही, पृष्ठ 9
3. वही, पृष्ठ 23
4. वही, पृष्ठ 25

सत् और शिव दोनों ही इस लघु गीतिका **'मेरा धाम'** में देखने को मिलते हैं; बल्कि युवा, प्रौढ आदि जो भी इसको सुनता है या पढ़ता है, उसे अपने आत्म स्वरूप के साथ–साथ आध्यात्मिक मानवीय मूल्य का भी स्पष्टीकरण हो जाता है। संसार में आना–जाना भूख प्यास आदि–व्याधि, राग–द्वेष, प्रतिपल, प्रतिसमय होते रहते हैं। उस समय आत्मानुभूति का यह विषय अत्यन्त ही प्रभावकारी बन जाता है। वह सोचने के लिए बाध्य हो जाता है कि मैं जिस स्थान पर रहता है वह घर मेरा धाम है आश्रय है; परन्तु इससे भी पृथक् कोई धाम होता है यह इसके काव्यत्व की आभा में समाहित है। जिसमें ऐसे धाम की वास्तविकता पर प्रकाश डाला गया जहाँ शिव, सुन्दर, चिदानंद और सुख का स्थान है। वास्तव में व्यक्ति यही चाहता है।

समयसार में स्व समय और पर समय के विवेचन में सत्य और शिव दोनों के दर्शन हो जाते हैं।

वास्तविक धर्मपरिणत आत्मा ही धर्मात्मा है, स्वसमय है और धर्म परिणति से विहीन मोह–राग द्वेषरूप परिणत आत्मा ही अधर्मात्मा है, परसमय है।

स्वसमय उपादेय है, परसमय हेय है, समय ज्ञेय है और समयसार ध्येय है। समयसाररूप ध्येय के ज्ञान, श्रद्धान और ध्यान से यह समय स्वसमय बनता है और समयसार के ज्ञान श्रद्धान एवं ध्यान के अभाव में मोह–राग द्वेषरूप परिणत होकर परसमय बनता है।[1]

यथार्थ रूप में भगवान वे ही बनेंगे जो इस संसार में 'आकर संसार के भयों से मुक्त होते हैं जीवादि तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान करते हैं। आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थ सूत्र में सम्यक्दर्शन की परिभाषा करते हुए लिखा है–

'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्''[2]

डॉ. भारिल्ल ने सम्यक्दर्शन की इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर अपनी काव्यमय गीतिका में स्थान दिया है।

1. समयसार अनुशीलन – 1, पृष्ठ 39
2. तत्त्वार्थ सूत्र, पृष्ठ 1/2

सप्ततत्त्व का ज्ञान करेंगे।
जीव–अजीव पहचान करेंगे।।[1]

इस विवेचन में जीव और अजीव दो तत्त्व हैं। जिनके भेद–विज्ञान करने पर निजानन्द स्वरूप की प्राप्ति होती है। इनके श्रद्धान से पंचपरमेष्ठी के स्वरूप का आभास होता है, जिनवाणी के सूत्रों का ज्ञान होता है और यह भी चिन्तन में आता है कि रात्रि भोजन और बिना छना पानी कभी–कभी निज स्वभाव की ओर नहीं ले जा सकते हैं, इसलिए रात्रि भोजन त्याग और बिना छना जल काम में न लेने की प्रतिज्ञा बालकों में त्याग की भावना उत्पन्न करती है।

वर्तमान युग में अन्तिम मनु के पश्चात् तीर्थ परम्परा का प्रारम्भ हुआ। जिन्हें तीर्थंकर कहा गया। वैदिक परम्परा में अवतार कहा गया वे चौबीस की संख्या में कहा गया–उन चौबीस तीर्थंकरों ने तप के अनन्तर केवल ज्ञान को प्राप्त किया। यही अवस्था गुणों की अवस्था कही गई अनंत दर्शन अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनंत वीर्य ये गुण प्रत्येक आत्मा के माने गए। जो ध्रुव है, सत्य है, यथार्थ भी है आनन्द भी है और आत्म दर्शन भी है। इस तरह के आत्म–दर्शन को भारिल्ल के इन मुक्तक के बंधन में बंधन को खोलते हैं। उदाहरण के लिए देखिये चन्द्रप्रभु वन्दना को, जिसमें शब्दों के विविध माया जाल हैं, परन्तु वे पूर्ण चन्द्र अर्थात् निर्दोष, निष्कलंक, अकलंक, निष्ताप, निष्पाप, निर्विघ्न एवं निष्कंप बनाते हैं अर्थात् चन्द्रप्रभु के गुण पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह निर्दोष बनाते हैं।

रति–अरतिहर श्री चन्द्र जिन तुम ही अपूरब चन्द्र हो।
निश्शेष हो निर्दोष हो निर्विघ्न हो निष्कंप हो।।
निकलंक हो अकलंक हो निष्ताप हो निष्पाप हो।
यदि है अमावस अञ्जन तो पूर्णमासी आपहो।।[2]

छह खण्ड के अधिपति और अखण्ड शान्ति को प्रदान करने वाले शान्तिनाथ की वंदना में अलंकृत शैली के माध्यम से उनके गुणों को

1. बालबोध पाठमाला भाग–3, पृष्ठ 1
2. जिनेन्द्र वन्दना एवं बारह भावना, पृष्ठ 5

अखण्ड माना है, क्योंकि उन्होंने छह खण्ड के राज्य को तृण के समान तुच्छ समझ कर अखण्डानन्दन दर्शन, ज्ञान और चारित्र को अपने जीवन का आधार बनाया और उसी से संसार पार हुए।

मोहक महल मणिमाल मंडित सम्पदा षट्खण्ड की।
हे शान्ति जिन तृण–सम–तजीं ली शरण एक अखण्ड की।।
पायो अखण्डानन्द दर्शन ज्ञान बीरज आपने।
संसार पार उतारनी दी देशना प्रभु आपने।[1]

इसी तरह प्रत्येक तीर्थंकरों के पद में सत्यार्थ का प्रकाश है और परमपद से परमात्मा तक की उत्कृष्ट भावना है।

शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध एवं आत्मानुभूति से युक्त दृष्टि जहाँ होती है, वहाँ न कोई कर्त्ता होता है और न कोई धर्त्ता होता है, भोक्ता भी नहीं होता है। उस समय वह आत्मा विशुद्ध आत्मा कहलाता है, जिसे डॉ. भारिल्ल ने ज्ञानानन्द स्वभावी कहा है–

आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व, मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ।[2]

देव शुद्धब्रह्म परमात्मा है। जिनवाणी शास्त्र है, जो शब्द ब्रह्म के यथार्थ का आभास कराता है। शब्द ब्रह्म में अक्षर और अनअक्षर दोनों से ही श्रुत के यथार्थ का निरूपण हो जाता है। साधक दशा में स्थित आचार्य, उपाध्याय और साधु शुद्धात्म साधक दशा वाले होते हैं।

सिद्ध परमात्मप्रकाश आनन्दामृत पान करके सत्यार्थ, शिव एवं तत्त्व का ज्ञान कराते हैं।

निज परिणति का सत्यार्थभान, शिवपद दाता जो तत्त्वज्ञान।।[3]

सीमन्धर भगवान हैं, वे विद्यमान अरंहत कहलाते हैं, उन्हें विदेह में स्थित कहा गया है। उनके दिव्य उपदेश से भव्य जन अध्यात्म ज्ञान करते हैं।

हो रहा दिव्य उपदेश, भव्य पा रहे नित्य अध्यात्म ज्ञान।।[4]

---

1. जिनेन्द्र वन्दना एवं बारह भावना, पृष्ठ 9
2. बालबोध पाठमाला भाग–3, पृष्ठ 6
3. वही, पृष्ठ 32
4. वही, पृष्ठ 14

महावीर सिद्धार्थ तनय तन से रहित देव हैं वे सर्वज्ञ, वीतरागी जिनेश हैं।

इस तरह देव, शास्त्र–गुरु, सिद्ध, सीमंधर और महावीर ये सभी विशुद्ध आत्मा हैं। इन्हें सत्य के आलोक में देखते हैं तो पाते हैं एक ऐसा मार्ग जो भव समुद्र से पार ले जाकर समय से समय तक ले जाता है।

सामाजिक अवधारणाओं का समायोजन

समाज में अनेक प्रकार के जो भी कार्य होते हैं वे सामाजिक अवधारणाओं को लिये हुए होते हैं। उसमें व्यक्ति परिचय में सर्वप्रथम नाम, काम, धाम और कार्य को महत्त्व दिया जाता है, समागत व्यक्ति नाम के अनन्तर ही अपने प्रयोजन को व्यक्त करता है। समय और उसकी कार्यशैली भी उस समय प्रभावित होती है। अतिथि सत्कार में सर्वप्रथम समागत का आदर किया जाता है, उचित स्थान दिया जाता है, पीनें का पानी दिया जाता है और यह भी पूछा जाता है कि आपका स्वास्थ्य तो ठीक है। भूख–प्यास, खाँसी–जुकाम आदि व्याधि[1] जो भी हैं उस समाज के व्यक्ति में हैं। परन्तु यहाँ सत्य और शिव के समायोजन के साथ–साथ उस सामाजिक व्यक्ति को यह सीख दी गई कि अब तक जिसे अपना धाम समझता आ रहा है वह धाम, धाम नहीं है। धाम तो मुक्तिपुरी है, नाम भी शुद्धात्मा है और काम विशुद्ध आतमा के स्वरूप को जानने का है इसकी प्रतीति होने पर ही पूर्ण विश्राम मिलता है।

'भगवान बनेंगे' के मूल में विविध सामाजिक अवधारणाओं का समायोजन भी है जिसमें प्रमुख केन्द्र बिन्दु हैं – पंच प्रभु का ध्यान, गुरुजनों का सम्मान, जिनवाणी का श्रवण, पठन–मनन, रात्रि भोजन नहीं करना और बिना छना जल काम न लेना।

उक्त बिन्दुओं में डॉ. भारिल्ल ने समाज में प्रचलित बुराइयों को

1. बालबोध पाठमाला भाग–3, पृष्ठ 24

दूर करने के लिए इन सूत्रों को बालकों तक पहुँचाया है, क्योंकि बालक ही भविष्य के सूत्रधार होते हैं। उनकी जिस तरह की भावना होगी उनका वह समाज उसी तरह का होगा। अन्य समाज के लिए भी उनके वे गुण प्रेरणादायी अवश्य होंगे।

जिनेन्द्र वंदना में वीतराग–सर्वज्ञ पद को प्राप्त चौबीस तीर्थंकरों का जिनशासन के प्रत्येक परिवार में किसी न किसी रूप से स्मरण किया जाता है। यहाँ तक कि दो या तीन वर्ष के बालक–बालिकाओं को इन तीर्थंकरों के नामों को याद कराया जाता है। वे नन्हें–नन्हें बालक अपनी माता से इन्हें सीखते हैं उनमें भी अनंत भगवान और चौबीस तीर्थंकरों की विशेषताओं को जहाँ स्मरण कराया जाता है, वहीं उन्हें यह भी स्मरण कराया जाता है कि आप भी भगवान हो, भगवान आत्मा हो, विशुद्ध आत्मा हो, भगवान और आपमें कोई अन्तर नहीं है। यह वैज्ञानिक तथ्य जिस बालक या बालिका के हृदय में प्रवेश कर जाता है वह स्व और पर का भेद करने में अग्रणी हो जाता है।

डॉ. भारिल्ल ने इन चौबीस तीर्थंकरों की वंदना में प्रायः निज आत्मा को महत्त्व दिया और शुद्धात्मा से परमात्मा की शिक्षा दी। ये सभी चौबीस तीर्थंकर अपने युग के क्षत्रिय राजकुमार कहलाते हैं उनमें अधिकांश चक्रवर्ती या राजपुरुष थे, जिन्होंने सामाजिक परिवेश को छोड़कर अपने आत्म स्वभाव को आधार बनाया।

जिनशासन के अनुयायी जैन के प्रत्येक घर में 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भी देव–दर्शन करने की शिक्षा दी जाती है। बालक–बालिका, युवा–युवती एवं वृद्ध नर–नारी सभी आज भी देव–दर्शन करते हैं।

इस तरह के समायोजन में प्रत्येक वर्ग के लिए यह दिशा–निर्देश है कि देव–दर्शन से मनन–चिन्तन बढ़ता है और दोष समाप्त होते हैं।

अब तक व्यक्ति अपने स्वरूप को नहीं जान पाया इसलिए वह पौद्गलिक शरीर के रूप, रस, गन्ध एवं वर्ण आदि में ही लगा रहा है। इससे उसे भेद–विज्ञान नहीं हो पाया। जो व्यक्ति भेद–विज्ञान

करता है वह निज रस में रमता है और उसकी वास्तविकता की पहचान होती है।

मैं रंग–राग से भिन्न, भेद से भी मैं भिन्न निराला हूँ।
मैं हूँ अखण्ड चैतन्यपिण्ड, निज रस में रमने वाला हूँ।[1]

समाज में आज भी देव–शास्त्र, गुरु, सिद्ध, सीमंधर और महावीर के नाम किसी न किसी रूप में स्मरण किए जाते हैं। उनके मूल्य समाज को आज भी जो दिशा दे रहे हैं वह दिशा देश, राष्ट्र एवं प्राणी मात्र के लिए बन्धुत्व का संदेश दे रहा है। हमारी मान्यताएँ समय–समय पर बदलती रहती हैं, परन्तु हमारे द्वारा मान्य सच्चे देव, सच्चे शास्त्र एवं सच्चे गुरु का गौरव अनादिकाल से अब तक समता रस का ही पान कराने वाला है।

विचार–तत्त्व का विश्लेषण

'मेरा धाम' यह गीतिका का शीर्षक है। इसमें मूल तत्त्व शुद्ध शुद्धातम है जिसमें शिव, सुन्दर और सत् का समावेश है। इस पर विचार करना, इसको जानना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है और यह भी समझना आवश्यक हो जाता है कि यदि मैं विशुद्ध आत्मा हूँ तो अन्य दूसरा कौनसा रूप नहीं हूँ। आत्मा के शुद्ध स्वभाव पर विचार करने से जितने भी विभाव परिणाम हैं, वे सभी सामने आ जाते हैं और यह अनुभव होने लगता है कि आत्मा अलग है और शरीर भिन्न है। यह पौद्‌गलिक है। रूप, रस, गन्ध, वर्ण युक्त है। मुझमें अनन्त शक्तियाँ हैं जिसका समयसार अनुशीलन में व्यापक रूप से विवेचन किया गया है।

अहो! यह विभुत्वशक्ति अजब–गजब की है। आत्मा तो विभु है ही, 'ज्ञान–दर्शन–चारित्र' आदि अनन्तगुण भी स्वतंत्रपने पृथक–पृथक विभु हैं। जैसे अस्तिगुण से सभी गुण अस्तिरूप हैं, वैसे ही विभुत्वगुण भी सभी गुणों में व्यापकर उनकी विभुत्वशक्तियुक्त बना देता है।

ऐसी निज विभुत्वशक्ति को जानकर तथा शक्ति और शक्तिवान

1. बालबोध पाठमाला भाग–3, पृष्ठ 32

के भेद का लक्ष्य छोड़ अभेद–अखण्ड एक शक्तिवान द्रव्य पर दृष्टि करना ही सम्यग्दर्शन है। यह धर्म करने की रीति है।[1]

इसके अतिरिक्त इसमें राग–द्वेष का भी कथन किया गया है जब तक इन्हें नहीं त्यागेंगे, तब तक शुद्धातम का आभास नहीं होगा। "भक्त नहीं, भगवान बनेंगे।" यह इसका प्रमुख विचार तत्त्व है। संसार में भक्त बहुत हो सकते हैं वे भगवान की बात भी कर सकते हैं, उनकी दृष्टि व्यापक भी हो सकती है और यह भी यथार्थ हो सकता है कि वे भय से रहित तत्त्व के ज्ञाता भी हो जायेंगे, परन्तु भेद विज्ञान के बिना निज–स्वभाव की प्रतीति नहीं होती, यह सबसे बड़ी प्रमुखता जैन दर्शन की है। डॉ. भारिल्ल ने समयसार अनुशीलन में भ्रम बुद्धि वाले को अज्ञानी कहा है और भेद–ज्ञान ज्योति वाले को निर्मल, वीतरागी परिणाम के चिन्तन वाले कहा है। उनका हृदय निरन्तर ही रागादि भाव कर्म से रहित वीतरागी प्रभु की ओर होता है। वे ही आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को जानते हैं। श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र भगवान बनाते हैं।[2]

वंदना के मूल में प्रायः आत्म तत्त्व 'परमात्म तत्त्व, शुद्धात्म तत्त्व, सुख धाम आदि का समावेश है। डॉ. भारिल्ल ने 'आनन्दमय ध्रुवधाम निज भगवान' के विचार तत्त्व को प्रायः सभी तीर्थंकरों के साथ जोड़ा है। कहीं साधना के रूप में कहीं, आराधना के रूप में, कहीं ध्यान के रूप में, कहीं परमात्मा के रूप में और कहीं समभाव के रूप में। आनन्द शब्द प्रत्येक तीर्थंकर की वन्दना में है, जिसमें प्रायः परमानन्द को ही महत्त्व दिया गया।

'आनन्दमय ध्रुवधाम निज भगवान की आराधना।"[3]

उक्त पंक्ति के मूल में आराधना के योग्य वे ही भगवान होते हैं, जिन्होंने निज आनन्दमय ध्रुवधाम को प्राप्त कर लिया है। इनकी इन काव्यमय वंदना में अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष, यमक,

1. समयसार अनुशीलन–5, पृष्ठ 339
2. समयसार अनुशीलन–2, पृष्ठ 163
3. जिनेन्द्र वंदना एवं बारह भावना, पृष्ठ 2

विभावना, दीपक आदि अलंकारों का प्रयोग भी है। रस में भी शान्त रस के वास्तविक आनन्द अध्यात्म तत्त्व के दर्शन ने नये चिन्तन ही दिए।

आत्म–तत्त्व ही एक विचार तत्त्व है। वही ज्ञानानन्द स्वभावी होता है।[1]

अर्चना के स्वर में पूजन अर्थात् गुणों के आनन्द की अनुभूति आत्मानुभूति के तत्त्व की ओर ले जाती है। वही व्यक्ति को शुद्ध, बुद्ध और विशुद्ध शुद्ध ब्रह्म, शब्द ब्रह्म, शुद्धातम आदि के प्रकाश को भी दिखला देती है। जैसा तत्त्व वीतराग वाणी से प्रकट हुआ वैसा ही जिनवाणी में अर्थात् देव के द्वारा प्रतिपादित अर्थ को विविध नामों से जिस रूप में रखा गया वह केवल ज्ञान के तत्त्व का प्रतिभास कराने वाला है; जिन्हें आगम कहते हैं, आप्तवचन कहते हैं, सर्वज्ञ वाणी कहते हैं, वीतराग वाणी भी कहते हैं, जो यह कथन है वह शास्त्र है जिन्हें सिद्धान्त प्रवचन आदि भी कहा गया। उन वचनों को आधार बनाकर अरहंत, सिद्ध की शुद्धात्म दशा में स्थित साधक आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिन्हें गुरु कहते हैं वे गुरु वीतराग वाणी को स्वयं उसी रूप में समझते हैं और समझ कर उसका अनुसरण करते हैं और वे गुरु आगम वाणी को जन–जन तक फैलाने का प्रयत्न भी करते हैं। उनका यह प्रयत्न उन्हें ज्ञाता, दृष्टा बनाने का होता है इसलिए आज के संदर्भ में यह तो निश्चित है कि जो कुछ भी देव और शास्त्र के यथार्थ में विद्यमान रहा है वह डॉ. भारिल्ल ने अपने हिन्दी पद्य के प्रत्येक छन्द में उन्हें जिस रूप में रखा है वह जन–जन के मन को प्रभावित करता है।

डॉ. भारिल्ल के पद्य में जिस तरह की हिन्दी के प्रयोग हुए हैं वह सामान्य जनों को समझने वाली हिन्दी नहीं है ऐसा हम नहीं कह सकते हैं, परन्तु जो व्यक्ति अध्यात्म के रस को समयसार, प्रवचनसार, द्रव्यसंग्रह, अष्टपाहुड़ आदि ग्रंथों को छोड़कर 12–13वीं शताब्दी के प्रसिद्ध बनारसीदास, दौलतराम, टोडरमल आदि के उन आध्यात्मिक विचारों को जिस समय हिन्दी के रूप में देखता है, पढ़ता है या उनका चिन्तन करता है तो उन्हें समरसता का आभास अवश्य होता

1. बालबोध पाठमाला भाग–3, पृष्ठ 32

है। वे डॉ. भारिल्ल की दुरुह हिन्दी के प्रयोगों को भी समझ कर समरसता के सौन्दर्य भाव की ओर दृष्टि देने में समर्थ होते हैं। उनकी मूल रचनाओं, पद्यानुवाद में कठिनतम शब्द हैं पर वे अध्यात्म चिन्तनशील व्यक्ति के लिए सागर को मोती की तरह बहुमूल्य ही नहीं, अपितु जीवन को धन्य करने के लिए उपयोगी बन जाते हैं।

निष्कर्ष

पंचम अध्याय डॉ. भारिल्ल के पद्य–साहित्य के कथ्य, शिल्प आदि विविध पहलुओं को प्रस्तुत करता है। काव्य के स्वरूप, प्रकार, रस, रीति, छन्द, अलंकार आदि विविध अवयवों का सांगोपांग विवरण प्रस्तुत करना इसका अभीष्ट है। उनका पद्य–साहित्य उनकी आध्यात्मिकता का प्रतिपादन करता है। वह सम्यग्दर्शन को 'सप्ततत्त्व का ज्ञान करेंगे। जीव–अजीव पहचान करेंगे' के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने चौबीस तीर्थंकरों की वन्दना में निज आत्मा को महत्त्व दिया है वहीं शुद्धात्मा से परमात्मा की शिक्षा दी है। सार रूप में उनका पद्यात्मक सृजन उनके आध्यात्मिक लक्ष्य को ही यत्र–तत्र परिपुष्ट करता दिखाई देता है।

जिनवाणी की धूम मचा दी, समयसार का देकर सार।
वन्दन तुम्हें हमारा भारिल्ल, अभिनन्दन करते शत बार।।
क्रियाकाण्ड में, आडम्बर में, पड़ा हुआ था जब संसार।
अन्धकार में ज्योति जलाकर, जनहित जिनमत किया प्रसार।।
बालक युवजन केन्द्र बनाकर, खड़ा संगठन किया अपार।
वीतराग–विज्ञान ज्ञान दे, किया जगत का बेड़ा पार।।
स्वामीजी से सत्य समझकर, बने क्रमबद्ध रचनाकार।
कुन्दकुन्द के सिद्धान्तों का, अलख जगाया अपरम्पार।।
आत्मधर्म का दीप जलाया, जाकर सात समन्दर पार।
समयसार अनुशीलन लिखकर, किया जगत का अतिहितकार।।
धारा प्रवाह प्रवचनों द्वारा, परमागम वाणी उच्चार।
मन्त्रमुग्ध कर दिया सभी को, पण्डित जन को कर तैयार।।
टोडरमल विद्यालय खोला, सम्यग्दर्शन खोला द्वार।
तत्त्वज्ञान का शंखनाद कर, धर्मक्रांति का किया गुंजार।।

– पण्डित कोमलचन्द जैन

षष्ठ अध्याय

पद्य साहित्य : भाषिक विवेचन

रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द काव्य हैं, जिसमें भाव सहित अवलोकन को प्रस्तुत किया जाता है। पद्य में शब्द और अर्थ की प्रमुखता के साथ–साथ शब्द गर्भित, शब्द गुण, सौन्दर्य, नीति एवं हित से युक्त समन्वय भी होता है। यही प्रकृति की रमणीयता को लिए हुए आनन्द की अनुभूति भी कराता है। पद्य काव्य जीवन प्रकृति का अन्तर्दर्शन है। उसकी अनुभूति कोई भावुकताजन्य स्फूर्ति नहीं है और न कोई आध्यात्मिक कल्पना है, अपितु अखण्ड मानव जीवन के व्यक्तित्व की अनुभूति है।[1]

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के काव्य–सृजन में उक्त सारी विशेषताएँ समाहित हैं, जिसमें संकल्पनात्मक अनुभूति है, विश्लेषण, विवेचन, अनुभव और अध्यात्म का रसायन भी है। प्रवचनसार के प्रथम मंगलाचरण में हरिगीत छन्द के माध्यम से वर्द्धमान के गुणों को अपनी अनुभूति का विषय बनाकर कथन किया कि – वृषतीर्थ, वर्द्धमान, कर्ममल से रहित निर्मल करन से युक्त है। यहाँ निर्मल–करन से पूर्व कर्ममल शब्द दिया हुआ है, जो कर्ममल को निर्मल अर्थात् नष्ट करने वाला होता है।[2] इसी वस्तुस्थिति को ध्यान में रख कर कथन किया कि हमें वर्द्धमान तो चाहिये लेकिन धर्म तीर्थ के कर्त्ता वर्द्धमान चाहिए अर्थात् जिनके प्रवचन का सार यह प्रवचनसार है ऐसे वर्द्धमान चाहिए।[3]

डॉ. भारिल्ल के पद्य साहित्य का भाषा लालित्य

डॉ. भारिल्ल के काव्य में अभिव्यक्ति के साथ–साथ शब्द और अर्थ दोनों की ज्ञान धारा है। उनके विवेचन में शुद्धात्मा की प्रतीति का मूल प्रयोजन है, वे इस प्रयोजन के माध्यम से जन–जन को आत्मा से परमात्मा की दृष्टि देना चाहते हैं। इनके प्रत्येक काव्य के

---

1. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ 330
2. प्रवचनसार का सार, पृष्ठ 16
3. वही, पृष्ठ 18

रस में सहज एवं स्वाभाविक भाव है और अध्यात्म के सर्वोपरि चित्र भी दिखाई देते हैं। इन्होंने काव्य के सभी तथ्य को सामने रखकर जो भी काव्य लिखा है वह प्रकृति की अपेक्षा आत्म परिणति को विशेष महत्त्व देता है। प्रवचनसार, समयसार, अष्टपाहुड़ या अन्य जो भी पद्यानुवाद है वे सभी भाषा लालित्य को लिए हुए अनेक प्रकार के भावों को व्यक्त करते हैं। उनकी काव्य अभिव्यक्ति में दृष्टान्त, वस्तु स्थिति निरूपण, आत्महित, स्व और पर चिन्तन एवं अनेक मूर्तिक–अमूर्तिक विचारों का भी समावेश है, जिसे काव्य के स्वरूप के आधार पर अभिव्यक्त किया जा सकता है।

संस्कृतनिष्ठ शब्द

डॉ. भारिल्ल के पद्य–साहित्य में नवीन विचारों एवं विश्लेषण में प्रायः संस्कृत के शब्दों का प्रयोग हुआ है, क्योंकि वे स्वयं संस्कृत के ज्ञाता हैं और उन्होंने स्वयं संस्कृत में साहित्याचार्य की पदवी भी प्राप्त की है। हमारे वैदिक, सैद्धान्तिक एवं दार्शनिक आदि जितने भी ग्रंथ हैं, वे संस्कृत में हैं। उनकी वास्तविकता को उन्होंने अनुभव किया और अपनी लेखन कला में इसे महत्त्व दिया। इस दृष्टि से यह तो निश्चित है कि उनके पद्य साहित्य में निम्न भाषात्मक हैं।

तत्सम शब्दों की बहुलता– डॉ. भारिल्ल के पद्य साहित्य में जो भी रचनाएँ हैं उनमें तत्सम शब्दों के प्रयोग भी हैं वे संस्कृतनिष्ठ भी हैं। उनमें कठिनता और भाषा लालित्य भी है। सिद्ध पूजन के प्रथम दोहा छन्द में जिसकी वास्तविकता को देखा जा सकता है।

चिदानन्द स्वातमरसी, सत् शिव सुन्दर जान।
ज्ञाता–दृष्टा लोक के, परम सिद्ध भगवान।।[1]

इसी तरह प्रवचनसार, समयसार, अष्टपाहुड़ आदि के पद्यानुवाद में भी संस्कृतनिष्ठ शब्दों की बहुलता है।

परिशुद्ध दर्शन ज्ञानयुत सममाव आश्रम प्राप्त कर।
निर्वाणपद दातार समताभाव को धारण करूँ।।[2]

1. अर्चना, पृष्ठ 9
2. प्रवचनसार अनुशीलन, पृष्ठ 19

समयसार के पद्यानुवाद में भी संस्कृतनिष्ठ दृष्टि है।

अबद्धपुट्ठ अनन्य नियत अविशेष जाने आत्म को।
संयोग विरहित भी कहे जो शुद्धनय उसको कहें।।[1]

अष्टपाहुड़ के पद्यानुवाद में भी संस्कृत बहुल शब्द हैं।

अरहंत–भासित ग्रथित–गणधर सूत्र से ही श्रमणजन।
परमार्थ का साधन करें अध्ययन करो हे भव्यजन।।[2]

पद्यानुवाद के अतिरिक्त छोटी–छोटी रचनाओं में भी संस्कृत शब्दों की प्रधानता है। महावीर वंदना में जिनके विराट् विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञानमय।[3] 'भगवान बनेंगे' में भी संस्कृत के तत्सम शब्द हैं। स्व–पर भेद विज्ञान करेंगे। निजानन्द का पान करेंगे।।

पश्चाताप नामक खण्डकाव्य में 128 पद्य हैं। इस कृति में राम की संवेदनशीलता को भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों ही दृष्टियों से सशक्त बनाया गया। पौराणिक युग की नारी चित्रण में सहृदयता है और मार्मिक चित्रण भी है। इसमें भाव–भाषा और अभिव्यंजना भी है। अधिकांश पद्य संस्कृत के शब्दों से जुड़े हुए हैं।

अरिहंत राम के परमभक्त, हम आत्मराम के आराधक।
जिनवाणी सीता के सपूत, भगवान आत्मा के साधक।।[4]

इसी तरह जितने भी काव्य हैं, उन सभी में अध्यात्म रस की प्रमुखता के संस्कृत शब्द सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं।

भाषा की ओजस्विता

साहित्य के मनीषी जिस साहित्य का सृजन करता है उस साहित्य में मौलिकता, अर्थ स्थापना, शब्द सौन्दर्य, रसानुभूति एवं सम्प्रेषण की बहुलता देखने को अवश्य मिलती है। डॉ. सत्यव्रत शास्त्री ने उनके कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए कथन किया है कि

---

1. समयसार अनुशीलन–1, पृष्ठ 163
2. अष्टपाहुड़ : पृष्ठ 15
3. बालबोध पाठमाला भाग–2, महावीर वन्दना
4. पश्चाताप, पृष्ठ 34

डॉ. भारिल्ल सबल युक्तियों के साथ–साथ सरल–सुबोध भाषा शैली में मानवीय पक्ष को उजागर करते हैं।[1]

डॉ. एन. के. जैन ने उनकी भाषा ओजस्विता पर कथन किया है कि जो कवि कहना चाहता है वह अत्यन्त सराहनीय है और चिन्तन की परिणति से युक्त है।[2] डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया ने उनकी ओजस्विता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि उनके काव्य विचार–व्यवहार एवं पाठक के अन्तर्हृदय को छू जाने वाले होते हैं।[3] प्रेमचन्द सिंह ने उनकी अभिव्यक्ति पर कथन किया –

लीक से हटकर मौलिक चिन्तन पर आधारित इस कृति में सूक्तियों के सहज प्रयोग ने चार चाँद लगा दिये हैं।

काव्य की भाषा सरल, सहज एवं बोधगम्य है, जिसे हर स्तर के सहृदय व्यक्ति सहजता से समझ सकते हैं। छंदों की चरण–रचना को देखते एवं पढ़ते ही राष्ट्रकवि स्वर्गीय श्री मैथिलीशरण गुप्त की काव्य शैली के साथ साहचर्य स्थापित हो जाता है। उनके खण्डकाव्य 'यशोधरा' एवं महाकाव्य 'साकेत' में 'कैकेयी के अनुताप' की झलक मुझे राम के पश्चाताप में दिखाई देती है।[4]

डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है कि डॉ. भारिल्ल अध्यात्मवादी कवि हैं–अध्यात्म, कवि के रग–रग में समाया हुआ है– प्रत्येक महाकवि द्रष्टा तो अनिवार्यतः होता है और दार्शनिक भी प्रायः होता है, किन्तु शास्त्रकार नहीं हो सकता, क्योंकि शास्त्र और काव्य की प्रकृति मूलतः भिन्न है। इसी कारण जहाँ कहीं भी कवि ने शास्त्र–निरूपण का प्रयत्न किया, उसका कवित्व बाधित हो गया।[5]

पद्य में भाषा की ओजस्विता हृदय पर प्रभाव डालती है। डॉ. भारिल्ल की भेद–विज्ञान से युक्त विचार पद्धति में जो अध्यात्म का रस है वह श्रोता एवं पाठक को प्रभावित किए बिना नहीं रहता। उनके द्वारा प्रस्तुत किसी भी पद्य में ऐसी अभिव्यक्ति देखी जा

1. पश्चाताप, पृष्ठ 35
2. वही, पृष्ठ 36
3. वही, पृष्ठ 36
4. वही, पृष्ठ 42
5. वही, पृष्ठ 56

सकती है। वे वंदना के क्षणों में भी आत्मरस का बोध करा देते हैं। चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस मुक्तक परिचयात्मक नहीं है, अपितु ओजस्विता को लिए हुए हैं। जिस समय वे पार्श्वनाथ की वंदना करते हैं उस समय पार्श्व–प्रभु को अचेलक रूप में स्मरण करते हैं। यह तो यथार्थ है, परन्तु वीतराग अवस्था में कोई भी कर्त्ता–धर्ता नहीं होता यह अभिव्यक्ति मन को वीतराग भावों की ओर ले जाती है –

तुम हो अचेलक पार्श्वप्रभु वस्त्रादि सब परित्याग कर।
तुम वीतरागी हो गये रागादिभाव निवार कर।।
तुमने बताया जगत को प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्त्ता न धर्त्ता कोई है अणु–अणु स्वयं में लीन है।।[1]

इसी तरह अर्चना की अभिव्यक्ति में भावों के साथ–साथ जो शब्द चयन हैं वे भी अनेक प्रकार के कारणों को लिए हुए हैं। एक पद्य में निज पद को आनन्दधाम कहते हैं और पर पद को विपदामय और निकाम कहते हैं –

विपदामय पर पद है निकाम, निजपद ही है आनन्द–धाम।
मेरे मन में बस यही चाह, निजपद को पाऊँ हे जिनाह।।[2]

पद्यानुवाद के पद्यों की अभिव्यक्ति में प्रायः हरिगीत, दोहा, सोरठा आदि छन्दों का चयन किया है, परन्तु वे कहीं–कहीं पर रोला जैसे छन्दों के प्रयोग से व्यक्ति के हृदय को शुद्ध तत्त्व की ओर ले जाने में समर्थ होते हैं–

भेद–ज्ञान की शक्ति से निजमहिमा रत को।
शुद्धतत्त्व की उपलब्धि निश्चित हो जावे।।
शुद्धतत्त्व की उपलब्धि होने पर उसके।
अतिशीघ्र ही सब कर्मों का क्षय हो जावे।।[3]

योगसार के पद्यानुवाद में योग की साधारण दृष्टि से पृथक् वीतराग दृष्टि को विशेष महत्त्व दिया है, जिसे नासादृष्टि कहते हैं। उस पर जो कवित्व लिखा है वह भेद–विज्ञान को भी व्यक्त करता है।

---

1. जिनेन्द्र वन्दना एवं बारह भावना, पृष्ठ 12
2. अर्चना, पृष्ठ 16
3. समयसार अनुशीलन, भाग–3, पृष्ठ 111

नासाग्र दृष्टिवंत हो देखें अदेही जीव को।[1]

अभिव्यक्ति–कौशल

दर्शन के विविध पक्षों की विचारशैली में तर्क की प्रमुखता होती है। जो साहित्य को नूतन दृष्टि भी देती है। डॉ. भारिल्ल के विचार तर्क से जुड़े हुए हैं। वे उस तर्क में आगम प्रमाण को विशेष महत्त्व देते हैं और उसी के आधार पर पद्य में निश्चय नय की दृष्टि रख देते हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने अध्यात्म के परम ज्ञानी, तपस्वी आचार्य कुन्द–कुन्द की रचनाओं को अपने जीवन का आधार बनाया और उसी के अनुसार अध्यात्म के मूल तर्क को प्रत्येक पद्य में रख दिया। वे छोटे बालकों को जब बाल–बोध की शिक्षा देते हैं उस समय में भी आत्म परिणति को उन नन्हें–नन्हें बालकों को भी पद्य रूप में जिस तरह प्रस्तुत करते हैं उससे वे बालक भी मैं शुद्ध हूँ, मैं बुद्ध हूँ, मैं निरंजन हूँ, मैं निराकार हूँ, मैं अविरूद्ध हूँ और मैं ज्ञानानन्द स्वभावी आत्मा हूँ, गाने लगते हैं।

मैं शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध, एक परपरिणति से अप्रभावी हूँ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व, मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ।।[2]

"भक्त नहीं भगवान बनेंगे" यह बालकों के हृदय पर जैसे ही अंकित होता है, तब वे बालक भी शरीर और आत्मा के भेद को नहीं जानते हुए भी यह तो सीख जाते हैं कि मैं जीव हूँ और मेरा शरीर अजीव है; क्योंकि इस शरीर में निरन्तर ही रूप, रस, गन्ध, वर्ण आदि विविध रूपों को प्राप्त होते रहते हैं।

समयसार, प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, योगसार आदि जितने भी सैद्धान्तिक ग्रंथ हैं उन सिद्धान्त ग्रंथों के पद्यानुवाद में प्रायः तर्क की बहुलता है। जिस समय कर्त्ता–कर्म, अधिकार के विषय में समयसार के चिन्तन को ध्यान में रखकर जब वे लिखते हैं, तब आत्म स्वभाव की यथार्थता को प्रस्तुत कर देते हैं। आत्मा एक है, शुद्ध है और ज्ञान, दर्शन से पूर्ण है उसी में लीन होने से कषाय के भावों का क्षय होता है।

1. योगसार (पद्यानुवाद) श्लोक 60
2. बालबोध पाठमाला भाग–3, पृष्ठ 32

मैं एक हूँ मैं शुद्ध निर्मल ज्ञान–दर्शन पूर्ण हूँ।
नित लीन निज में ही रहूँ सब आस्रवों का क्षय करूँ।।[1]

तर्क में प्रमाण–नय और निक्षेप की विशेषताएँ भी हैं। डॉ. भारिल्ल ने सत् और असत् इन दोनों ही विषय को व्यवहार और निश्चय दोनों दृष्टियों से प्रतिपादित किया है। निश्चय को परमार्थ नाम दिया और इसी के आधार पर कथन किया कि –

श्रुतज्ञान से जो जानते हैं शुद्ध केवल आतमा।
श्रुतकेवली उनको कहें ऋषिगण प्रकाशक लोक के।।
जो सर्वश्रुत को जानते उनको कहें श्रुत केवली।
सब ज्ञान ही है आतमा बस इसलिए श्रुतकेवली।।[2]

गुण–गुणी सम्बन्ध और पर्याय–पर्यायवान सम्बन्ध–इन दोनों को ही जिनागम में गुणभेद नाम से ही जाना जाता है और इस गुणभेद को विषय बनाने वाले नय को अनुपचरित–सद्भूतव्यवहारनय कहते हैं।

'ज्ञानी के ज्ञान हैं, दर्शन हैं, चारित्र हैं' सातवीं गाथा में समागत उक्त कथन गुणभेदरूप होने से व्यवहारकथन माना गया है। दर्शन–ज्ञान–चारित्र को गुणरूप में भी देखा जा सकता है और निर्मलपर्याय के रूप में भी देखा जा सकता है; क्योंकि उक्त तीन गुण तो आत्मा में हैं ही, पर इनके निर्मल परिणमन को भी दर्शन ज्ञान–चारित्र ही कहते हैं। मुक्ति के मार्ग के रूप में सर्वत्र इन गुणों के निर्मल परिणमन को ही लिया गया है।

गुणों और उनके निर्मल परिणमन को आत्मा का कहना अनुपचरित–सद्भूत व्यवहारनय का ही कथन है। अतः सातवीं गाथा के कथन में ज्ञान–दर्शन–चारित्र को गुणरूप में ग्रहण करें, चाहे उनके निर्मल परिणमनरूप में ग्रहण करें, दोनों गुणभेदरूप होने से अनुपचरित–सद्भूतव्यवहारनय के विषय ही बनेंगे।

जो श्रुतज्ञान से केवल शुद्धात्मा को जानते हैं, वे निश्चयश्रुतकेवली हैं और जो उसी श्रुतज्ञान से द्वादंशागरूप सर्वश्रुतज्ञान को जानते हैं, वे व्यवहार श्रुतकेवली हैं। नौवीं–दसवीं गाथा में कहे गये उक्त शब्दों

1. समयसार अनुशीलन–2, पृष्ठ 30
2. वही, भाग–1, पृष्ठ 94

से भी यही फलित होता है कि जिसने श्रुतज्ञान से आत्मा को जाना, वह निश्चयश्रुतकेवली और जिसने द्वादशांगरूप सर्वश्रुतज्ञान (गुण–पर्याय) को जाना, वह व्यवहार श्रुतकेवली है।

आत्मा द्रव्य है और सर्वश्रुतज्ञान उसी आत्मद्रव्य की पर्याय है, अतः सर्वश्रुतज्ञान भी प्रकारान्तर से आत्मा ही है। अतः सर्वश्रुतज्ञान को जानने वाले व्यवहारनय ने भी प्रकारान्तर से आत्मा को ही बताया है। अतः वह व्यवहार भी परमार्थ का ही प्रतिपादक रहा।

यही कारण है कि आचार्य अमृतचन्द्र ने इन गाथाओं की आत्मख्याति टीका में निष्कर्ष के रूप में यह कहा है कि ज्ञान और ज्ञानी के भेद से कथन करने वाले व्यवहारनय ने भी परमार्थ ही बताया है और परमार्थ–प्रतिपादक के रूप में उसने अपने को दृढ़तापूर्वक स्थापित कर लिया है।[1]

व्यवहारनय ज्ञान (सर्वश्रुतज्ञान) को जानता है और निश्चय ज्ञानी (आत्मा) को जानता है, सो उसने ज्ञानी को ही जाना, इस नीति के अनुसार व्यवहार परमार्थ का ही प्रतिपादक है।

(अ) भूतार्थ और अभूतार्थ में नय दृष्टि

शुद्धनय भूतार्थ है अभूतार्थ है व्यवहारनय।
भूतार्थ की ही शरण गह यह आत्मा सम्यक् लहे।।[2]

व्यवहारनय को अभूतार्थ और शुद्धनय को भूतार्थ कहा है। जिसका विषय विद्यमान न हो, असत्यार्थ हो, उसे अभूतार्थ कहते हैं। शुद्धनय का विषय अभेद एकाकाररूप नित्य द्रव्य है, उसकी दृष्टि में भेद दिखाई नहीं देता, इसलिए उसकी दृष्टि में भेद अविद्यमान, असत्यार्थ ही कहा जाता है। ऐसा तो है नहीं कि भेद रूप कोई वस्तु ही न हो। यदि ऐसा मानेंगे तो जिसप्रकार वेदान्तमतवाले भेदरूप अनित्य को मायास्वरूप कहते हैं, अवस्तु कहते हैं और अभेद–नित्य–शुद्धब्रह्म को वस्तु कहते हैं, वैसा हमें भी मानना होगा। ऐसा मानने पर सर्वथा एकान्त शुद्धनय के पक्षरूप मिथ्यादृष्टित्व का प्रसंग आयेगा। इसलिए ऐसा स्वीकार करना ही ठीक है कि जिनवाणी

1. समयसार अनुशीलन भाग–2, पृष्ठ 95–97 2. वही, पृष्ठ 106

स्याद्वादरूप है और प्रयोजन के अनुसार नयों को यथायोग्य मुख्य व गौण करके कथन करती है।[1]

अध्यात्मनय दो प्रकार के होते हैं– व्यवहारनय और निश्चयनय।

व्यवहारनय भी दो प्रकार का होता है– असद्भूतव्यवहारनय और सद्भूतव्यवहारनय।

ये असद्भूत और सद्भूत व्यवहारनय भी उपचरित और अनुपचरित के भेद से दो–दो प्रकार के होते हैं–

- उपचरित–असद्भूतव्यवहारनय
- अनुपचरित–असद्भूतव्यवहारनय
- उपचरित – सद्भूतव्यवहारनय
- अनुपचरित – सद्भूतव्यवहारनय

निश्चयनय भी दो प्रकार का होता है–

- अशुद्ध निश्चयनय और
- शुद्ध निश्चयनय।

शुद्ध निश्चयनय तीन प्रकार का होता है–

- एकदेशशुद्धनिश्चयनय
- शुद्धनिश्चयनय या साक्षात् शुद्धनिश्चयनय और
- परमशुद्ध निश्चयनय।[2]

परमशुद्ध निश्चयनय का विषयभूत यह ज्ञायकभाव ही दृष्टि का विषय है और इसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र की प्राप्ति होती है।[3]

शुद्धनय– शुद्धात्मा का उपदेश करने वाला शुद्धनय जानने योग्य है।[4]

जो शुद्धनय तक पहुँचकर श्रद्धावान हुए हैं तथा पूर्णज्ञान चारित्रवान हो गये हैं, उन्हें तो शुद्ध आत्मा का उपदेश करने वाला शुद्धनय जानने योग्य है। शुद्धनय का आश्रय समकिती को होता है। शुद्धनय केवलज्ञान होने पर पूर्ण होता है। शुद्धनय चारित्रवान की सम्पूर्ण स्थिरता शुद्धात्मा के आश्रय कृतकृत्यपना निर्विकल्पदशा प्राप्त होती है। शुद्धनय परमभाव है, वीतरागभाव है, सहजवृत्ति है, निर्विकारभाव है।[5]

1. समयसार अनुशीलन भाग–2, पृष्ठ 108
2. वही, पृष्ठ 110
3. वही, पृष्ठ 111
4. वही, पृष्ठ 117
5. वही, पृष्ठ 126–127

"नियत है जो स्वयं के एकत्व में नय शुद्ध से।
वह ज्ञान का घनपिण्ड पूरण पृथक् है परद्रव्य से।।
नवतत्त्व की संतति तज बस एक यह अपनाइये।
इस आतमा का दर्श दर्शन आतमा ही चाहिये।।[1]

शुद्धनय से ज्ञान के घनपिण्ड, स्वयं में परिपूर्ण, अपने गुण–पर्यायों में व्याप्त, एकत्व में नियत, शुद्धनय के विषयभूत इस भगवान आत्मा को परद्रव्यों और उनके भावों से पृथक् देखना निश्चय सम्यग्दर्शन है।[2]

(आ) शुद्ध जीव

"शुद्ध जीव के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, रूप, शरीर, संस्थान, संहनन, द्वेष, मोह, कर्म, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, अध्यात्मस्थान, अनुभागस्थान, योगस्थान, बंधस्थान, उदयस्थान, मार्गणास्थान, स्थितिबंधस्थान, संक्लेशस्थान, विशुद्धिस्थान, संयमलब्धिस्थान, जीवस्थान और गुणस्थान भी नहीं होते हैं; क्योंकि ये सब भाव पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं।[3]

"वरनादिक रागादि यह रूप हमारौ नाहिं।
एक ब्रह्म नहिं दूसरो दीसै अनुभव मांहि।।[4]

(इ) आत्मा का गुण ज्ञान

मूढ़जनों को इस तरह, ज्ञानमात्र समझाय।
अनेकान्त अनुभूति में उतरा आतमराय।
अनेकानन्त जिनदेव का शासन रहा अलंघ्य।
वस्तुव्यवस्था थापकर थापित स्वयं प्रसिद्ध।।[5]

"ज्ञानमात्र आत्मा है। यह अनेकान्त स्वरूपपना प्रकट करता है। ज्ञानमात्र आत्मवस्तु अपने आप अनेक धर्मयुक्त प्रत्यक्ष अनुभवगोचर होती है। अनेकान्त अर्थात् स्याद्वाद, वस्तुस्वरूप को यथावत् स्थापित करता हुआ, स्वतः सिद्ध हो गया। वह अनेकान्त ही निर्बाधजिनमत

1. समयसार अनुशीलन भाग–2, पृष्ठ 135
2. वही, पृष्ठ 135
3. वही, पृष्ठ 424
5. वही, पृष्ठ 430
6. वही, भाग–5, पृष्ठ 294

है। यथार्थ वस्तु–स्थिति को कहने वाला है। कहीं किसी ने असत् कल्पना से वचनमात्र प्रलाप नहीं किया है। इसलिए हे निपुण पुरुषों भली–भाँति विचार करके प्रत्यक्ष अनुमान–प्रमाण से अनुभव कर देखो। आत्मा ज्ञानस्वरूप है।[1] आत्मवस्तु को जो ज्ञानमात्र कहा है, उसका अर्थ अकेला ज्ञान गुण ही आत्मा में है–ऐसा नहीं समझना। उसके साथ दर्शन, सुख, वीर्य, अस्तित्व नास्तित्व वस्तुत्व आदि अनन्त धर्म हैं।[2]

ज्ञान प्रसिद्ध है, ज्ञानमात्र के स्वसंवेदन से सिद्धपना है। ज्ञान सभी प्राणियों को स्वसंवेदनरूप अनुभव में आता है। ज्ञान अनंत धर्मों के समूहरूप आत्मा प्रसाध्यमान है।[3] आत्मा स्वप्रकाशक है, आत्मा ज्ञानमात्र है।[4] ज्ञान आत्मा का लक्षण है।[5]

शैलीगत विवेचन

डॉ. भारिल्ल के काव्य में विविध प्रकार की शैलियों का प्रयोग हुआ है। शैली में चार – रीति, प्रणाली, व्याख्या, रचना आदि की विशेषता का समावेश होता है।[6] अभिव्यक्ति का नाम भी[43] शैली है। भाषा विशेष संरचना का नाम शैली है।[7]

काव्य में शब्दों, विचारों के प्रकाशन भाषाभिव्यक्ति और वाक्य रचना को आधार बनाया जाता है, जो डॉ. भारिल्ल के काव्य साहित्य में भी विद्यमान है।

- **शब्द शैली**

शब्दों का आधार तीन रूप में होता है–

(क) वाग्बहुल – शब्दों की बहुलता

"मैं शुद्ध, बुद्ध, अविरूद्ध, एक पर परणति से अप्रभावी हूँ।"[8]

1. समयसार अनुशीलन भाग–2, पृष्ठ 297–298
2. वही, पृष्ठ 299
3. प्रवचनरत्नाकर, भाग–11, पृष्ठ 115–116
4. समयसार अनुशीलन, भाग–5, पृष्ठ 303
5. वर्मा रामचन्द्र, प्रमाणिक हिन्दी कोष, पृष्ठ 127
6. डॉ. नगेन्द्र, पाश्चात्य काव्य की परम्परा, पृष्ठ 105
7. शर्मा कृष्ण कुमार, शैली विज्ञान की रूपरेखा, पृष्ठ 178
8. बालबोध पाठमाला भाग–3, पृष्ठ 32

(ख) शब्द संक्षिप्तता – डॉ. भारिल्ल के पद्य साहित्य में वस्तु तत्त्व को समझाने के लिए शब्दों की संक्षिप्तता भी की है।

"चिदानन्द स्वातमरसी, सत् शिव सुन्दर जान।
ज्ञाता–दृष्टा लोक के, परम सिद्ध भगवान।।[1]

यानी शिव के विशिष्ट अर्थ का बोध कराया गया।

(ग) निर्दिष्ट शब्द शैली – सन्तुलित शब्दों का प्रयोग।

आतम बने परमातमा हो शान्ति सारे देश में।
है देशना सर्वोदयी महावीर के सन्देश में।।[2]

- **विचारों की प्रधानता**

डॉ. भारिल्ल के काव्य साहित्य में आध्यात्मिक विचारों की बहुलता है।

"आतम करे जिस भाव को उस भाव का कर्त्ता बने।
बस स्वयं ही उस समय पुद्गल कर्ममावे परिणमें।।[3]

अर्थात् आत्मा जिस भाव को करता है, उसका वह कर्त्ता होता है। उसके कर्त्ता होने पर पुद्गल द्रव्य अपने आप कर्मरूप परिणमित होता है।

- **रचना तत्त्व की प्रधानता**

डॉ. भारिल्ल के काव्य साहित्य में सरल एवं जटिल दोनों प्रकार के रचना तत्त्व हैं।

अचिंत्यशक्ति धारक अरे चिन्तामणि चैतन्य।
सिद्धारथ यह आतमा ही है कोई न अन्य।।[4]

इसमें अचिन्त शक्ति सिद्धारथ आदि जैसे कठिन शब्द हैं वही पर आतमा अरे, कोई आदि सरल शब्द भी है। चैतन्य और अन्य ये दो रचना को विशिष्ट बनाते हैं। इनकी रचनाओं में रूपक, विश्लेषण, उद्घोष, कथन आदि भी है। विचारों की बहुलता, सरलता, स्पष्टता,

1. अर्चना (सिद्ध पूजन), पृष्ठ 9
2. अर्चना (महावीर वंदना), पृष्ठ 3
3. समयसार अनुशीलन, भाग–2, पृष्ठ 711, गाथा–91
4. वही, पृष्ठ 217, गाथा 206

आरोहण, अमूर्तभाव आदि भी हैं। इन्हीं के कथन में मधुरता, अनुभव की प्रधानता और भावों की प्रधानता भी है।

वर्णनात्मक शैली

वर्णन की प्रधानता–

"अरहंत–भासित ग्रथित–गणधर सूत्र से ही श्रमणजन।
परमार्थ का साधन करें अध्ययन करो हे भव्यजन।।[1]
"जो भव्य हैं वे सूत्र में उपदिष्ट शिवमग जानकर।
जिनपरम्परा से समागत शिवमार्ग में वर्तन करे।।[2]

व्याख्यात्मक शैली

इसमें शब्द व्युत्पत्ति शब्द विश्लेषण, परिभाषा आदि को महत्त्व दिया जाता है।

द्रव्य जीव अजीव है जिय चेतना उपयोगमय।
पुद्गलादी अचेतन हैं अतः एव अजीव है।।[3]

विवरणात्मक शैली

विवरण को जिसमें विशेष महत्त्व दिया जाता है–

"जिनके गुणों का स्तवन पावन करन अम्लान है।
मल–हरन निर्मल–करन भागीरथी नीर समान है।।
संतप्त–मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में।।[4]

'महाव्रत हो पाँच गुप्ती तीन से संयुक्त हों।
निरग्रन्थ मुक्ति पथिक वे ही वंदना के योग्य हैं।।[5]

तुलनात्मक शैली

काव्य में व्यक्ति या पदार्थ के गुणों की तुलना, समानता आदि दर्शाने वाले कथन इनके काव्य में हैं।

---

1. अष्टपाहुड़, पृष्ठ 15
2. वही, पृष्ठ 15
3. प्रवचनसार अनुशीलन भाग–2, पृष्ठ 170
4. अर्चना, पृष्ठ 25
5. अष्टपाहुड (पद्यानुवाद) पृष्ठ 19, गाथा 20

"भोर की स्वर्णिम छटा सम क्षणिक सब संयोग हैं।
पद्मपत्रों पर पड़े जलबिन्दु सम सब भोग हैं।
सान्ध्य दिनकर लालिमा सम लालिमा है भाल की।
सब पर पड़ी मनहूस छाया विकट काल करालकी।।[1]

प्रश्नात्मक शैली

कवि स्वयं काव्य रस में लीन होकर प्रश्न करता है और उन प्रश्नों का उत्तर भी स्वयं देता है ऐसे भावों से युक्त काव्य डॉ. भारिल्ल की लेखनी से प्रसूत हुए हैं।

हे चक्रधर जग जीतकर षट्खण्ड को निज वश किया।
पर आतमा निज नित्य एक अखण्ड तुम अपना लिया।
हे ज्ञानधन अरनाथ जिन धन्य–धान्य को ठुकरा दिया।
विज्ञानघन आनन्दघन निज आतमा को पा लिया।।[2]

दृष्टान्तप्रधान शैली

डॉ. भारिल्ल के प्रत्येक काव्य में आत्म–चिन्तन का जितना भी विषय है उसमें प्रायः दृष्टान्त के माध्यम को विशेष महत्त्व दिया गया।

"खारेपन से भरी हुई ज्यों नमक डली है।
ज्ञानभाव से भरा हुआ त्यों निज आतम है।।
अन्तर–बाहर प्रकट तेजमय सहज अनाकुल।
जो अखण्ड चिन्मय चिद्घन वह–हमें प्राप्त हो।।[3]
"डोरा सहित सुई नहीं खोती गिरे चाहे वन–भवन।
संसार–सागर पार हों जिनसूत्र के ज्ञायक श्रमण।।
सिंह सम उत्कृष्टचर्या हो तपी गुरु भार हो।
पर हो यदि स्वच्छन्द तो मिथ्यात्व है अरपाप हो।।[4]

मनोवैज्ञानिक शैली

मन की अवस्थाओं को स्पर्श करने का प्रयास डॉ. भारिल्ल के प्रत्येक साहित्यिक सृजन में है।

1. जिनेन्द्र वन्दना एवं बारह भावना, पृष्ठ 17
2. वही, पृष्ठ 10
3. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, समयसार कलश, श्लोक–14, पृष्ठ 13
4. अष्टपाहुड (पद्यानुवाद) पृष्ठ 15

प्राकार से कवलित किया जिस नगर ने आकाश को।
अर गोल गहरी खाई से है पी लिया पाताल को।।
सब भूमितल को ग्रस लिया उपवनों के सौन्दर्य से।
अद्भुत अनूपम अलग ही है वह नगर संसार से।।[1]

संबोधनात्मक शैली

कवि हृदय डॉ. भारिल्ल ने अपने काव्य में संबोधन को भी महत्त्व दिया, इसमें संबोधन प्रायः हे, भो, अरे आदि का प्रयोग सहज रूप से हुआ है।

"अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता।
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया।।[2]
"हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुमको ना अब तक पहिचाना।
अतएव पड़ रहे हैं प्रभुवर, चौरासी के चक्कर खाना।।[3]

आत्मपरक शैली

कवि के विविध काव्यरूपों में आत्मतत्त्व की प्रधानता है।

"नासाग्र दृष्टिवंत हो देखें अदेही जीव को।
वे जनम धारण ना करें ना पिये जननी–क्षीर को।।[4]
निज आत्मा को जानना पहिचानना ही धर्म है।
निज आतमा को साधना आराधना ही धर्म है।।
शुद्धातमा की साधना आराधना का मर्म है।
निज आतमा की ओर बढ़ती भावना ही धर्म है।।[5]

समीक्षात्मक शैली

मूल्यांकन को समीक्षा कहते हैं। डॉ. भारिल्ल ने प्रायः अपने काव्य में आतमा, पर्याय, पुद्गल, ज्ञान, ध्यान आदि के विषय को प्रतिपादित करने के लिए समीक्षात्मक दृष्टि को भी अपनाया है।

'देह–चेतन एक हैं–यह वचन है व्यवहार का।
'ये एक हो सकते नहीं' यह कथन है– परमार्थ का।।[6]

इसमें विविध आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित कथन को महत्त्व देकर देह और जीव को आचार्य अमृतचन्द्र, पण्डित दौलतराम आदि के आधार पर स्पष्ट किया है। "देह जीव को एक गिने बहिरातम तत्त्वमुधा है।।[7]

---

1. अष्टपाहुड (पद्यानुवाद) पृष्ठ 16
2. समयसार कलश, पृष्ठ 18
3. अर्चना, पृष्ठ 5
4. वही, पृष्ठ 6
5. योगसार (पद्यानुवाद), पृष्ठ 60
6. जिनेन्द्र वन्दना एवं बारह भावना, पृष्ठ 39
7. समयसार अनुशीलन–1, पृष्ठ 270

देह और जीव को एक मानने वाला जीव बहिरात्मा है, तत्त्व के बारे में मूढ़ है।" आत्मख्याति में सोने और चाँदी का उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया है–

"जिसप्रकार लोक में सोने और चाँदी को गलाकर एक कर देने से एक पिण्ड का व्यवहार होता है, उसीप्रकार आत्मा और शरीर की एक क्षेत्र में एक साथ रहने की अवस्था होने से एकपने का व्यवहार होता है।[1]

इसप्रकार अनुशीलन के प्रमुख केन्द्रों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि डॉ. भारिल्ल के काव्यों में कलापक्ष और भावपक्ष दोनों का ही समावेश है। उन विचारों में प्रकृति, तत्त्व के केन्द्र बिन्दु भी हैं। काव्यों में ओज, प्रसाद आदि गुणों शान्तरस के अगणित प्रयोग आत्मा के विषय को स्पष्ट करते हैं। काव्य में सरसता, सरलता एवं देशज शब्दों के प्रयोग भी हैं। भाषा अलंकृत है और विविध शैलियों के शिल्प में कलात्मक दृष्टिकोण भी है।

निष्कर्ष

छठा अध्याय उनकी पद्य सम्बन्धी भाषा से परिचित कराता है। शब्दार्थों सहित काव्य की अवधारणा उनमें सहज ही देखी जा सकती है। काव्य–सृजन का प्रयोजन जन–जन को आत्मा से परमात्मा की दृष्टि प्रदान करना है। उनकी भाषा में तत्सम शब्दों की प्रधानता है। पद्यानुवाद में भी यही प्रवृत्ति प्रमुख रूप से उभर कर सामने आई है। अपने 'पश्चाताप' खण्ड–काव्य में भाव–पक्ष हो या कला पक्ष – दोनों को प्रभावी बनाने का उनका प्रयास रहा है। डॉ. भारिल्ल सृष्टा और दृष्टा – दोनों हैं। उनके काव्य में उनकी यह विशेषता सर्वत्र विद्यमान है। उन्होंने बालकों के लिए जिस काव्य की रचना की है, उनमें सरलता का तत्त्व अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य के साथ उभर कर आया है। अब यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि उनकी काव्य रचना का मूलाधार उनकी अध्यात्म दृष्टि है। उसी को प्रस्तुत करना उनका वास्तविक उद्देश्य है। इसमें तो किंचित भी संदेह नहीं कि वह अपने उद्देश्य में बहुत कुछ सफल हुए हैं। पाठक उनके प्रतिपाद्य से अपने को पूर्णतः तादात्म्य किए बिना नहीं रहता। वास्तव में यही उनके सृजन का सशक्त पक्ष है, जिसकी श्लाघा किए बिना नहीं रहा जा सकता।

1. समयसार अनुशीलन भाग–1, पृष्ठ 271

सप्तम अध्याय

उपसंहार

'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन' नामक शोध–प्रबन्ध में उनके साहित्य का सर्वांगीण स्वरूप निखर कर प्रस्तुत हुआ है। साहित्य के सम्बन्ध में जब हम बात करते हैं तो लेखक के व्यक्तित्व की अनदेखी हो ही नहीं सकती। अतएव उनके व्यक्तित्व के विविध पक्षों को उजागर किया गया है।

डॉ. भारिल्ल ने जैन धर्म और उससे जुड़े सभी पहलुओं का गहन और विशद अध्ययन किया है। उससे सम्बन्धित चिन्तन और मनन ने उनकी आध्यात्मिक ऊर्जा में अनिर्वचनीय रूप से अभिवृद्धि की है।

कानजी स्वामी के सान्निध्य ने उनके मन–मस्तिष्क ने नयी चेतना का संचार किया है। सच पूछा जाये तो उन्हीं के द्वारा प्रवर्तित आध्यात्मिकता का प्रचार–प्रसार डॉ. भारिल्ल के जीवन का लक्ष्य बन गया।

साहित्यिक दृष्टि से उनकी सर्जना की शुरूआत छायावाद के काल–खण्ड में हुई। इनके लेखन पर जिन कवियों का प्रभाव पड़ा, उनमें मैथिलीशरण गुप्त और जयशंकर प्रसाद प्रमुख रहे हैं। विशेष रूप से मैथिलीशरण गुप्त का प्रभाव, उनके काव्य की सरलता और सहजता का प्रभाव इनकी कविताओं में सहज ही देखा जा सकता है। इनकी 'पश्चाताप' हो या अन्य कविताएँ, उनके प्रभाव से अछूती नहीं रह पाई। निबन्धकारों में रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी तो उपन्यासकारों में प्रेमचन्द और जैनेन्द्र ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इनके मानस को प्रभावित किया।

इनके जीवन की लगभग आधी शताब्दी लेखन को समर्पित रही। इनके लेखन में साहित्य की विविध विधाओं की सर्जनात्मक सामर्थ्य

के दर्शन किए जा सकते हैं। इस दृष्टि से उनका साध्य आध्यात्मिकता है। सच पूछा जाये तो यही एक तत्त्व है, जिससे भारिल्ल की सोच–समझ आविष्ट रही है।

जैन धर्म की आध्यात्मिक चेतना को इन्होंने आत्मसात् किया है। यही नहीं, आगे चलकर भी अपने शेष जीवन को इसी उद्देश्य को समर्पित कर देने का संकल्प लिए इन्हें देखा जा सकता है। विश्वास न हो तो उन्हीं के द्वारा अभिव्यक्त इन शब्दों पर गौर करिये– 'जीवन के शेष एक तिहाई भाग को आत्महित और पूज्य गुरुदेव श्री द्वारा प्राप्त वीतरागी तत्त्व को जन–जन तक पहुँचाने में ही सम्पूर्णतः समर्पित कर देना चाहता हूँ।'

साध्य स्पष्ट है। लेखन की दृष्टि से उनका यह कहना कम महत्त्वपूर्ण नहीं है कि 'आध्यात्मिक विषयों के अतिरिक्त विषयों पर लिखना मेरी रुचि के अनुकूल नहीं है..... मैं अपनी सम्पूर्ण शक्ति उन आध्यात्मिक विषयों के लेखन में लगाना चाहता हूँ, जो मेरे चिन्तन के विषय हैं, जिन पर मैंने वर्षों से अनुशीलन किया, चिन्तन–मनन किया।'

उनका व्यक्तित्व बहुआयामी है। लेखक, अध्यापक, प्रवचनकर्ता, प्रबन्धक, प्रबोधक, चिन्तक.... और न जाने क्या–क्या नहीं। विविध विधाओं में उनकी लेखनी का प्रभाव देखा जा सकता है। कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, पद्यानुवाद आदि विधाएँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। वास्तव में जैन हिन्दी साहित्य के वे एक सशक्त हस्ताक्षर रहे हैं। चीजों के प्रति उनकी दृष्टि बहुआयामी रही है। ये सोचते हैं, लिखते हैं, प्रवचन करते हैं। यथावश्यकता तार्किकता से अपने कथनों को प्रभावकारी बनाते हैं। उनके तर्क अपने होते हैं। यह बात अलग है अक्सर कई लोगों के गले नहीं उतरते। गंभीर से गंभीर विषय को भी दृष्टांतों के सहारे श्रोताओं के अनुरूप बनाने में इनका कोई सानी नहीं। इनकी यही खूबी इन्हें विशिष्ट बनाती है।

यह सही है कि कथा–साहित्य की दृष्टि से इन्होंने बहुत कुछ नहीं लिखा। ले–देकर उपन्यास की दृष्टि से 'सत्य की खोज' तो कहानी संग्रह की दृष्टि से 'आप कुछ भी कहो' ही ध्यान में आते हैं।

हाँ, यह आशा करना अनावश्यक नहीं कि इस क्षेत्र को उनकी और भी कृतियाँ समृद्ध करेंगी। इस दृष्टि से आध्यात्मिक क्षेत्र में भी नया कुछ कहने की व्यापक संभावनाएँ हैं।

यों शोध–प्रबन्ध का पहला अध्याय डॉ. भारिल्ल के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालता है। समय–समय पर अलग–अलग विद्वानों द्वारा उनके व्यक्तित्व पर व्यक्त विचारों का सहारा ले, इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। उनके जीवन पर जिन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा है, उन्हें स्पष्ट करने के साथ जैन–धर्म की तात्त्विक व्याख्या को स्पष्ट करना भी अभीष्ट रहा है। इसको इसलिए विस्तार से प्रस्तुत किया गया है ताकि उनके जीवन पर पड़ने वाले उसके प्रभाव को समझने में आसानी हो सके।

दूसरा अध्याय डॉ. भारिल्ल के कृतित्व का लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है। इस दृष्टि से उपन्यास, कहानी के तत्त्वों को स्पष्ट करने के साथ भारिल्ल की रचनाओं का आंकलन करने की चेष्टा रही है। यत्र–तत्र उद्धरण को भी प्रस्तुत किया है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि डॉ. भारिल्ल अपने बहुविध चिन्तन के सहारे समाज को नयी दिशा देने में सफल हुए हैं।

डॉ. भारिल्ल के उपन्यास और कहानियों के विचार तत्त्व को तीसरा अध्याय स्पष्ट करता है। उपन्यास साहित्य के तात्त्विक विवेचन के साथ डॉ. भारिल्ल के 'सत्य की खोज' में निहित यथार्थ के साथ आदर्श पर प्रकाश डाला गया है। आध्यात्मिकता इसका मूल स्वभाव है। विवेक और रूपमती के माध्यम से उपन्यासकार अपनी आध्यात्मिक विचारधारा को अत्यन्त ही सरल और सहज रूप में पाठकों के समक्ष रखता है। उपन्यास में यत्र–तत्र प्रस्तुत सूक्ष्म चिन्तन ध्यान आकर्षित किए बिना नहीं रहता। उदाहरणार्थ ये पंक्तियां– 'जहाँ विवेक है, वहाँ आनन्द है, निर्वाण है और जहाँ अविवेक है, वहाँ कलह, विनाश है। समय अमूल्य है, मानव भव का एक–एक क्षण सत्य के अन्वेषण, रमण एवं प्रतिपादन के लिए है।' कहानियाँ भी जैन दर्शन की विविध तात्त्विक स्थितियों का निदर्शन लिए हैं।

अगला अध्याय भारिल्ल की निबन्ध–लेखन की सामर्थ्य को

उजागर करता है। निबन्ध मानकों का विवेचन करने के साथ उनके निबन्धों की विशेषताओं पर हमारा सर्वाधिक ध्यान रहा है। निबन्धों में डॉ. भारिल्ल ने अपनी आध्यात्मिक दृष्टि को वरीयता दी है। आत्म चिंतन का स्वरूप सर्वत्र विद्यमान है। इस दृष्टि से उनका 'धर्म के दशलक्षण' हो या 'बारह भावना : एक अनुशीलन' उनके आध्यात्मिक चिन्तन का दिग्दर्शन कराता है। अपने सैद्धान्तिक मत को प्रतिपादित करने के लिए उन्होंने संस्कृत, प्राकृत कवियों के चिन्तन को आधार बनाया है। उनके निबन्ध दार्शनिक, वैचारिक भावभूमि को लिए हैं, जो उनकी विद्वता को रेखांकित करते हैं।

भारिल्ल के पद्य साहित्य की प्रस्तुति पंचम अध्याय का प्रमुख प्रतिपाद्य रहा है। काव्य के स्वरूप, विश्लेषण की व्याख्या के पश्चात् उनके पद्य साहित्य की परख करने की कोशिश इसमें रही है। यह भी, जैसा कि हम अन्यत्र पाते हैं, अध्यात्म से ओतप्रोत है। उन्होंने मानवीयता को आध्यात्मिकता से जोड़ा है, जिसमें समत्व की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है। 'पश्चाताप' में सीताजी की तार्किक शक्ति को रेखांकित किया है। तो मेराधाम, भगवान बनेंगे, मैं ज्ञानानन्द स्वामी हूँ, सीमंधर पूजन, सिद्ध पूजन, कोई भी रचना हो, भक्ति, पूजन, वन्दना, भावना को समेटे हैं। 'गागर में सागर' समेटने का उनका प्रयत्न ध्यान आकर्षित किए बिना नहीं रहता। जीवन को सार्थक बनाने में इनकी महती भूमिका से शायद ही कोई अपने को अस्वीकार करने की स्थिति में पाए।

रहा सवाल छठे अध्याय का। इसमें भारिल्ल के काव्य की भाषा के सामर्थ्य को स्पष्ट करने का प्रयास है। भारिल्ल का काव्य शिल्प अप्रतिम है जो वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक, विवरणात्मक, तुलनात्मक, प्रश्नात्मक, दृष्टान्त–प्रधान, मनोवैज्ञानिक, सम्बोधनात्मक, आत्म–परक व समीक्षात्मक शैलियों से अपने को समृद्ध किए हैं। उन्होंने आवश्यकतानुसार तत्सम, तद्भव व देशज शब्दों का प्रयोग किया है। उनका अभिप्रेत अपनी अभिव्यक्ति के सामर्थ्य में अभिवृद्धि करने का रहा है। जगह–जगह दृष्टांतों के सहारे उसे और प्रभावी बनाते देखे जा सकते हैं।

अन्ततोगत्वा इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि डॉ. भारिल्ल बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। जैन साहित्य के समर्थ, सफल भाष्यकार हैं। उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा उनकी कृतियों में सर्वत्र विद्यमान है। वह एक ओजस्वी वक्ता हैं। प्रत्युत्पन्न मतित्व, वाक्विदग्धता उनकी विशेषता है। उन्हें जीवन्त किंवदन्ती कहें तो गलत नहीं होगा।

जहाँ तक हिन्दी साहित्य–क्षेत्र में उनके प्रदेय का सवाल है, हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं कि उन्होंने अपने काव्य, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, संस्मरण, रिपोर्ताज, जीवनी आदि के द्वारा उसे समृद्ध बनाया है। उनका सारा जीवन जैन–दर्शन को समर्पित है। उसके नाना तत्त्वों को अपनी सहज–सरल शैली में इस कौशल के साथ प्रस्तुत किया है कि जन–साधारण उसे आसानी से आत्मसात कर पाए।

उन्होंने जैन अध्यात्म से तादात्म्य किया है। उनका रचना–संसार विस्तृत है जो जैन–जगत की सम्पूर्ण गरिमा से आविष्ट है। यदि यह कहें तो गलत नहीं होगा कि उनका प्रभाव जैन–दायरे से परे भी अपने दम–खम का आभास कराता है। दिगम्बर जैन विद्वानों में उनकी प्रतिभा का आभा मण्डल चकित किए बिना नहीं रहता।

उनकी सृजन–सक्रियता आशान्वित करने वाली है और यह आशा करना असंगत नहीं कि अपनी रचनाओं से वे लगातार हमें लाभान्वित करते रहेंगे।

हुकमचन्द निर्भीक प्रवक्ता, हित–मित–प्रिय भाषी गुणवान।
नियमित और संयमित पूरे, दृढ श्रद्धानी निष्ठावान।।
सफल समालोचक गुणग्राही, विद्या–व्यसनी परम उदार।
सिद्धान्तों पर सदा अटल हैं, समझौतों पर नहीं विचार।।
नाम भवन का किया उजागर, ज्ञान सुधारस उसको सींच।
शिक्षण–शिविर लगा जनता को, जयपुर में ले आये खींच।।
आध्यात्मिक साहित्य प्रणेता, लेखक अरु कवि प्रतिभावान।
विद्या–वारिधि विद्वतज्जन प्रिय, विज्ञ विवेकी सुधी महान।।

– पण्डित अनूपचन्द न्यायतीर्थ

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, (सम्पादक – राजेश कुमार जैन) प्रकाशक : श्री कुन्दकुन्द वी.वि. शिक्षण समिति, उदयपुर, सन् 2001
2. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कृतित्व (डॉ. महावीर प्रसाद जैन), प्रकाशक : पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, सन् 2005
3. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल और उनका कथा साहित्य (अरूण कुमार जैन), प्रकाशक : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल चेरिटेबल ट्रस्ट 304, मुम्बई
4. जैन धर्म और दर्शन (देवेन्द्र मुनि शास्त्री), प्रकाशक : श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर, 1999
5. भारतीय इतिहास, एक दृष्टि : डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, प्रकाशक : वर्णी ग्रंथमाला, वाराणसी, 1982
6. पद्मपुराण (आचार्य रविषेण), प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2002
7. कल्पसूत्र (देवेन्द्र मुनि संपादित) प्रकाशक : तारक गुरु ग्रंथालय, उदयपुर, 1990
8. मत्स्यपुराण, प्रकाशक : बरेली साहित्य समिति, उ. प्र. 1975
9. देवीभागवत, प्रकाशक : गीताप्रेस गोरखपुर, 2002
10. हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास (डॉ. मंजु चतुर्वेदी), प्रकाशक : हिमांशु पब्लिकेशन्स, 464, हिरन मगरी, से. 11, उदयपुर
11. जैनदर्शन और संस्कृति का इतिहास (डॉ. भागचन्द भास्कर), प्रकाशक : बलराज अहेर कुलसचिव, नागरपुर विद्यापीठ, नागपुर, 1977,
12. धवला, (आचार्य वीरसेन) प्रकाशक : जैन संस्कृति संरक्षक संघ सोलापुर, 1992
13. मूलाचार (आचार्य वट्टकेर), प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2004
14. इन्द्रनन्दि श्रुतावतार, प्रकाशक : भारतीय अनेकान्त विद्वत् परिषद् (सोनागिरी)
15. कुन्दकुन्दशती (डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य), प्रकाशक : प्राच्य विद्याश्रमण विद्या विकास समिति (मेरठ), 2004

16. अहिंसा महावीर की दृष्टि में (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर 302015
17. छहढाला का सार, (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल) प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
18. क्रमबद्धपर्याय – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल) प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
19. प्रवचनसार का सार – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल) प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर 2006
20. पण्डित टोडरमल व्यक्तित्व और कृतित्व – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
21. धर्म के दशलक्षण – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
22. प्रवचनसार अनुशीलन भाग–1 से 3, (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल) प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
23. समयसार अनुशीलन भाग–1 से 5, (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल) प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
24. समयसार का सार – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
25. आप कुछ भी कहो – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल) प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
26. ध्यान का स्वरूप – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
27. चिन्तन की गहराइयाँ – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल) प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापू नगर, जयपुर
28. आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं काव्यकला – (डॉ. श्रीमती माया जैन), प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी, सांगानेर (जयपुर)
29. दस रूपक – (धनंजय कवि), प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी
30. भारतीय काव्यशास्त्र – (शर्मा कृष्णदेव), प्रकाशक : विनोद पुस्तक

मंदिर, आगरा, 2002
31. साहित्य दर्पण दूसरा पर्व – (आचार्य विश्वनाथ), प्रका. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2001
32. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग–3 – (वर्णी जिनेन्द्र), प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2007
33. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग–2 – (वर्णी जिनेन्द्र), प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
34. णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर
35. सत्य की खोज – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, सन् 1977
36. हिन्दी जैन कथा साहित्य – (डॉ. सत्यप्रकाश जैन), प्रकाशक : श्री पार्श्वनाथ दिग.जैन मन्दिर, सब्जी मण्डी, दिल्ली–110006, 1993
37. जीवन और विचार – (सौभाग्यमल), प्रकाशक : जैन साहित्य प्रकाशन, रतलाम 1969
38. संस्कृत हिन्दी कोश – (वामन शिवराम आप्टे), प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2006
39. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग–4 – (वर्णी जिनेन्द्र), प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
40. बारह भावना एक अनुशीलन – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, 2006
41. मैं कौन हूँ – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, 2007
42. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर
43. आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंच परमागम – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर
44. परमभावप्रकाशक नयचक्र – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, सन् 1982
45. तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक

: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, सन् 2007
46. गागर में सागर – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, सन् 1985
47. निमित्तोपादान – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, सन् 1991
48. बिखरे मोती – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, सन् 1999
49. आत्मा ही है शरण – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, सन् 1993
50. प्रवचनसार पद्यानुवाद – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, सन् 2005
51. अष्टपाहुड पद्यानुवाद – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, सन् 2002
52. समयसार कलश पद्यानुवाद – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, सन् 2002
53. जिनेन्द्र वन्दना–बारह भावना – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, सन् 1987
54. अर्चना – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, सन् 1972
55. पश्चाताप – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, सन् 2006
56. योगसार पद्यानुवाद – (डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल), प्रकाशक : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, सन् 1991